3-4

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला

९९



॥ श्रीः ॥

रत्नविज्ञान

लेखक

श्री पं० राधाकृष्ण पाराशर

आचार्य : अष्टाङ्ग आयुर्वेद महाविद्यालय

लालबाग, इन्दौर (म० प्र०)

भूमिका-लेखक

आचार्य प्रियव्रत शर्मा

वरिष्ठ प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, द्रव्यगुणविभाग :

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९७२

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२९

मूल्य



© चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी–१

फोन : ६३०७६

प्रधान कार्यालय

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन,

पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी–१

फोन : ६३१४५

THE
VIDYABHAWAN AYURVEDA GRANTHAMALA
66
*****

RATNAVIJÑĀNA
(GEMMOLOGY)

By
PT. RĀDHĀKṚṢṆA PĀRĀŚARA
Principal, Ashtanga Ayurveda Mahavidyalaya, Indore. (M. P.)

INTRODUCTION
by
DR. PRIYAVRAT ŚARMĀ,
Senior Professor & Head of the Department of Dravyaguṇa, Institute of Medical Sciences, Banaras Hindu University.

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1972

© The Chowkhamba Vidyabhawan
Post Box No. 69
Chowk, Varanasi-1 (India)
1972
Phone : 63076

First Edition
1972
Price Rs. [redacted]

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Oriental Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 63145

भूमिका

रमणीय होने के कारण रत्नों की संज्ञा अन्वर्थ है। मनुष्य सदा से सौन्दर्यप्रिय है और पत्थरों में सौन्दर्य देखता रहा है, अनगढ़ पत्थरों को काट कर उन्हें सुन्दर कलाकृतियों में परिणत करता रहा है। आदिकाल से मनुष्य इनकी ओर आकर्षित होता रहा है। पता नहीं क्या अपूर्व आकर्षण इनमें है जो सुदूर देशों से पर्यटकों को खींच लाता है? इसका उत्तर तो सृष्टि की मूल प्रक्रिया में ही निहित है कि प्रकृति सदा से पुरुष को अपने वशीभूत करती आई है। रत्नों की कहानी भी शायद इसी तरह की है।

भारतवर्ष प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक तथा आधिदैविक सौन्दर्य के साथ साथ आधिभौतिक सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट रहा है। इसकी आध्यात्मिक सम्पदा के साथ साथ आधिभौतिक सम्पदा विदेशियों को आकर्षित करती रही है। इसीके कारण अनेक युद्ध हुए और भारत का भाग्य बदलता रहा। भारतभूमि जिस प्रकार विविध धान्यों के रूप में अपने हृदय के रस से लोक का पोषण-संवर्धन करती रही वैसे ही अपनी अन्तरात्मा से भी बहुमूल्य रत्न उड़ेलती रही।

वैदिक काल में रत्नों का प्रयोग देखने में नहीं आता यद्यपि धातुओं का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में त्रिककुद् पर्वत पर होने वाले 'अञ्जन' का वर्णन है जो तक्मा, बलास, आदहि इन तीन रोगों में विशेष उपयोगी कहा गया है। किन्तु अञ्जन कोई खनिज द्रव्य था या वानस्पतिक इसमें सन्देह है। प्राचीन ग्रन्थों में 'अञ्जन' वृक्ष का भी उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में अनेक मणियों का वर्णन किया गया है जिनका उपयोग विविध व्याधियों में करने का विधान है किन्तु ये मणि रत्न नहीं हैं, वनस्पतियों के अङ्ग हैं जो मणिबन्ध में रोग-निवारणार्थ बाँधे जाते थे यथा उदुम्बरमणि, पर्णमणि आदि।

रत्नों का प्रकाश गुप्तकाल में विशेष रूप से फैला, जब देश समृद्धि के स्वर्ण शिखर पर अवस्थित था। इनका उपयोग साज-सज्जा तथा आभरण में होता था। विशेष देदीप्यमान रत्नों को मणि कहते हैं, इनका व्यवहार आभरण के

अतिरिक्त दीपक के रूप में प्रकाश के लिये करते थे। मणियों के दर्पण भी बनते थे। गुप्तकालीन रचनाओं में इन तथ्यों का संकेत उपलब्ध होता है। महाकवि कालिदास ने शकुन्तला के अक्षत कौमार्य को 'अनाविद्ध रत्न' कहा है। कुमार-संभव में हिमालय को 'अनन्तरत्नप्रभव' कहा है। रत्नों पर विस्तृत प्रकाश तत्कालीन विश्वकोष, वराहमिहिरकृत बृहत् संहिता में उपलब्ध होता है। इसमें रत्नपरीक्षाध्याय' में रत्नों का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसके अतिरिक्त पद्मराग, मरकत तथा मुक्ता के लिए स्वतन्त्र अध्याय निर्धारित किये गये हैं। उस समय तक रत्नों के धारण से होने वाले शुभाशुभ का विचार जोर पकड़ चुका था। ग्रहों से भी उनके संबन्ध स्थापित हो चुके थे। एक प्रकार से मनुष्य का भाग्य ही बहुत कुछ रत्नों पर निर्भर रहने लगा था। 'रत्न' शब्द उत्कृष्ट गुणयुक्त पदार्थों के लिए प्रचलित हो गया था[1]। इस प्रकरण में निम्नांकित रत्नों के नाम आये हैं:—

१. वज्र	९. विमलक	१७. पुष्पराग
२. इन्द्रनील	१०. राजमणि	१८. ब्रह्ममणि
३. मरकत	११. स्फटिक	१९. ज्योतीरस
४. कर्केतर	१२. शशिकान्त	२०. सस्यक
५. पद्मराग	१३. सौगन्धिक	२१. मुक्ता
६. रुधिर	१४. गोमेदक	२२. प्रवाल
७. वैदूर्य	१५. शंख	
८. पुलक	१६. महानील	

इस अध्याय में हीरे का विशेष रूप से वर्णन किया गया है यथा—प्रकार, उत्पत्तिस्थान, मूल्यपरिज्ञान, शुभाशुभपरीक्षण आदि। जो हीरा किसी वस्तु से न टूटे, जो स्निग्ध एवं लघु हो और जल पर तैरता रहे तथा बिजली, अग्नि या इन्द्रधनुष के समान हो वह शुभ माना गया है।[2] पुत्रार्थिनी स्त्रियों के लिए हीरे

---

१. रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामनिष्टमशुभेन।
यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः॥ बृ० सं०, रत्नपरीक्षा

२. सर्वद्रव्याभेद्यं लघ्वम्भसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्।
तडिदनलशक्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम्॥ वही

का धारण अशुभ कहा गया है केवल शृङ्गाटकाकार हीरा ही इसमें उपयुक्त हो सकता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र[1] में भी रत्नपरीक्षा का प्रकरण है। उस अध्याय का प्रारम्भ मुक्ता से किया गया है और अन्त में वज्र का वर्णन है जब कि बृहत् संहिता में ठीक इसके विपरीत है। रत्नों का निम्नांकित रूप से वर्णन किया गया है :—

१. मुक्ता

२. मणि—

सौगन्धिक (पद्मराग)

वैडूर्य

इन्द्रनील

स्फटिक

३. अन्तरजाति—

विमलक	मृगाश्मक	सुगंधिकूर्प
रुह्यक	ज्योतीरसक	क्षीरपक
अञ्जनमूलक	मैलेयक	शुक्तिचूर्णक
पित्तक	आहिच्छत्रक	शिलाप्रशालक
सुलभक	कूर्प	पुलक
लोहिताक्ष	पूतिकूर्प	शुक्रपुलक

४. काचमणि

५. वज्र

६. प्रवालक

षट्कोण, चतुष्कोण या वृत्त, तीव्रराग, संस्थानवान्, निर्मल, स्निग्ध, गुरु, प्रकाशवान्, प्रभावान् तथा प्रभानुलेपी मणि प्रशस्त कहा गया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में गुरु वज्र प्रशस्त कहा गया है जब कि बृहत् संहिता में लघु।

वात्स्यायनकृत कामसूत्र में निर्दिष्ट चतुःषष्टि कलाओं में रत्न-परीक्षा तथा

---

१. कुछ विद्वान इसे मौर्यकालीन तथा कुछ गुप्तकालीन रचना मानते हैं।

मणिरागाकर-ज्ञान का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि उस काल में रत्नों की खान से निकालने और तराशने का काम पूर्ण ज्ञात तथा प्रचलित था।

उत्तर गुप्तकाल में बाणभट्ट की रचनाओं में भी रत्नों का प्रभूत निर्देश उपलब्ध होता है।

चिकित्सा में आने के पूर्व रत्नों का प्रयोग ज्योतिषियों के हाथ में ही था किन्तु आयुर्वेद लोक-पुरुषसाम्य के सिद्धान्त पर आधारित है। लोक में वस्तुओं के गुणागुण का पर्यवेक्षण कर तदनुसार शरीर पर उनका प्रयोग प्रारंभ होता है। संहिताओं के पर्यालोचन से पता चलता है कि वनौषधियों का चिकित्सा में उपयोग सर्वप्रथम प्रारम्भ हुआ। महर्षि चरक के पञ्चाशत् महाकषायों में किसी खनिज द्रव्य का उल्लेख नहीं है। आगे चल कर क्रमशः खनिज द्रव्यों का उल्लेख बढ़ने लगा। सुश्रुत ने द्रव्यों के गणों में ऐसे कुछ द्रव्यों का समावेश किया। ऐसा विचार स्वाभाविक है कि जो द्रव्य दृढ़ तथा उत्तम हो वह शरीर में प्रयोग करने पर उसे भी ऐसा ही बनावे। सम्भवतः इसी आधार पर स्वर्ण आदि धातुओं तथा वज्र आदि रत्नों का आभ्यन्तर प्रयोग चिकित्सों में होने लगा। पारद का प्रयोग भी इसी प्रकार प्रारम्भ हुआ होगा। यह सर्वमान्य धारणा है कि धातुवाद के बाद देहवाद प्रचलित हुआ। यही कारण है कि रसशास्त्र के परवर्ती ग्रन्थों में तो रत्न का वर्णन मिलता है किन्तु प्रारम्भिक ग्रन्थों में नहीं मिलता।

पं० राधाकृष्ण पाराशर इस विषय के अधिकारी विद्वान हैं। उनके अनेक वर्षों के मनन एवं अनुसन्धान के फलस्वरूप यह पुस्तक प्रकाश में आ रही है। इस विषय पर ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। इसके द्वारा आयुर्वेद-वाङ्मय का एक प्रायः अपूर्ण क्षेत्र समृद्ध होगा। इस परमोपादेय रचना के लिये मैं लेखक को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि ऐसी महत्वपूर्ण रचनाओं से भविष्य में भी आयुर्वेद को समृद्ध करते रहेंगे। प्रकाशक महोदय भी ऐसी उपयुक्त रचना के प्रकाशन के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

१४ जनवरी १९७२
वाराणसी

—प्रियव्रत शर्मा

विषयसूची

१. हीरा : मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम, इतिहास, विदेशी हीरे की खानें, दुनियाँ के कुछ प्रसिद्ध हीरे, हीरा और ज्यौतिष शास्त्र, हीरे के दोष और उनका कुफल, हीरे की उत्पत्ति, कृत्रिम हीरे के गुण-धर्म, हीरक-शोधन, आमयिक प्रयोग, पञ्चामृतरस, वज्रधाररस, विद्या वागीश्वरी गुटिका, अग्निरस, सुर सुन्दरी गुटिका, मकरध्वजरस, वज्रपञ्जररस, कमलाविलासरस, त्रैलोक्यचिन्तामणिरस, जयमङ्गलारस, कालकंटकरस, वातकंटकरस, सर्वेश्वररस, मृत्युञ्जयरस, विजयपर्पटी भूतांकुशरस, प्रमेहकुञ्जर केशरीरस, कन्दर्प सुन्दररस, रत्नप्रभा वटिका, महोदधिरस, मृगाङ्करस, त्र्यैलोक्य चिन्तामणिरस, रत्नगर्भ पोटलीरस, सुरेन्द्राभवटी, वसन्त कुसुमाकर रस, सर्वेश्वर पर्पटी, रत्न भागोत्तररस, मणिपर्पटी, अनंगनिगडरस । ३–६९

२. मोती : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उद्भव स्थान, ऐतिहासिक दृष्टि, बहुमूल्य मोती, मोती निकालने में नियन्त्रण, व्यावसायिक महत्त्व, मोती का विनिमय, मोती-हार, कृत्रिम मोती, मोती-परीक्षा, देशानुसार मोती के नाम, सापेक्ष निदर्शक, सारिणी, मोती और ज्योतिषशास्त्र, मोती के दोष, मोती का अचिन्त्य प्रभाव, उत्कृष्ट मोती, मोती की छाया, मोती के गुण-धर्म, मोती-शोधन, भस्मीकरण, मुक्तादिचूर्ण, हिक्कानाशक योग, मोतीभस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोग, मुक्ता पञ्चामृतरस, चैतन्योदयरस, चिन्तामणिरस, स्वर्गादि गुटिका, हिक्कान्तकरस, महाकल्याणवटी, मेहकेसरीरस, श्वास-कास-चिन्तामणिरस, श्लेषमान्तकरस, सर्वेश्वररस, मृगाङ्करस, वसन्तमालतीरस, हंसपोटलीरस, महावीररस, वंगेश्वररस, कुमुदेश्वर रस, कुमार कल्याणरस, प्लीहान्तकरस, त्रैलोक्य मोहनरस, त्रिपुरसुन्दररस, रसेन्द्रचूर्ण, हंसपोटलीरस, राजमृगांकरस, सिद्धसूतरस, बृहत्वंगेश्वररस, लक्ष्मीविलासरस, हिरण्यगर्भ पोट्टलीरस, योगेन्द्ररस, चिन्तामणिरस, मुक्तादिवटी, खमीरा मरवारीद, अनोशदारुवे लूलवई ७०–१२२

३. प्रवाल : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, व्यावसायिक महत्त्व, प्रवाल का परिचय, प्रवाल की प्रारंभिक अवस्था, वातावरण का प्रभाव, वैज्ञानिकों की साधना, रूपरंग तथा लक्षण, गुणधर्म, शोधन-मारण, प्रवाल-भस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोग, वट शुङ्गादियोग, प्रवालप्रयोग, दृष्टिप्रसादनांजन, इन्दुशेखररस, भानुचूडामणिरस, बहुमूत्रांतकरस, पित्तप्रभंजनरस, हेमनाथरस, रसेन्द्रवटी, मिहरोदयवटी, सर्षपाद्या गुटिका, वातचिन्तामणिरस, त्रैलोक्यचिन्तामणिरस, सर्वांगसुन्दररस, बृहज्ज्वरचूडामणिरस, हेमगर्भरस, वसन्ततिलकरस, सर्वेश्वररस, बृहत्कांचनाभ्ररस, चूडामणिरस, बृहच्चिन्तामणिरस, विषमज्वरान्तकलौह, मुक्तापंचामृतरस, कांचनाभ्ररस, ज्वरकुंजरपारीन्द्ररस, व्रजेश्वररस, क्षयकुलान्तकरस, महाकनकसिन्दूर, प्रवालपञ्चामृतरस, लक्ष्मीविलासरस, सूतेन्द्ररस, बृहच्चूडामणिरस, विषमज्वरान्तकलौह, वज्रेश्वररस, क्षयकेसरीरस। १२१–१६०

४. माणिक्य : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूपरंग-लक्षण, उत्कृष्ट-निकृष्ट माणिक्य, शुद्धाशुद्ध माणिक्य के गुण-दोष, माणिक्य के प्रतिनिधि रत्न, कृत्रिम माणिक्य, शोधन-मारण-भस्मीकरण, माणिक्य का दूसरा प्रकार, प्राप्तिस्थान, रासायनिक संयोजन, बलास-स्पीनल माणिक्य, कृत्रिम माणिक्य। १६१–१८२

५. नीलम : मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, लक्षण-प्रकार-गुणधर्म, नीलम और ज्यौतिष शास्त्र, कृत्रिम नीलम, शोधन-मारण-भस्मीकरण, आमयिक प्रयोग। १८३–१८७

६. पन्ना : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूप-रङ्ग और लक्षण, रासायनिक संगठन, शुद्ध पन्ने की परीक्षा, पन्ना और ज्यौतिषशास्त्र, गुण-धर्म, पन्ना का प्रमुख प्रकार, प्राप्तिस्थान, रूप-रङ्ग-लक्षण, रासायनिक प्रयोजन, पन्ना का दूसरा प्रकार। १८८–१९९

७. वैदूर्य : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, वैदूर्य के प्रकार रासायनिक प्रयोजन, रूप-रंग-लक्षण, गुण-धर्म, चिकित्सोपयोगी वैदूर्य, शोधन-मारण, विशेष उपयोग। २००–२०६

८. फिरोजा : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूप-रङ्ग और लक्षण, रासायनिक संयोजन, गुण-धर्म, शोधन-मारण । २०७–२०८

९. राजावर्त : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूप-रङ्ग-लक्षण, कृत्रिम राजावर्त, रासायनिक संगठन, राजावर्त के अङ्ग, गुण-धर्म, शोधन-भस्मीकरण, आमयिक प्रयोग, राजावर्तावलेह । २०९–२१५

१०. वैक्रान्त : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूप-रङ्ग-लक्षण, उत्कृष्ट वैक्रान्त, रासायनिक संयोजन, गुण-धर्म, शोधन-मारण, भस्मीकरण, आमयिक प्रयोग, वैक्रान्त-रसायन, मूत्रकृच्छ्रान्तकरस, पञ्चाननरस, वडवानलरस, अपूर्वमालिनीवसन्त । २१६–२२५

११. पुलक : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूप-रङ्ग-लक्षण, रासायनिक संगठन, पुलक के प्रकार, गुण-धर्म, पुलक और ज्यौतिष-शास्त्र, गार्नेटवर्ग, स्फटिक विल्लोर, रङ्ग-रूप-बनावट, रासायनिक रचना, प्रकार । २२६–२३६

१२. अकीक : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, व्यवसाय, प्रकार, गुण-धर्म, शोधन, भस्मीकरण । २३७–२३९

१३. काच : भीष्ममणि : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूप-रङ्ग-लक्षण, वैज्ञानिक सारिणी, ज्यौतिषशास्त्र और काच, प्रभाव और चिकित्सोपयोग, शुद्धकाच, शोधन-मारण, चिकित्सार्थ उपयोग । २४०–२४७

१४. दुग्धपाषाण : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, लक्षण, गुण-धर्म, रासायनिक संगठन, प्रकार, गोमेद का प्रकार, आरोग्य सागररस, नागररसायन, दृष्टिप्रद अंजन, स्फटिक का प्रकार, फेल्स्पार वर्ग । २४८–२६४

१५. अम्बर : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, इतिवृत्त, रासायनिक सङ्गठन, गुण-धर्म, वैज्ञानिक अनुसन्धान, आपेक्षिक निदर्शन, एलोपैथिक, हैमियोपैथिक गुण-धर्म । २६५–२७०

१६. तृणकान्त : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, रूप-रङ्ग-लक्षण, विद्वानों के मत, रासायनिक विश्लेषण । २७१–२७३

१७. गोमेद : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, छाया, जाति, उत्कृष्टनिकृष्ट गोमेद, दोष, रूप-रङ्ग-लक्षण, औद्योगिक महत्त्व, कृत्रिम गोमेद, गोमेद और ज्यौतिष शास्त्र, विद्वानों का भ्रम, गोमेद का मूल्य, शोधन-मारण, आमयिक प्रयोग, मात्रा, शास्त्रीय योग, राजमृगांकरस, दिव्यखेचरी गुटिका, सर्वेश्वरपर्पटी, रत्नभागोत्तररस २७४—२८६

१८. पुखराज : मुख्य २ भाषाओं के नाम, उत्पत्तिस्थान, विदेशीय क्षेत्र, रूप-रंग और लक्षण, पुखराज और ज्योतिषशास्त्र, गुणधर्म, आमयिक-प्रयोग। २८७—२९७



रत्न-विज्ञान

हीरा

(Diamond)

मुख्य-मुख्य भाषाओं में नाम

संस्कृत—हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रोमणिवरश्च सः । (भावप्रकाश) मुख्यतः संस्कृत भाषा में हीरे के नाम हीरक, वज्र, मणिवर, कुलिश, भार्गव-प्रिय, अभेद्य, चन्द्र आदि हैं । हिन्दी—हीरा । बंगला—हीरक, हीरे । मराठी—हिरा गुजराती—हिरो । कनाड़ी—वज्र । तेलगु—वज्रम् । अरबी—अल्मास, मास । फारसी—इल्माश । अँग्रेजी—डायमण्ड (Diamond) । लेटिन—प्योर कार्बन एडम्स (Pure Carbon adams) ।

इतिहास—हीरा अन्यान्य रत्नों की अपेक्षा बहुत अधिक मूल्यवान् होता है एवं अपने प्राकृतिक और रासायनिक गुणों में विशेषताओं के कारण अधिक प्रसिद्ध है । अति प्राचीन काल से हीरा अपने गुणों के कारण समस्त संसार की आकर्षक वस्तु रहा है । सर्वप्रथम भारतीयों ने ही इस अनुपम निधि का दर्शन-ज्ञान विश्व को कराया । भारतीयों को हीरे के संस्कार, सफाई एवं उस पर तरह-तरह की खुदाई का काम मालूम था ।

यूनान देश के इतिहास में इसका नाम खीष्ट से ३०० वर्ष पूर्व से ही पाया जाता है । हीरे की कठोरता एवं ताप-निवारक शक्ति आदि गुणों को देखकर यूनानियों ने इसका नाम 'एडामास' (Adamas) रखा था । इसी 'एडामास' शब्द का अर्थ ग्रीक तथा लेटिन भाषा में एक विशेष कठिन धातु (जिससे कि हथियार बनाये जाते थे) को कहा जाता था जो कि बहुमूल्य समझा जाता था । वर्तमान 'डायमण्ड' शब्द इसी Adamas शब्द का अपभ्रंश माना गया है । Allertus magnus नामक लेखक के ग्रन्थों में (जो कि १३वीं शताब्दी के लिखे माने जाते हैं) Diamas शब्द लिखा पाया जाता है । चुम्बक में विचित्र गुणों को देखकर फ्रेन्च विद्वानों ने इसी नाम के आधार पर Dimant नाम लिखा है ।

हीरे का पूर्ण और विस्तृत वर्णन 'प्लीनी' नामक प्रसिद्ध लेखक के ग्रन्थों में पाया जाता है । इस लेखक ने हीरे के छः प्रकार लिखते हुए भारतीय और अरेबियन हीरे को अधिक महत्त्व दिया है । ये दो प्रकार के हीरे सबसे अधिक कठोर होते हैं । ये किसी भी प्रकार से टूट नहीं सकते अतः प्लीनी ने इन्हें तोड़ने का सरल तरीका बतला दिया है । बकरी के ताजे खून में कुछ दिन

डुबाने के बाद हथोड़े से यदि तोड़ा जाय तो हीरा सहज में ही टुकड़े हो सकता है। परन्तु इन बातों को आधुनिक वैज्ञानिक जरा भी महत्त्व देने को तैयार नहीं हैं।

सन् १४७६ में 'लडविंग' नामक वैज्ञानिक ने हीरे के काटने एवं समुज्वल पालिश करने का तरीका वैज्ञानिक ढंग पर प्रारम्भ करने की चेष्टा की थी। यह सब इतिवृत्त तो पाश्चात्य साहित्य के आधार पर है। परन्तु हमारा भारतीय इतिहास का पता तो इन्द्र के वज्र (हीरे) के कुलिश से प्रारम्भ होता है जो कि भारतीय आबाल-वृद्ध सभी को मालूम है।

उत्पत्ति स्थान : भारतीय क्षेत्र—'बृहत्संहिता' जो कि ६ठी शताब्दी का लिखा एक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ है। उसमें हीरे के विषय में अधोलिखित स्थान उल्लिखित हैं।

(१) हेम—हिमालय का अंचल। इस प्राचीन आधार पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने शिमला के पार्श्ववर्ती अञ्चल में हीरे के विषय में अनुसन्धान किया। परन्तु उन्हें अद्यावधि कुछ भी सफलता नहीं मिली है।

(२) मातंग—कृष्णा और गोदावरी अंचल। इसी अंचल को गोलकुण्डा कहा जाता रहा है। हीरे का विदेशों में निर्यात करने के लिये यहाँ पर 'मोटु-पल्ले' नामक एक प्राचीन बन्दर-स्थान था।

(३) सौराष्ट्र—काठियावाड़। सूरत और बेलगांव एवं भड़ौंच इत्यादि स्थान हीरे के खास निर्यात-स्थान थे। १५८३ तक बेलगाँव को हीरे की एक खास मण्डी होने का उल्लेख मिलता है।

(४) पौण्ड्र—छोटा नागपुर एवं सम्बलपुर का हीराकुण्ड इसी पौण्ड्र देश में आता है, यहाँ पर मणिपुंड्रक नामक एक पर्वत है, हीराकुण्ड में हमारी भारत-सरकार ने करोड़ों की सम्पत्ति लगाकर एक बाँध बनवाया है।

(५) कलिंग—उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और गोदावरी के मध्य का प्रदेश।

(६) कोशल—अयोध्या और जनकपुर के बीच का प्रदेश।

(७) वेणगङ्गा—इसमें मध्यप्रान्त एवं मध्यभारत का पन्ना राज्य, चांदा इत्यादि स्थानों का समावेश होता है।

(८) सौवीर—राजपूताने का दक्षिण-पश्चिम भाग, अरावली पर्वत का इसी सौवीर प्रान्त में समावेश होता है।

भूगर्भशास्त्र-विशेषज्ञों ने भारतीय भूगर्भ क्षेत्र को हीरे के लिये मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया है।

(१) दक्षिण भारतीय क्षेत्र। (२) मध्य भारतीय क्षेत्र। (३) पूर्व-भारतीय क्षेत्र।

(१) दक्षिण भारतीय-क्षेत्र—में मुख्यतः अधोलिखित स्थान प्रसिद्ध हैं। गोलकुण्डा एक प्राचीन हीरों की मण्डी थी।

(१) अनन्तपुर, (२) वज्रुफरुर, (३) बेल्लारी, (४) बोलपल्ली, (५) कोंडपेटा, (६) कडापा, (७) गुरुपुर, (८) गंटूर, (९) मड़गल, (१०) मुल्लवरम, (११) पोलीचिट, (१२) गोटपल्लि, (१३) मालपिल्ली, (१४) पेटियाल, (१५) उस्टपल्लि, (१६) कर्नूल, (१७) वन्नूर, (१८) वस्वपुर, (१९) गुरुमफोट, (२०) देवनुर, (२१) धोनि, (२२) गजेर पल्ली, (२३) गुडिपाद, (२४) मदवरम, (२५) पोलुर।

मध्यभारतीय क्षेत्र—इस क्षेत्र में पन्ना, चरखारी, कोठी इत्यादि का समावेश होता है। इस क्षेत्र की नदियाँ 'कांगलों मरटे' नामक प्रस्तरभूमि पर बहती हैं। इस प्रस्तर की बालू में हीरक-कण पाये जाते हैं। कभी-कभी उत्तम बड़े परिमाण के हीरे भी प्राप्त हो जाया करते हैं। ब्रिटिश सरकार के समय में इन रियासतों के राजाओं को इस विषय में कोई खास उल्लेखनीय प्रोत्साहन नहीं दिया गया। परन्तु फिर भी सन् १९३३ ई०में २३४२ कैरेट हीरे उपलब्ध हुये थे जिनका कि मूल्य ६३, ६९५) प्राप्त हुआ था। पन्ना राज्य प्राचीनकाल से ही हीरा एवं मरकत (पन्ना) इत्यादि रत्नों के लिये प्रसिद्ध रहा है। पन्ना राज्य की खानों से एवं नदियों से सन् १८१३ ई० में डॉ० हेमिल्टन ने ५०,०००) पचास हजार रूपयों के मूल्य के हीरों की उपलब्धि का उल्लेख किया है। शहंशाह अकबर के समय में यहाँ से प्रतिवर्ष लगभग आठ लाख रूपयों के मूल्य के हीरों की उपलब्धि का प्रमाण है। इस समय हमारी स्वतंत्र-भारत सरकार इस दिशा में एक खास और ठोस आयोजना में संलग्न है।

समस्त मध्यभारतीय क्षेत्र में सन् १९१४ ई० से सन् १९१८ ई० तक पांच वर्षों में जितने हीरे निकाले गये 'तैस्को' महाशय के लेखानुसार अधोलिखित हैं।

सन्	कैरेट	मूल्य (पौंड में)	कर्मचारी नियुक्ति
१९१४	५४६५	७९१	९१३
१९१५	३५९९	६०३	५५५
१९१६	२०४२	३६१	६१४
१९१७	२८५२	१७००	५१९
१९१८	७३२९	२६२५	२३७५

मध्य भारतीय क्षेत्र में अधोलिखित स्थान हीरे के लिये प्रसिद्ध हैं।

(१) बीजावर, (२) चरखारी—इसमें वजरिया, खमरिया, पट्टी, रानीपुर, दिया, जन्दा, सिद्दा इत्यादि हैं। (३) पन्ना राज्य में बाबुपुर, बन्दी, विजरपुर, इटवा, कोदेया, मजगमा, मरैया, भवानीपुर, हरहुआपुर, आगरा, श्रीनगर इत्यादि। (४) कोठी में झंदा और नेयागांव प्रसिद्ध हैं। (५) चाँदा (मध्यप्रान्त) में वैरगढ प्रसिद्ध हैं।

(३) पूर्व भारतीय क्षेत्र में—(१) कालाहंडी। (२) पलमन। (३) खिमा। (४) सम्वलपुर-हीराकुण्ड।

हीराखण्ड या हीराकुण्ड सम्वलपुर शहर से ६ मील की दूरी पर है। यह स्थान हीरे की खान के लिये संसार प्रसिद्ध था। झुनाल गांव के पास जहाँ पर इब नदी महानदी से मिलती है—इस स्थान के पास महानदी की बीच धारा में एक द्वीप के समान पर्वतीय-उत्तुंग था इस द्वीप को हीराकुण्ड कहा जाता था। इस द्वीप के पास से महानदी की दो धारायें बहती थीं। एक धारा को रोक कर समस्त पानी दूसरी धारा से प्रवाहित किया जाता था। जब एक धारा का पानी नितान्त सूख जाता था तब वहाँ के पत्थरों के बीच हीरों की खोज की जाती थी। यहाँ पर पर्याप्त मात्रा में हीरे उपलब्ध हुआ करते थे।

गोलकुण्डा के हीरे—गोलकुण्डा का नाम स्मरण आते ही हीरों का स्मरण उसी के साथ आ जाता है। गोलकुण्डा का इतिहास कुत्वशाही नामक प्रसिद्ध राजवंश से प्रारम्भ होता है। एक समय कुत्वशाही राजवंश ने इस स्थान को अपनी राजधानी बनाया था। विदेशी यात्रियों ने अपने यात्रा-सम्बन्धी विवरणों में गोलकुण्डा का 'धनराशि की खान' के रूप में उल्लेख किया है। हालां कि खासकर गोलकुण्डा में ही हीरों की खानें नहीं हैं अपितु गोलकुण्डा के समीपवर्ती अन्यान्य स्थानों में भी बहुत-सी खानें थीं परन्तु हीरों की विशेषता दिखलाने के लिये गोलकुण्डा एक विशेषण के रूप में जोड़ दिया जाता था। क्योंकि प्राचीन हिन्दू युग एवं कुत्वशाही वंश के उत्तरकाल में गोलकुण्डा का वही स्थान था जो कि वर्तमान अंग्रेजी राज्य में वम्बई, कलकत्ता एवं दिल्ली आदि स्थानों का है। दक्षिण की कृष्णा नदी के आसपास वाले स्थानों में (जो कि इस समय कुड़ावह, कुरनूल, वेल्लारी और गुण्टूर जिलों में बँटा हुआ है) हीरे की खानें विशेषरूप से प्रसिद्ध थीं। सन् १७२८ ई० तक इन्हीं स्थानों से हीरे समस्त विश्व को निर्यात होते थे। ६ ठी शताब्दी के लिखे 'बृहत्संहिता' नामक संस्कृत ग्रन्थ में इन्हीं ४–५ जिलों को 'मातंग देश' शब्द से अभिहित किया गया है। १५वीं शताब्दी के एक इटालियन निक्कोलोडे केन्टी नामक यात्री एवं व्यापारी ने अपने भारतीय यात्रावर्णन में एक रोचक

गप्प लिखी है। वह लिखता है कि इन पहाड़ी स्थानों में भारतीय लोग जब हीरों की खोज में निकलते थे तब अपने साथ बहुत से बैल ले जाया करते थे। इन बैलों का मांस और खून इधर-उधर फेंक दिया करते थे ताकि इस खून और मांस के टुकड़ों में हीरे चिपक जावें और गिद्ध, चील आदि बड़े-बड़े पक्षी इन मांस के टुकड़ों को खा लेवें अथवा एक स्थान पर लाकर इकट्ठा कर देवें। और फिर बाद में इन स्थानों में से सरलतापूर्वक हीरे बटोर लिये जावें। इन इटालियन महाशय के कथन से तो ऐसा मालूम होता है कि भारतीय वैज्ञानिक १५ वीं शताब्दी तक निरे मूर्खाधिराज ही थे परन्तु कप्तान मन्न (१७ वीं शताब्दी) ने इस बात को किंवदन्ती कहकर खण्डन किया है और लिखा है कि सम्भवतः द्राविड़ों में लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये इस प्रकार के बलिदान देने की प्रथा-सी हो ?

'मन्सर जीन वेप्टाइष्ट टेवरनियर' नामक फ्रांसीसी यात्री गोलकुण्डा के हीरों पर बहुत अधिक आंख लगाये हुये था। इसने १६३६ ई० से लेकर १६६२ ईस्वी तक ६ बार यहां की यात्रा की। इसने यहाँ की खानों के विषय में लिखा है एवं वहाँ पर काम करने वाले मजदूरों की संख्या तक दे डाली है। गोलकुण्डा, रावलकुण्डा तथा गनीकोल्लूर नामक स्थानों की खानों में ८ हजार मजदूर काम करते थे। उसने गनीकोल्लूर नाम स्थान को ग्रेट मुगल अथवा कोहिनूर हीरे का जन्मस्थान माना है। रावलकुण्डा में जो तरीका उसने देखा उसका वर्णन यों किया है—

जहाँ पर हीरे पाये जाते हैं वे स्थान चारों ओर बालू, चट्टान तथा जंगलों से घिरे रहते हैं। इन चट्टानों में बहुत सी शिरायें (Veins) जो कि आधी अंगुल बराबर और कितनी पूरी अंगुल बराबर होती हैं। खान में काम करने वालों के पास लोहे की बनी बंसियां होती हैं जिसके द्वारा लोग बालू और मिट्टी हटाते हैं और उसे एक बर्तन में एकत्र करते रहते हैं, तत्पश्चात् उस बालू और मिट्टी में हीरे खोजते हैं। इसी अवसर पर सबसे उत्तम श्रेणी के स्वच्छ हीरे उपलब्ध होते हैं। परन्तु चट्टानों को फोड़ते समय वे इतनी जोर से बल प्रयोग करते हैं कि चोट के कारण हीरों में धब्बा लग जाता है।

टेवरनियर ने (हीरे की खान के मालिक द्वारा की गई) खान की पूजा भी देखी है जो पूजा मूर्ति और पुजारियों द्वारा सम्पन्न की गई थी। इस पूजा की समाप्ति पर खान के मालिक अपने मजदूरों को भर पेट खिलाया करते थे और कार्य करने के लिये प्रोत्साहन दिया करते थे।

टेवरनियर के वर्णनानुसार 'कोहेनूर हीरा' कोल्लर नामक स्थान में जो कृष्णा नदी के पास है, सन् १६५६ ई० में पाया गया था। यह मीर जुमला

द्वारा बिना काटे ही शाहजहाँ को समर्पित किया गया। इस समय कोहेनूर का वजन ९०० रत्ती (अथवा ७८७½ कैरेट) था। कोहेनूर जब कि औरङ्गजेब बादशाह के कोष में था, टेवरनियर ने स्वयं इसे अपने हाथों से उठाकर देखा-भाला था। इस समय इसका वजन ३१९ ½ रत्ती ही रह गया था। वजन घटने का कारण यह था कि कोहेनूर को साफ करने के लिये एक वेनेशियन कारीगर ने जिसका कि नाम 'हरटेन्सो बोर्जिया' (Hortenso Borgia) था, खूब रगड किया था। कुछ इतिहासज्ञों का कथन यह भी है कि वह प्रसिद्ध कोहेनूर जिसे नादिरशाह ने दिल्ली लूटते समय प्राप्त किया था तथा जिसने इसका नाम 'कोहिनूर' रखा था और घूम-घामकर यही कोहेनूर लार्ड लारेन्स के पास आया और इसके बाद यह ब्रिटिश राज्य-परिवार की अमूल्य सम्पत्ति में परिगणित हो गया।

मीर जुमला जिसने कोहेनूर को प्रथम प्राप्त करके शाहजहाँ को समर्पित किया था, हैदराबाद में एक बड़ा तालाब बनवाकर अपना नाम अमर कर गया है। यह तालाब उसी के नाम पर मीर जुमला तालाब के नाम से अभी भी विख्यात है। टेवरनियर ने मीर जुमला को एक अति धनाढ्य पुरुप माना है। उसने लिखा है कि मीर जुमला के पास लगभग २० मन हीरे थे। इन हीरों को उसने लूट में प्राप्त किया था जब कि वह गोलकुण्डा राज्य का सेनापति था। टेवरनियर ने हीरे की खान के विषय में यह लिखा है कि जो लोग खान खुदवाने का काम किया करते थे, गोलकुण्डा नरेश को बड़ी तादात में मालगुजारी देते थे। खान में काम करनेवालों की संख्या लगभग ८००० हजार तक हुआ करती थी। लगभग ३ पौण्ड हीरे प्रतिदिन निकाले जाते थे जो कि गोलकुण्डा राज्य की सम्पत्ति समझे जाते थे।

इसी प्रकार थेवनोट (Thevenote) नामक एक फ्रेंच यात्री जो कि १६६७ ई० में गोलकुण्डा आया था जब कि यहाँ अब्दुल्ला कुतुबशाह का राज्य था। थेवनोट ने लिखा है कि कुतुबशाह एक फुट लम्बी रत्नों की माला को अपने मुकुट में धारण करता था। उसके मुकुट में हीरे गुलाब के फूलनुमा कटे हुये थे जिनका व्यास ३-४ इंच का था। गुलाबनुमा हीरों के ऊपर एक छोटे मुकुट की शक्ल थी जिससे अन्यान्य रत्नों की डालियाँ-सी निकली हुई थीं जो देखने में ताड़ वृक्ष के पत्ते के समान मालूम होती थीं। इस तरह से बहुमूल्य रत्नों के समूह से गोलकुण्डा नरेश का मुकुट बना था।

जब यह सब सम्पत्ति औरंगजेब के हाथ लगी तब अनुमानतः इन सबका दाम लगभग २० करोड़ कूता गया था। जैसा कि कप्तान मन्न ने लिखा है—

केवल टेवरनियर ही इस वृत्तान्त का मूल लेखक नहीं है बल्कि सन् १६६२ ई० में विलियम मेथड और सर एन्ड्रु सोकोरी तथा सर एडल्फ थामसन आदि ने भी हीरे की खानों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। इन वर्णनों से विदित होता है कि मुगलों के सेनापति एवं अन्य उच्च पदाधिकारी हीरे की खानों के विषय में अधिक ध्यान देते थे और १० कैरेट से अधिक वजन के हीरे राज्य की सम्पत्ति होते थे।

एक दूसरा विश्वसनीय प्रमाण एक रिपोर्ट से मिलता है जो कि सन् १६७७ ई० में इंग्लैण्ड के अर्ल मार्शल ने अपनी रिपोर्ट रायल सोसायटी को समर्पित की थी। यह रिपोर्ट प्रधानतः बीजपुर और गोलकुण्डा की खानों से सम्बन्ध रखती है।

इस रिपोर्ट से यह विदित होता है कि १७वीं शताब्दी में गोलकुण्डा राज्य में लगभग २३ हीरे की खानें थीं। डॉ० वी. बाल ने इन खानों की उत्पत्ति, विभिन्न प्रकार के हीरों की पहचान, हीरे निकालने की तरकीबें आदि का सविस्तर वर्णन किया है। अर्ल मार्शल का पत्र कुरूर (Currure) नामक स्थान को सभी खानों से अधिक प्रसिद्ध बतला रहा है। इस 'कुरूर' का वर्तनाम नाम 'वज्र कुरूर' है। जो कि Gutanbal से २० मील दक्षिण की ओर बसा हुआ है। जहाँ पर अभी भी खेतों में पत्थरों के साथ तथा चट्टानों के साथ हीरे उपलब्ध होते हैं। अर्ल मार्शल का पत्र यह भी बतला रहा है कि किसी-किसी हीरे के ऊपर एक हरा स्तर होता था परन्तु भीतर सफेद ही होता था। आगे चलकर वज्र कुरूर के विषय में अर्ल मार्शल ने यह भी लिखा है कि यहाँ एक अति उत्तम श्रेणी का हीरा मद्रास के M/S. P. Orr & Sons को हाथ लगा था। इस हीरे का नाम 'Gorr-do-Norr' पड़ा था, और इसका दाम १०००० पौण्ड से लेकर १५००० पौण्ड तक आँका गया था। एक दूसरा प्रसिद्ध हीरा निजाम के राज्य के Partial नामक स्थान में सन् १७०१ ई० में पाया गया था जो बाद में Pitt (पिट) हीरा या रीजेण्ट (Regent) कहलाया। इस हीरे का वजन ४१० कैरेट था और उस समय इसका दाम ४८०००० पौण्ड आँका गया था। इस हीरे को मद्रास के गवर्नर पिट्ट (Pitt) साहेब ने २०४००० पौण्ड में प्राप्त किया जिसको Duke of Orleans ने ८०००० पौण्ड में खरीद लिया। इसको काट-छाँटकर १३६$\frac{१४}{१६}$ कैरेट का बनाया गया। यह कहा जाता है कि यह हीरा अभी French Republic की सम्पत्ति है और यह Louvre में Apollo Gallery में रखा गया है।

कप्तान मन्न के अनुसार इस बात का पता लगता है कि सन् १८९० ई० में Partial की खानों को खुदवाने के लिये 'हैदराबाद डेकन कम्पनी' ने अधि-

कार प्राप्त किया था। इसके द्वारा कुछ गढ़े खोदे गये जिनमें से २०८५ $\frac{1}{2}$ कैरेट रत्न उपलब्ध हुये परन्तु इसमें लाभ न देखकर काम रोक दिया गया।

गोलकुण्डा के प्रसिद्ध हीरों में से 'निजाम' हीरा भी एक है। Dr. Ball का कहना है कि सन् १७३५ ई० में यह हीरा एक छोटे बच्चे से छीन लिया गया जो इसे एक खिलौना समझ कर इससे खेल रहा था। इस 'निजाम हीरे' के विषय में इससे पूर्व के इतिहास का पता नहीं चलता तथा इसके वजन आदि का भी कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। मि० पिडिंगटन (Mr. Piddington) का अनुमान है कि यह लगभग २७७ कैरेट का रहा होगा। इसके विषय में कप्तान बोर्टन (Captain Borton) ने यह लिखा है कि यह शमसाबाद के २० मील पूर्व मिट्टी में गड़ा हुआ मिला। यह तीन टुकड़ों में तोड़ डाला गया जिसका बड़ा टुकड़ा ३७५ कैरेट का निकला। कप्तान मन्न का कहना है कि भारत के इन स्थानों में पाये जाने-वाले हीरों की बराबरी संसार का कोई भी हीरा नहीं कर सकता।

विदेशी हीरे की खानें

ब्राजिल प्रान्त—एक समय था जब कि बोर्नियो और पोन्सियाना नामक स्थानों में हीरे संचित किये जाते थे। यह कहा जाता था कि 'मट्टन' के राजा के पास ३६७ कैरेट उत्तम श्रेणी के हीरे थे। पिछली शताब्दी के अन्त में तथा इस शताब्दी के आरम्भ में बहुत तादात में हीरे ब्राजिल से आये हैं। ब्राजिल के हीरे सर्वप्रथम सन् १७२७ ई० में मीनाजिरेस (Minas Geraes) प्रान्त में पहचाने गये। यहाँ के हब्शी लोग हीरे को ताश की हार-जीत में प्रयोग करते थे। वहाँ की प्रधान-प्रधान खानें अभी भी 'डियामाण्टिना' (Diamantina) प्रान्त में तथा माटोग्रोसो के डियामाण्टिनो नामक स्थान में हैं। बाहिया (Bahia) नामक प्रान्त में हीरे की खानें हाल में खोदी गई हैं। ब्राजिल के हीरे लाल मिट्टी में सोने के टुकड़ों के साथ पाये जाते हैं। ब्राजिल के हीरे जब सर्वप्रथम यूरोप में आये तब हिन्दुस्थान के हीरों से निम्न श्रेणी के माने गये परन्तु उसका कोई कारण नहीं दिया गया। यद्यपि ये खानें सरकारी देखभाल में थीं तथापि कितने तादात में हीरे पाये जाते हैं, इसका कोई हिसाब-किताब नहीं है। मार्टियस (Martius) का अनु-मान है कि सन् १७७२ से लेकर सन् १८१८ ई० तक ३० लाख कैरेट्स हीरे ६० लाख पौण्ड मूल्य के ब्राजिल से बाहर भेजे गये। मिस्टर मावे (Mawe) का कथन है कि प्रति वर्ष २५ हजार से लेकर ३० हजार कैरेट्स के असंशोधित हीरे जो ८ हजार से लेकर ९ हजार कैरेट्स संशोधित हीरे के बराबर होते हैं, बाहर भेजे जाते हैं। तदनन्तर बाहर भेजने की तादात घट गई। यहाँ के हीरे

बहुत ही छोटे-छोटे होते हैं। एक कैरेट से लेकर २० कैरेट वजन के ही टुकड़े होते हैं। सन् १८५४ ई० में ब्राजिल का सबसे बड़ा हीरा २५४½ कैरेट वजन का लन्दन भेजा गया था। वह बहुत ही बड़ी चमक का हीरा था। काट-छाँट-कर यह १२४ कैरेट का बनाया गया और उसका नाम 'दक्षिण का सितारा' (Star of the South) रखा गया।

ब्राजिल की नदियों की रेत को धोकर लोग सोने की प्राप्ति किया करते थे। इस रेत में कभी-कभी सफेद चमकदार शुभ्र रवे मिल जाया करते थे। इन रवों को वहाँ के शौकीन खिलाड़ी मामूली पत्थर समझ कर ताश के खेलों में हार-जीत के कामों में लाया करते थे। ब्राजिल का एक विद्वान् यात्री भारत भ्रमण के लिये आया और उसने गोलकुण्डा के बाजार में हीरे क्रय-विक्रय होते देखा। उसका ध्यान अपने ब्राजिल प्रान्त के उन चमकते पत्थरों पर गया और उसने गोलकुण्डा से कुछ हीरे खरीदकर अपने साथ उन्हें लिसबान ले गया। यहाँ आकर उसने ब्राजिल के चमकते रवों को और गोलकुण्डा के हीरों की बड़े-बड़े जौहरियों से जांच करवाई। परिणाम स्वरूप यह सिद्ध हुआ कि यह दोनों प्रकार के हीरे असली हीरे हैं। अब क्या था समस्त यूरोप में तहलका मच गया। यूरोप के जौहरियों के हृदय में एक बहुत बड़ा धक्का लगा कि अब तो ब्राजिल में भी हीरे मिलने लग गये हैं। उन्हें उनके पुराने हीरों के स्टाक से काफी नुकसान उठाना पड़ा। इस घबड़ाहट में आकर यहाँ के जौहरियों ने अपना तमाम हिन्दुस्तानी हीरों का स्टाक पुर्तगाल वालों को बेंच डाला। परन्तु जनता साल ६ महने में ही यह समझ गई कि हिस्दुस्तानी हीरों की बराबरी ब्राजिल के हीरे कदापि नहीं कर सकते। पुर्तगाल के जौहरी लखपति और करोड़पति बन बैठे। पुर्तगाली जौहरियों की समस्त संसार में ऐसी धाक बैठ गई कि ये शुद्ध असली हिन्दुस्तानी हीरे ही बेचते हैं। धीरे-धीरे ये लोग ब्राजिल के हीरे भी हिन्दुस्तानी हीरे कहकर बेचते रहे। नामी दूकान का घटिया माल भी ऊँचे दामों में बिकता है।

ब्राजिल में हीरे निकालने का तरीका—ब्राजिल में अप्रेल से लेकर अक्टूबर तक लगभग ६–७ मास काफी गर्मी पड़ती है। इसी मौके पर नदियों का पानी सूखकर बहुत कम हो जाता है। बचे हुये पानी को नदियों के बीच से हटाकर नदी के एक तट से बहाया जाता है। अब सफेद स्थानों पर १० से १५–२० फुट तक के बड़े-बड़े खड्डे खोदे जाते हैं। इन खड्डों में से निकली मिट्टी बहुत बड़े-बड़े टबों में एकत्र की जाती है। वर्षा के प्रारम्भ होते ही इस मिट्टी का प्रक्षालन किया जाता है। हल्की मिट्टी बहा दी जाती है और भारी मिट्टी तली में नीचे बैठ जाती है। तलैटी में बैठे हुये पत्थरों को बहुत

ही सवाधानी से निरीक्षण किया जाता है। किसी भी मजदूर को हीरा मिलते ही वह खुशी का वाद्य बजाता है। उच्च कर्मचारी आकर उससे हीरा ले लेता है। दिन भर के हीरों का संग्रह करके संध्या समय उनका वज़न लेकर रजिस्टर में दर्ज कर लिया जाता है। वैसे तो उच्च कर्मचारी बहुत ही सतर्कता से काम लेता है फिर भी चालाक कुली कभी-कभी हीरे की चोरी कर ही लेते हैं। वे लोग कान-नाक आदि अंगों में छिपा लिया करते हैं। जब से एक्स रे नामक यंत्र का आविष्कार हुआ है—ऐसी चोरियां बहुत कम हो गई हैं।

अमेरिका के अन्यान्य स्थानों में भी हीरे पाये जाते थे। मैक्सिको के एक पुल्फो के दक्षिण पश्चिम में सीरामाडर नामक स्थान में जार्जिया, उत्तरी कारोलीना तथा कालीफोर्निया में हीरे पाये जाते हैं। पर इन स्थानों के हीरे बहुत ही छोटे-छोटे पाये जाते हैं।

सन् १८२९ ई० में यूरोप की ओर उरल पर्वतांचल के विस्सर्कस की लोहे की खानों के समीप हीरे की खानों की खोज की गई। प्रथम २० वर्षों में ७० हीरे उपलब्ध हुये परन्तु बहुत ही छोटे छोटे थे। इनमें सबसे बड़ा हीरा ८ कैरेट का था। यूरोप में हीरे का दूसरा स्थान बोहेमिया के डलास्को विज (Dlaschko witz) है जहाँ कि बालुओं के बीच में एक ही हीरा पाया गया था। मुर्रे का कहना है कि आयरलैण्ड की एक नदी से एक हीरा पाया गया है परन्तु यह बात अभी सन्देहात्मक है।

आस्ट्रेलिया में सन् १८५२ ई० में तथा सन् १८५९ ई० में मेकरी नदी के तट पर हीरे पाये गये थे। सन् १८६९ ई० में मेकरी नदी की सहायक नदी मजी के पास हीरे की खान का अनुसन्धान किया गया था। परन्तु आशाजनक परिणाम नहीं निकले।

दक्षिण आफ्रिका—दक्षिण आफ्रिका के क्षेत्र बहुत ही महत्त्व के हैं। सन् १८६७ ई० में एक डच वैज्ञानिक ने एक बोर जाति के व्यक्ति से एक हीरा प्राप्त किया। इस हीरे को उस बोर व्यक्ति का छोटा लड़का सड़क पर खेल रहा था। वह हीरा केप (Cape) में भेजा गया और उसकी परीक्षा की गई। तत्पश्चात् पेरिस की एक प्रसिद्ध विशेष प्रदर्शनी में लाया गया। इस हीरे पर लोगों का ध्यान विशेष आकृष्ट हुआ कि वह हीरा ५०० पौण्ड में बेचा गया। यह हीरा अरेञ्ज और माल नदी के मध्य अंचल में उपलब्ध हुआ था अतः इसी अंचल में सन्देहास्पद स्थानों पर अनुसन्धान किया गया परिणाम स्वरूप अभी तक १५ करोड़ पौण्ड के मूल्य के हीरे प्राप्त हो चुके हैं। कैप (Cape) का सबसे बड़ा हीरा २८८ $\frac{३}{८}$ कैरेट का है। यह एक उत्तम श्रेणी का हीरा है। इसका

व्यास १½ इंच हैं। इसकी काट-छाँट करने पर इसमें हल्का पीलापन आ गया है।

वैसे तो हीरा सहस्राब्दियों से एक बहुमूल्य निधि माना जाता रहा है। जिस देश में हीरे की खदानें हों उस देश का फिर क्या कहना है। संसार का सबसे बड़ा सौभाग्यशाली एवं वैभवशाली देश माना जाता है। एक समय भारत भी अपने वैभव के उच्च-उत्तुंग शिखर पर विराजमान था, परन्तु अब यह स्थान दक्षिण आफ्रिका ने ले लिया है। यहाँ की हीरक खानें बहुत ही सावधानी से संरक्षित रहती हैं। यहाँ की प्रत्येक खान के आस-पास विद्युत्-प्रवाहित कांटेदार तार कसे रहते हैं ताकि कोई भी भीतर और बाहर का व्यक्ति किसी भी प्रकार की चोरी न कर सके। बाहरी दर्शकों को खान के मैनेजर की एक सुनिश्चित समय पर प्रवेश करने की भी प्रथम ही आज्ञा लेनी पड़ती है।

दक्षिण आफ्रिका एवं उत्तर आफ्रिका, समस्त विश्व की हीरे की आवश्यकता की पूर्ति लगभग ९० प्रतिशत करता है और ब्राजिल लगभग ५ प्रतिशत एवं ५ प्रतिशत में अन्यान्य देश हैं। भारत का स्थान तो ½ प्रतिशत से भी कम समझना चाहिये।

दुनियां के कुछ प्रसिद्ध हीरे

कोहेनूर—सन् १७३९ ई० की बात है। इस समय नादिरशाह ने अपनी महत्वाकांक्षाओं के पीछे भारतवर्ष को तहस-नहस कर डालने के लिये कमर कस ली थी। उस समय विलासिता के समुद्र में निमग्न शहन्शाह मोहम्मद शाह दिल्ली के तख्त पर आसीन था। सन् १३०४ ई० के बाद भारतीयों के हाथ से निकला हुआ कोहेनूर मुगल साम्राज्य के राजाओं के मुकुट की शोभा बढ़ाता हुआ मोहम्मद शाह की पगड़ी में छिपा पड़ा था। नादिरशाह ने सुना कि भारत की बहुमूल्य निधि मोहम्मद की पगड़ी में है। क्या था! दिल्ली को तहस-नहस कर डाला और कोहेनूर को अपने हाथ में कर लिया। नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात् यह हीरा पंजाबकेशरी महाराजा रणजीत सिंह के पास आया। १८५० ई० के लगभग 'ईस्टइण्डिया कम्पनी' ने येनकेन प्रकारेण कोहेनूर को अपनाया, लार्ड डलहौसी के द्वारा महारानी विक्टोरिया को यह समर्पित किया गया। समुद्र पार जाते समय इसका तौल १८६॥ कैरेट था। इसकी बनावट महारानी और प्रिंस को पसन्द नहीं आई और इसे पुनः सुन्दरातिसुन्दर बनवाने का कार्य एमस्टर्डम की मेसर्स कौस्टर कं० को सौंपा गया। २० अगस्त १८५२ ई० को यह बहुत ही सुन्दर रूप में तैयार हो गया। तौलने पर यह कट-छँट कर केवल १०० कैरेट के कुछ ही ऊपर निकला।

मैसर्स कौस्टर कम्पनी ने लगभग ८ हजार पौंड का बिल पेश किया वह मंजूर हो गया।

कोहेनूर महाभारत के सुप्रसिद्ध नायक कर्ण के पास से घूमता-फिरता बाबर के पास होता हुआ विचारा कोहेनूर महारानी विक्टोरिया के पास आकर ठहरा। कहा जाता है कि इसका सर्वप्रथम तौल ७९३ कैरेट का था और घटते-घटते केवल १०० कैरेट के ही रह गया। लोग कहा करते थे कोहेनूर अपने मालिक को नहीं फलता परन्तु इस समय तो यही देखने में आ रहा है कि ब्रिटिश साम्राज्य तो सम्भवतः कोहेनूर की कृपा से ही फूल-फल रहा है। सबल और नीतिज्ञों के पास विश्व का साम्राज्य भी एक साधारण मुट्ठी में रखा जा सकता है। निर्बल के पास एक कौड़ी भी नहीं टिक सकती।

आजकल कोहेनूर विण्डसर कौंसिल में है इसका नमूना लण्डन-टावर में रखा है। वहाँ वालों का अन्दाज है इसकी कीमत २१ लाख रुपया होनी चाहिए।

आरलफ—इस समय रूस के सम्राट के राजछत्र में जड़ा हुआ है। इसका वजन १९४$\frac{3}{4}$ कैरेट है। यह हीरा भी नादिरशाह के ही पास था। नादिरशाह की मृत्यु के बाद यह हीरा किसी आरमेनियन व्यक्ति के हाथ लगकर एमस्टर्डम (Amsterdum) पहुँचा। सन् १७७२ ई० में साम्राज्ञी कैथरिन के लिये ड्यूक आरलफ के हाथ ९०,००० पौण्ड में बेंचा गया। कहा जाता है कि यह हीरा त्रिचनापल्ली के निकट कावेरी नदी के किनारे पर स्थित एक ब्रह्मा की मूर्ति के मुकुट में लगा था। साथ ही यह भी कहा जाता है कि प्रसिद्ध फ्रांसीसी यात्री टेवरनियर ने कुछ अपने साथियों को उत्तेजना देकर रात में मूर्ति से हीरा चुराकर चम्पत करवाया था। कुछ लोगों का कहना है कि यह कोहेनूर का ही एक टुकड़ा है।

पिट—पिट साहब नामक, मद्रास के गवर्नर हो चुके हैं। इन्होंने इस हीरे को १७०२ ई० में २०,००० पौण्ड में खरीदा। इसकी काट-छाँट और बनावट में लगभग ३,००० पौण्ड खर्च हुआ। तत्पश्चात् सन् १७१७ ई० में ड्यूक ऑफ आर्लियन्स के हाथ लगा और इसने लुई १५ वाँ (Loues XV) को १,३०,००० में बेंच डाला। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय यह हीरा बर्लिन भेज दिया गया। इस हीरे के बर्लिन आते ही कुछ दिनों के बाद लोगों ने इसे नैपोलियन प्रथम की तलवार में जड़ा हुआ देखा। योरोप महादेश में सबसे अधिक चमकदार हीरा यही समझा जाता है। इसका वजन १३६$\frac{3}{4}$ कैरेट है।

पहले-पहल इसका वजन लगभग ४०० कैरेट था जब कि यह सन् १७०१ ई० में गोलकुण्डा की खान से निकला।

होप—सन् १६४२ ई० में टेवरनियर ने कोलार नामक खान से इसे प्राप्त किया। इसका वजन केवल ४४ कैरेट ही है परन्तु इसका नीलवर्ण होने से इसका विशेष महत्त्व है। टेवरनियर ने इसे फ्रांस के बादशाह चौदहवें लुई को बेच दिया। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय यह किसी प्रकार लन्दन के जौहरी के यहां पहुँचा। इस जौहरी से टामस फिलप होप ने इसे २ लाख ७० हजार रुपयों में खरीदा और इसका नाम 'होप डायमण्ड' रखा। कुछ दिन बाद ही इसे १२ लाख रूपयों में हाबिब बे नामक व्यक्ति को बेच दिया गया। इसके इसने ३ टुकड़े कर डाले। एक टुकड़ा उसने खुद अपने पास रखकर दो टुकड़े काफी कीमत में बेंच डाले।

कलीनन—इसका वजन ३०२५ कैरेट है। यह संसार का सबसे बड़ा हीरा है। यह पाटोरिया (ट्रांसवाल) की खान से निकाला गया है। ट्रांसवाल की सरकार ने इसे २२॥ लाख रुपयों में खरीद कर सन् १९०५ ई० में सप्तम एडवर्ड को समर्पण कर दिया। इस समय इसके दो टुकड़े हो चुके हैं एक राजमुकुट में लगा है और दूसरा राजदण्ड में। यह हीरा सन् १९०५ ई० में ट्रांसवाल की खान से निकाला गया है।

इन हीरों के अलावा और कुछ हीरे हैं। 'मुगल' नामक हीरा कोलार की खान से निकला है जो कि वजन में १८७ कैरेट है। यह १६५०ई० में निकला था।'अकबरशाह' महाराजा बड़ौदा नरेश के पास है। 'दरियाई नूर' सोवियट सरकार के पास है। 'यूजिन साम्राज्ञी' भी बड़ौदा नरेश के पास है। 'हैदराबाद निजाम' निजाम राज्य की सम्पत्ति है। 'नासिक' नामक हीरा वेस्ट मिनिस्टर ड्यूक के पास है।

हीरे के प्रकार रूप-रंग और लक्षण प्राच्य मतानुसार

प्रकार—वज्रञ्च त्रिविधं प्रोक्तं नरो नारी नपुंसकम्।

पूर्वं पूर्वमिह श्रेष्ठं रसवीर्यविपाकतः॥

नर, नारी और नपुंसक भेद से हीरा तीन प्रकार का होता है। रस, वीर्य्य और विपाक के गुणधर्मानुसार नर हीरा उत्तम होता है और नारी हीरा मध्यम तथा नपुंसक हीरा अधम श्रेणी का होता है।

श्वेतादिवर्णभेदेन तदेकैकं चतुर्विधम्।

ब्रह्मक्षत्रिय विट् शूद्रं स्वस्ववर्णफलप्रदम्॥

रूप रंग के भेद के अनुसार हीरा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार प्रकार का माना गया है।

लक्षण—

नरहीरा—अष्टास्रं वाऽष्टफलकं षट्कोणमतिभासुरम् ।
अम्बुदेन्द्रधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ॥ (रसरत्नसमुच्चय)
सुवृत्ताः फलसम्पूर्णास्तेजोयुक्ता बृहत्तराः ।
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दु विवर्जिताः ॥ (भावप्रकाश)

जो हीरा आठ कोण अथवा छ कोणवाला हो । जिस प्रकार इन्द्रधनुष की परछाईं जल में पड़ने से उसमें सातों रंगों की प्रतिच्छाया दिखाई देती है उसी प्रकार हीरे को स्वच्छ जल के ऊपर हाथ की अंगुलियों से पकड़कर दिखाने से यदि जल के भीतर हीरे की प्रतिच्छाया में सातों रंग दिखाई देते हों, प्रकाशमय किरणें प्रसरित होती हों, वजन में हल्कापन हो परन्तु देखने में बड़ा दिखाई देता हो, गोल परन्तु सम्पूर्ण आठों फलक (कोण) अलग-अलग स्पष्ट दिखाई देते हों, रेखा और बिन्दुओं से रहित हो, वह 'नर हीरा' कहलाता है ।

नारी हीरा—तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रञ्च वर्तुलायतम् । (र. र. स.)
रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियः स्मृताः । (भा. प्र.)

जो हीरा चिपटा, गोल और कुछ लम्बा हो, रेखा और बिन्दुओं से युक्त हो और ६ कोण वाला हो तथा इन लक्षणों के अलावा उपर्युक्त 'नर हीरा' के समस्त लक्षण मिलते हों वह 'नारी हीरा' कहलाता है ।

नपुंसक हीरा—वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किञ्चित् गुरु नपुंसकम् ।
(रसरत्नसमुच्चय)
त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः । (भावप्रकाश)

जो हीरा तीन कोणवाला और उसके कोण मुड़े हुये तथा गोल हों, बड़ा और वजन में भारी हो उसे 'नपुंसक-हीरा' कहा जाता है ।

ब्राह्मणादि जात्यानुसार—लक्षण—

सतु श्वेतो स्मृतो विप्रः लोहितः क्षत्रियस्मृतः ।
पीतो वैश्योऽसित, शूद्रश्चतुर्वर्णात्मकश्च सः ॥

ब्राह्मण-हीरा—नितान्त श्वेत और किसी प्रकार की झांई से रहित होता है ।

क्षत्रिय हीरा—श्वेत तो होता ही है परन्तु उसमें से लाल रङ्ग की किंचित आभा प्रसरित होती है ।

वैश्य-हीरा—से पीली आभा प्रसरित होती है ।

शूद्र-हीरा—से काली आभा प्रसरित होती है ।

व्यावहारिक प्रकार

कलकत्ता, बम्बई और जयपुर आदि प्रमुख स्थानों के जौहरी लोग हीरे की जातियों के प्रकार मुख्यतः चार शब्दों द्वारा व्यवहार में लाते हैं।

(१) रक्तिया-हीरा—इस प्रकार के हीरे में लाल रङ्ग की झांई अथवा लाल रङ्ग का छींटा पाया जाता है अतएव ऐसे हीरे को 'रक्तिया' कहा जाता है।

(२) वनस्पति-हीरा—इस प्रकार के हीरे में से नीली झांई (आभा) या कुछ पीले रंग की आभा प्रसरित होती है। अथवा नीला या पीला छींटा दिखाई देता है।

(३) तरमरी-हीरा—इस प्रकार के हीरे के कोण कुछ कुण्ठित (दबे हुये) एवं चमक (प्रभा) कुछ कम होती है। छींटा या झांई लाल, पीली या नीली किसी भी प्रकार की हो सकती है।

(४) काकपदी-हीरा—इस प्रकार के हीरे से काले रंग की आभा प्रसरित होती है। या काला छींटा पाया जाता है।

सर्व साधारण लक्षण—जिस हीरे के स्पर्श करने से चिकनाहट अनुभव हो, देखने में (जिस प्रकार विजली की वत्ती में से आसपास किरणें फैलती हैं उसी प्रकार) विजली के समान आभा युक्त हो, पत्थर और हीरे को आपस में रगड़ने से पत्थर पर तो निशान वन जाता हो परन्तु हीरे पर किसी भी प्रकार का निशान न बन पाता हो, कमसे कम छ कोण हों और उन कोणों में तीक्ष्णता हो—ऐसा हीरा सर्वोत्तम समझा जाता है।

जिस हीरे को पत्थर की शिला के नीचे रखकर रगड़ा जाये और शिला पर तो घर्षण जन्य निशान बन जावे परन्तु हीरे का कुछ भी न विगडे—बस इस प्रकार की परीक्षा से सिद्ध किया हुआ हीरा ही सर्वोत्कृष्ट है।

निकृष्ट हीरा—वर्तुलं मलिनं नीलं भूत्याभं स्फुरितं खरम्।
स काकपादं रेखाढ्यं हेयं हीरकमादिशेत्॥

गोल, प्रभाहीन, नीली, काली रेखा या छींटा युक्त टूटा हुआ (कोई भी कोना इत्यादि) तथा खरदरापन वाला हीरा निकृष्ट अर्थात् आभूषणादि कार्यों के लिये श्रेष्ठ नहीं समझा जाता।

हीरा और ज्योतिष शास्त्र

प्राच्यमतानुसार—(१) ज्योतिष शास्त्रानुसार हीरे की और शुक्रग्रह की परस्पर मैत्री है। हीरे का पर्यायवाची शब्द 'भार्गवप्रिय' भी इसीलिये रखा-गया है। जिस व्यक्ति को शुक्र ग्रह पाप ग्रह के रूपमें आकर विराजमान हो जाता है उस समय उसे अधोलिखित व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

नेत्रे गुह्ये गुदे लिंगे रोगः स्याद्भृगुदोषजः।
प्रमेहः शोथमूत्रञ्च गुल्मरोगोपदंशकः॥

स्त्रीणां प्रदरपीडा च गर्भशूलादिदूषणम् ।
इन्द्रियाणां विकारः स्यान्मुष्कवृद्धिर्ज्वरो महान् ॥ (प्रश्नकल्पतरु)

अर्थात् शुक्रग्रह की प्रकुपितावस्था में नेत्र, गुदा, और शिश्नेन्द्रिय सम्बन्धी रोग होते हैं । इनके अलावा प्रमेह, शोथ, मूत्र रोग, गुल्म, उपदंश (गनोरिया), स्त्रियों में प्रदर तथा गर्भाशय सम्बन्धी शूलादि रोग, पंच ज्ञानेन्द्रियों के विकार, अण्डकोषवृद्धि (हाइड्रोसील) तथा ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं ।

जब इन रोगों से कोई व्यक्ति ग्रसित हो तो उसे शुक्र की शान्ति के लिये हीरे की अंगूठी धारण या दान करना चाहिये तथा हीरा भस्म के योग सेवन करना चाहिये । निश्चयेन रोग में शीघ्रतासे शान्ति होगी ।

(२) शुक्र—अत्यन्तविशदं वज्रं तारकाभं कवेः प्रियम् ।

अत्यन्त निर्मल तारक के समान चमकदार हीरा शुक्र को प्रिय है ।

कम से कम सवा रत्तिका वाला हीरा जो कि अष्टकोणाकृति हो पौष-मास के शुक्रवार रोहिणी नक्षत्र में हीरे की अँगूठी पहनना चाहिये ।

षट्कोणाकृति हीरा का देवता इन्द्र है । शुक्ल रंग के हीरा का देवता वरुण है । सर्पाकार एवं काली पीली तथा नीली आभा वाले हीरे का देवता विष्णु है । योन्याकार कनेर पुष्प के समान आकृति वाले हीरे का देवता वरुण है । सिंह एवं बाघ के नेत्र के समान आभा देने वाले हीरे का देवता अग्नि है । परन्तु हीरे का मुख्य देवता शुक्र है ।

(३) लाल एवं पीली आभावाले हीरे को धारण राजाओं तथा राज-नीतिक नेताओं के लिये उत्तम है । शुभ्र रंग के हीरे को धारण करना कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों के लिये उत्तम है । शिरीष पुष्प के समान आभावाले हीरे वैश्यों तथा व्यापारियों के लिये श्रेष्ठ हैं । नील एवं कृष्णाभा वाले हीरे शूद्रों तथा निकृष्ट श्रेणी के कर्मचारियों के लिये श्रेष्ठ हैं ।

(४) पुत्र की कामना करनेवाली स्त्रियों को सदा सफेद निर्मल शुक्ल आभायुक्त हीरे को ही धारण करना चाहिये ।

(५) हीरा भय को दूर करनेवाला, धैर्य को बढ़ानेवाला, भद्रता एवं अन्तर्दृष्टि ज्ञान और पवित्रता को देनेवाला होता है ।

पाश्चात्य मतानुसार—सुप्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिषी किरो (Cheiro) के मतानुसार जिन व्यक्तियों का जन्म जून, जुलाई और सितम्बर मास की किसी भी तारीख में हुआ हो उन्हें नाड़ी विकार जैसे नपुंसकता, आमवात पाचन संस्थान के रोग जैसे आमाशयपीडा, संग्रहणी, आंत्रपीडा इत्यादि एवं फेफड़ों के रोग, जैसे राजयक्ष्मा, निमोनिया इत्यादि होते रहते हैं, ऐसे व्यक्तियों के लिये हीरे का धारण करना, दान देना एवं हीरे की भस्मादि का

सेवन बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है। इसके अलावा जिन व्यक्तियों का जन्म किसी भी मास की वह तारीख जिसका कि योगफल ५ होता हो जैसे ५, १४, २३ तारीखों में हुआ हो उन्हें हीरे का दान, धर्म एवं भस्म अवश्य सेवन करना चाहिये।

हीरे के दोष और उनका कुफल

हीरे में लगभग १३ दोष होते हैं। (१) यव (२) तार (३) छाल (४) खुरदरा (५) गढ़ा (७) धब्बा (८) सुन्न (९) मैल (१०) धारा (११) विन्दु (१२) रेखा (१३) कागपद। इन १३ दोषों से युक्त हीरे के धारण करने से अनेक कुफल होते हैं। वे अधोलिखित हैं।

यदि हीरे में जौ की आकृत्ति सा लम्बा और बीच में कुछ मोटापन लिये कोई दाग हो तो उसे यवदोष कहते हैं।

(१) यवदोष—यवदोष चार प्रकार के माने गये हैं। (१) सफेद यव-युक्त हीरे को पहनने से सुखसम्पत्ति और धन का नाश होता है।

(२) लाल यव—हाथी, घोड़े आदि पशुधन का नाश करता है।

(३) पीला यव—यदि हीरे में पीले रंग का यव हो तो उसके धारण करने से वंश की क्षति होती है।

(४) काला यव—धन का विनाशक है।

(२) तार दोष—यदि हीरे में अभ्रक के समान तार की जाली के समान कोई आकृति हो तो उसे 'तारदोष' कहते हैं। इस दोष से युक्त हीरे को धारण करने से अनेक प्रकार के मानसिक दुःखों का उद्भव होता रहता है।

(३) छाल दोष—यदि हीरे के किसी भी भाग से (जिस प्रकार अभ्रक से परत निकल जाती है) छाल उतर गया हो तो उसे 'छाल दोष' कहते हैं। इस प्रकार के हीरे को धारण करने से शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है।

(४) खुरदरा दोष—यदि हीरे के किसी भी स्थान में अंगुलियों के स्पर्श करने से, खुरदरापन अनुभव हो तो उसे 'खुरदरा दोष' कहा जाता है। इसके धारण करने से भी अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

(५) गढ़ा दोष—यदि हीरे में किसी प्रकार का छोटा या बड़ा गढ़ा हो उसे 'गढ़ा दोष' कहा जाता है। यह शरीर में रोगों की उत्पत्ति करता है।

वर्णादि अनुसार हीरा धारण करने का फल

(१) विप्र—ब्राह्मण-हीरा धारण करने से सात जन्म तक वह व्यक्ति ब्राह्मण जाति में ही जन्म धारण करता है।

वेद पुराण और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होकर महान् प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

(२) जो क्षत्रिय क्षत्रिय वर्ण हीरा को धारण करता है वह शूर वीर होकर युद्ध क्षेत्र में कभी नहीं हारता। शत्रु अपने वश में रहता है। उसकी प्रजा सुखी अन्न-धन से संतुष्ट रहते हुये आज्ञा में रहती है।

(३) जो वैश्य वैश्य वर्ण हीरा धारण करता है वह धन-जन स्त्री-पुत्र इत्यादि सुखों से आनन्दित रहते हुये जनता में सम्मान पाता है।

(४) जो शूद्र शूद्र वर्ण हीरा धारण करता है वह साधु महात्माओं का सत्संगी, बुद्धिमान् और परोपकार में उसकी आस्था बनी रहती है। वह धन-वैभव से युक्त होकर अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ा लेता है।

जो व्यक्ति हीरा धारण करता है उसे भूत, पिशाच, सर्प इत्यादि से डर नहीं रहता। अग्नि, बिजली, चोर, डाकू, शत्रुसे अकाल मृत्यु नहीं हो सकती। जादू, तंत्र-मंत्र, मुठ आदि का प्रयोग उस पर नहीं चल सकता।

हीरे की उत्पत्ति

हीरे की उत्पत्ति के विषय में यूरोप में बड़ी किंवदन्ती प्रचलित है। 'डायमण्ड आफ क्रीट' नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। एक समय बृहस्पति ग्रह ने क्रोध में आकर इस व्यक्ति को श्राप दिया कि जा तू पत्थर हो जा। वह व्यक्ति पत्थर हो गया। इस व्यक्ति के परिवार वालों ने बृहस्पति ग्रह का बहुत ही विधि-विधान से पूजन-आराधन इसलिये किया कि आप 'डायमण्ड आफ क्रीट' को पत्थर योनि से मुक्त कर दें। बृहस्पति ग्रह ने प्रसन्न होकर यह वर-दान दिया कि इसे मैं पत्थर योनि से तो मुक्त न करूँगा परन्तु हाँ यह मैं आशीर्वाद देता हूँ कि जो भी व्यक्ति इस पत्थर को धारण करेगा वह मेरा अतीव प्रिय भाजन होगा। जो कुछ भी हो, इसी प्रकार की किंद्वन्तियाँ अपने हिन्दुस्थान में भी बहुत से विषयों में चालू हैं परन्तु आज का वैज्ञानिक इन्हीं बातों की बारीकी से शोध करना चहाता है। वह सदा अपनी वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर तब प्रत्येक बात को प्रकाश में सर्वसाधारण के सम्मुख रखता है।

कोयला—वैज्ञानिकों ने हीरे की उत्पत्ति का आदि कारण कार्बन को सिद्ध किया है। कार्बन कोयला है। कोयला तो काला होता है! फिर हीरा का रंग गोरा कैसे? कमल कीचड़ से उत्पन्न होकर जल के माध्यम से गुजर कर ऊपर आकर अनुपम सौन्दर्य धारण करता है। ठीक इसी प्रकार कोयला भी ग्रेफाइट के माध्यम से गुजरता हुआ हीरे के रूप में परिणत होता है। जिस कोयले को हम अपने रसोई घर में, हलवाइयों की भट्टियों में अथवा रेलगाड़ी के इंजिन में जलते देखते हैं—वह कोयला तो हम अपने चक्षु से प्रत्यक्ष देख लेते हैं परन्तु इसी प्रकार का कोयला आकाशमण्डल के प्रत्येक टूटने वाले तारे में, प्रत्येक ग्रह में तथा प्रत्येक नीहारिका में भी कुछ न कुछ

अवश्य पाया जाता है। यहाँ तक कि यदि हमारे शरीर का वजन २॥ मन हो तो उसमें कम से कम २० सेर कोयले का वजन भी समझना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार के उद्भिज, अण्डज और प्राणिज प्रत्येक पदार्थ में कोयला मौजूद है।

एक घन इंच (Cubic inch) कोयले के टुकड़े में १७० घन इंच अमोनिया गैस को शोषण करने की शक्ति है। हमने आधुनिक ढंग के बने अस्पतालों में देखा है कि अस्पताल के प्रत्येक कोने में एवं प्रत्येक २–३ रोगी के बीच में एक कोयले की टोकरी भरकर रख दी जाती है। कोयले में यह एक विशेष शक्ति है कि वह रोगियों के श्वासप्रश्वास से निकली हुई कार्बन डाई आक्साइड (Co_2) गैस एवं अन्यान्य जीवाणुओं को अपने अन्दर जज्ब करके प्रनष्ट कर दे। यदि किसी लकड़ी के खम्भे में गाड़ना हो और उस खम्भे के जितने अंशको जमीन में गाड़ना है—अग्नि में थोड़ा झुलसाकर गाड़ दिया जाय तो वह खम्भा जमीनस्थ जीवाणुओं से कभी भी आक्रान्त नहीं होगा बल्कि और भी मजबूत होकर स्थायी हो जायगा। इन्हीं उदाहरणों से विचारा जा सकता है कि जब इस साधारण कोयले में जीवाणु-नाशन शक्ति इतनी प्रबल है तो फिर हीरे में जो कि कोयले या कार्बन का शुद्धातिशुद्ध रूप है, शरीरस्थ रोगकारक जीवाणुओं को नष्ट करने की कितनी प्रबल शक्ति होगी !

कोयले या कार्बन की तत्तत् जातियाँ एवं उनमें कितने प्रतिशत कार्बन होता है, अधोलिखित सारिणी से स्पष्ट हो जाता है। जिस जाति में जितने अधिक प्रतिशत कार्बन होगा वह उतना ही अधिक कीमती और स्वास्थ्य-विधायक शक्तिसम्पन्न एवं उपयोगिता में श्रेष्ठ होता है।

जाति	कार्बन प्रतिशत
(१) शुष्क बीच काष्ठ (Dried beech wood)	49.89.
(२) अरण्य पीट (Forest peat)	51.47.
(३) पंकपीट (Moor peat)	53.59.
(४) शिलाजतु (Lignite)	57.28.
(५) ब्राउन कोयला (Brown coal)	61.2.
(६) लीअस कोयला (Lias coal)	78.08.
(७) सेप्रोपेलिक कोयला (Sapropelic coal)	80.07.
(८) ह्यूमिक कोयला (Humic coal)	83.47.
(९) प्रस्तर कोयला (Anthracite coal)	91.44.
(१०) ग्रेफाइट (Graphite)	100.
(११) हीरा (Diamond)	100.

उपर्युक्त कार्बन की जातियों में कार्बन कितनी मात्रा में है, इसका दिग्दर्शन स्पष्टतः हो जाता है। इसके अलावा इनमें हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि तत्व भी पाये जाते है। परन्तु ग्रेफाइट और हीरा में केवल कार्बन ही कार्बन होता है। अन्य तत्वों का नितान्त अभाव होता है।

ग्रेफाइट—कोयले की अपेक्षा ग्रेफाइट प्रकृति में कम मिलता है। कार्बन का यह एक उत्कृष्ट और द्वितीय रूपान्तर है। इसके प्रमुख उद्गम स्थान भारत के विभिन्न स्थानों के अलावा साइबेरिया और सीलोन हैं। उपयोगिता की दृष्टि से कृत्रिम ग्रेफाइट प्राकृतिक ग्रेफाइट की अपेक्षा उत्तम होता है। मेसर्स एचीसन एण्ड कम्पनी कृत्रिम ग्रेफाइट बनाने में मशहूर है, अतः बाजार में एचीसन ग्रेफाइट के नाम से ही बिकता है। बालू और पत्थर के कोयले का चूर्ण करके इनका भलीभाँति मिश्रण किया जाता है और फिर इसे विद्युत् की भट्टी में तप्त किया जाता है। तपाने में प्रथम कार्बन सिलिकेट (Carbon silicate) के रूप में बनता है, इसमें से सिलिकन आक्साइड उड़ जाता है और कार्बन ग्रेफाइट अवशेष रह जाता है।

गुणधर्म—ग्रेफाइट कोमल, भूरे रंग का द्युतियुक्त क्रिस्टलयुक्त घन होता है। संस्पर्श करने पर यह साबुन के समान सुचिक्कण होता है। वैसे तो यह प्राकृतिक अवस्था में सघनपिण्ड के रूप में पाया जाता है। कभी-कभी षट्पार्श्वीय क्रिस्टलों के रूप में भी पाया जाता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २.२ है।

उपयोगिता—विद्युत् भट्टी में यह नहीं पिघलता अतः इसकी कठोर मूषा या घरिया बनाई जाती है। साधारणतः सुनार सोना इत्यादि इसी में रखकर पिघलाते हैं। लोह निर्मित वस्तुओं पर यह पालिश करने के काम में भी आता है। सबसे अधिक उपयोग तो इसका यह है कि इसे मिट्टी के साथ मिलाकर पतले-पतले तारों के रूप में बनाकर इससे पेन्सिल तैयार करते हैं। यह ताप और विद्युत् का चालक होता है अतएव एलक्ट्रो-टाइप में इसका व्यवहार होता है। यह प्रायः ६०० अंश पर जाकर जलता है और कार्बन डाइआक्साइड (Co_2) के रूप में परिणत होता है। इसके जलने के पश्चात् जो भस्म अवशेष रह जाती है उसमें सिलिकन आक्साइड (Sio_2) आयर्न आक्साइड ($Fe_2 o_3$) और अलुमीना ($Al_2 o_3$) नामक यौगिक पाये जाते हैं।

सर्वश्रेष्ठ हीरे स्वच्छ श्वेत रंग के होते हैं। इस स्वच्छ श्वेत वर्ण से इन्द्रधनुष के समान सातो रंग दिखाई देते हैं। इसके अलावा पीले भूरे हरे नीले एवं गहरे लाल रंग के हीरे भी प्रकृति में कभी-कभी मिल जाया करते हैं परन्तु बहुत कम। कभी-कभी काले दूधिया रंग के एवं अपारदर्शी मोतियाइ रङ्ग के हीरे भी मिल जाया करते हैं।

प्रायः यह देखने में आता है कि बहुत कम हीरे दोषरहित होते हैं। उनमें किसी न किसी रंग के दाग या धब्बे होते ही हैं। इन्हीं दाग और धब्बों को दूर करने के लिये उन्हें काटना-छाँटना पड़ता है। होशियार कारीगर दाग और धब्बों को इस प्रकार मिटा देते हैं कि होशियार से होशियार जौहरी भी उन दागों को नहीं पकड़ पाते हैं। हीरों की काट-छाँट और पालिश करनेवाले कारीगरों को हक्काक अथवा (Lapidaries) कहा जाता है। संसार में एमस्टर्डम नगर ही एक ऐसा नगर है, जहाँ पर हीरों की कटाई-छँटाई और पालिश का काम बहुत बड़ी तादाद में होता है।

हीरा अपनी कठोरता के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध है। इस्पात की कठोरता ७ ही है परन्तु हीरे की कठोरता प्रायः ८ से १० तक है। आस्ट्रेलियन हीरे दक्षिण आफ्रिका के हीरों से अधिक कठोर होते हैं।

सूर्यप्रकाश का हीरे पर विचित्र प्रभाव पड़ता है। यदि हीरे को कुछ समय तक सूर्यताप में रखकर फिर उसे अंधेरे कमरे में लाया जाय तो उससे सातों रङ्गों की किरणें प्रस्फुटित होने लगती हैं। स्वच्छ श्वेत रङ्ग के अलावा रङ्गदार हीरों पर सूर्य किरणों का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि कभी-कभी उनका रङ्ग गायब हो जाता है। एक परीक्षा नली (Test tube) में हीरा रख कर उसमें से वायु निष्कासक यंत्र से वायु निकाल ली जाय और फिर उस परीक्षा नली में विद्युद्धारा प्रवाहित की जाय तो उसमें से हीरे का प्रकाश इतना अधिक होने लगता है कि इस प्रकाश में पुस्तक बड़े मजे में पढ़ी जा सकती है।

हीरा—प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में इस मूल्यवान् रत्न हीरे का वर्णन खूब मिलता है। परन्तु प्राचीन से प्राचीन यूनानी एवं रोमन साहित्य में भी बहुत से स्थानों में हीरे के विषय में उल्लेख पाये जाते हैं। १४ वीं एवं १५ वीं शताब्दी में हीरे एक विशेष आकार-प्रकार में काटे जाते थे, १६६५ में 'मुगल' नामक हीरे को बरगिस नामक जौहरी ने जो कि वेनिस का रहने वाला था, गुलाब की आकृति में काटा था। हीरे में कांट-छांट से पर्याप्त आभा आ जाती है।

सन् १७७२ में लेभोज़ियरने यह सिद्ध कर दिखाया कि हीरा ७६० अंश से ८७५ अंशतक उष्णता प्रदान करने से कर्बनद्वि ओषिद् (Co_2) गैसमें परिणत हो जाता है। सन् १८१४ में डेवी नामक वैज्ञानिक ने यह सिद्ध किया कि हीरे को जलाने के बाद भी ०.०५ प्रतिशत राख अवशिष्ट रह जाती है। उस राख में लोह, चूना, मैगनेसियम, सिलिका और टाइटेनियम नामक तत्व पाये जाते हैं।

रूप, रंग तथा लक्षण :—हीरे का रूप, रंग एवं लक्षण जानने के लिये हीरे के प्रकारों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। प्रधानतः हीरे तीन प्रकार के होते हैं।

(१) वह हीरे जिनके रवे पूर्ण होते हैं। पूर्ण रवादार हीरे आभूषणों में काम आते हैं।

(२) वह हीरे जिनके रवे अपूर्ण होते हैं। अपूर्ण रवादार हीरे जिन्हें बोर्ट (Borts) कहा जाता है, पालिश नहीं किये जा सकते।

(३) वह हीरे जिनके रवे अनिश्चित आकृति के होते हैं। इनका रंग काला या भूरा होता है। इन्हें 'कार्बोनेडो' कहा जाता है।

हीरों के रवे अपनी प्रकृतावस्था में अठपहलू अथवा १२ पहलूवाले होते हैं। ये पहलू या तो उन्नतोदर होते हैं अथवा नतोदर होते हैं। भारतीय हीरों के रवे प्रायः अठपहलू होते हैं और ब्राज़ीलियन हीरे के रवे १२ पहलूवाले होते हैं।

जितने भी रत्न उपरत्न हैं उनमें हीरा सबसे अधिक कठोर होता है। हीरे को सर्वसाधारण रीति से पहचानने का सबसे अधिक सुगम उपाय उसकी कठोरता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३०५२ है। उष्णता से इसका प्रसार बहुत कम होता है। अत्यन्त शीतल जल में से निकाल कर अत्यन्त उष्ण जल में रखने पर भी इसका परिमाण १.० से १.००००५४ होता है। इसका सबसे अधिक घनत्व ४२.३ पर होता है और इसके नीचे फैलने लगता है। यह एक ऐसी दशा है, जो ठोस पदार्थों में बहुत कम पाई जाती है।

यह बात सर्वमान्य है कि हीरा सब प्रस्तरों से कठोर होता है। बस इसी विशिष्ट गुण के कारण हीरा, हीरा कहलाता है। इसके द्वारा समस्त जवाहरात, नीलम, आदि रत्न खुरचे जा सकते हैं। हीरा स्वयं किसी भी अन्य रत्न से खुरचा नहीं जा सकता। हीरे को काटने छाटने के लिये लोहे की एक सीधी प्लेट (Horizontal iron plate) काम में आती है, इसे Schyt भी कहते हैं। यह प्लेट मशीनों द्वारा हीरे के कण पर एक मिनिट में ३ हजार बार तक घुमाई जाती है जिससे हीरा इच्छित आकृति में आ जाता है। यह बात तो सर्वविदित ही है कि हीरे से काँच चाहे जिस आकृति में काटा जा सकता है।

कृत्रिम हीरा (Ch. D.)—जब असली वस्तु की कीमत देना सर्वसाधारण व्यक्तियों के लिये मुश्किल हो जाता है तो लोग प्रायः असली वस्तु के स्थान में नकली वस्तु का निर्माण करने की चेष्टा करने लगते हैं और जब नकली वस्तुएँ अधिक परिमाण में बाजार में आने लगती हैं तब स्वभावतः ऐसी वस्तुओं की कीमत कम हो जाया करती है।

असली हीरे की कीमत बहुत अधिक होती है। सर्वप्रथम मोयासन नामक वैज्ञानिक को कृत्रिम हीरे निर्माण करने की सूझी। मोयासन ने शर्करा के शुद्ध कोयले को एक लघु लोहनिर्मित नलिका में रखकर उसे बन्द कर दिया और उसे एक मूषा में रखकर विद्युत भट्टी में प्रतप्त किया। इसके बाद मूषा के द्रवीभूत अंश को पिघले हुये सीसे में डुबाकर ठण्डा किया। इस आयोजन से लोह-नलिका का बाह्य अंश तो सहसा घन हो गया परन्तु आभ्यन्तरिक अंश द्रव ही रहा। आभ्यन्तरिक लोह अंश जब घन रूप में परिणत होना प्रारम्भ हुआ तब इस लोहे के प्रसार होने से शर्करा कोयले पर बहुत अधिक दबाव पड़ना प्रारम्भ हुआ। इस दबाव के परिणाम स्वरूप शर्करज कोयला हीरे में परिणत हो गया। लोहे को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (Hydrohloric Acid) में घुला लेने से हीरा अविलेय रह जाता है। इस प्रकार कुछ काले रङ्ग के और कुछ श्वेत रङ्ग के हीरे प्राप्त हुये। इस प्रकार के कृत्रिम हीरे बहुत ही छोटे होते हैं। इनका व्यास आधे मिलिमीटर से भी कम होता है। इनका उपयोग इनके छोटेपन के कारण आभूषणों में न होकर अन्यान्य उपयोगों में होता है।

कृत्रिम हीरे के गुण धर्म

शुद्ध हीरा घन, पारदर्शक, स्वच्छ एवं वर्णरहित होता है। यह समस्त रत्नों में कठोर और भंगुर भी होता है। यह विद्युत् चालक नहीं होता है। वर्तनांक—अन्य रत्नों से अधिक २.४५ होता है तथा आपेक्षिक घनत्व—३.५ होता है। वैसे तो स्वच्छ, वर्णहीन हीरा ही मूल्यवान् होता है परन्तु कभी-कभी लाल, नीला या हरा रंग का हीरा अपनी विशेष प्रकार की आभा के कारण बहुत अधिक मूल्य का हो जाता है। अम्ल पदार्थों (Acids) की इस पर कोई क्रिया नहीं होती। विद्युत् भट्टी में उच्चताप देने से हीरे का आयतन बढ़ जाता है और वह ग्रेफाइट के रूप में परिणत हो जाता है। ८०० अंश के ऊपर इसे तप्त करने से प्रज्वलनशील होकर कार्बन डाई आक्साइड (Co_2) के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

असली और कृत्रिम हीरे में भेद—वर्णहीन पुखराज, जरकन, एवं शुद्ध कांच, बिल्लोर और तुरमली में हीरे का धोखा प्रायः हो ही जाता है। परन्तु यहाँ तो हम केवल कृत्रिम और असली हीरे के ही भेद को दर्शाते हैं।

(१) कृत्रिम हीरे में और असली हीरे में बहुत ही कम भेद मालूम होता है। विशेष भेद यही है कि कृत्रिम हीरे बहुत ही छोटे होते हैं। परन्तु वैज्ञानिकों का यह एक निश्चित विश्वास है कि कुछ ही वर्षों के अनुसन्धान से प्रयोगशालाओं में कृत्रिम हीरे भी बड़े-बड़े रूप में निर्माण होने लग जायँगे।

(२) कार वो एण्डम द्वारा असली हीरे पर किसी भी प्रकार की रेखा नहीं खींची जा सकती। परन्तु कृत्रिम हीरे पर रेखा खिंच जाती है।

(३) सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखने से असली हीरे में प्रकाश किरणें द्विखण्डित होकर दो रूप नहीं धारण कर सकतीं परन्तु कृत्रिम हीरे में द्विखण्डित होकर विभिन्न रूप धारण कर लेती हैं।

(४) पुखराज, जरकन, कांच, बिल्लोर और तुरमली में विभेद करने के लिये सबसे सरल उपाय यही है कि इनका आपेक्षिक घनत्व देखना चाहिये। हीरे का आपेक्षिक घनत्व एवं कठोरता समस्त रत्नों से अधिक होती है।

(५) विशेषतः बिल्लोर और तुरमली में हीरे का बहुत अधिक भ्रम होने की सम्भावना रहती है। अधोलिखितसारिणी इस प्रभेदन में बहुत अधिक सहायक हो सकती है।

	हीरा	बिल्लोर	तुरमली
रचना—	षट्पहलू, अष्टपहलू, द्वादशपहलू।	षट् पहलू, अष्टपहलू, द्वादश पहलू।	प्रायः कणरूप कोई-कोई षट् पहलू।
प्रकार वर्ण—	स्वच्छ निर्मल स्फटिकाभ, दूधिया, सर्दई, कहरवी, पीत, अरुण, भूरा, नीला, बैंगनी, हरा, धानी।	स्वच्छ निर्मल पारदर्शी, श्वेत, दूधिया, सर्दई, कहरवी, अरुण, भूरा, नीला, बैंगनी, काला, हरा, धानी।	लाल, पिंगल कपिल, भूरा, मटमैला, पीला, अरुण।
भौतिक गुण—	प्रकाश प्रतिफलक, पारदर्शक, तीव्रचमक, दमक, व प्रकाशविभाजक अत्यन्त कठोर, परभंजनशील, खरोचन न पड़ना, १५०० शतांश के तपन तक सह्यशक्ति।	प्रकाश-प्रतिफलक, पारदर्शक, तीव्र चमक, दमक व प्रकाशविभाजक अत्यन्त कठोर, भंजनशील, खरोचन न पड़ना, २००० शतांश तक उत्ताप की सह्यशक्ति।	प्रकाश प्रतिफलक न्यून प्रकाश विभाजक शक्ति से शून्य, मन्द कान्तियुक्त, भंजनशील साधारण कठोर अग्नि सह्यशक्ति साधारण, खरोचन के चिह्न पड़ना।

रंग विहीन अर्थात् श्वेत पारदर्शक रत्नों का आपेक्षिक निदर्शन

रत्न	कठोरता (H)	आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	आवर्तनांक (R. I.)	द्विवर्तनांक (D. R.)
हीरा	१०	३.५२	२.४२	कुछ नहीं
जिरकान (Zircon)	७½	४.६९	१.९२६–१.९८५	·०५९
कुरन्दम् (Corundum)	९	३.९९	१.७६०–१.७६८	·००८
कृत्रिम स्पिनल (Synthspinel)	८	३.६३	१.७२८	कुछ नहीं
पुखराज (Topar)	८	३.५६	१.६१२–१.६२२	·०१०
कार्ट्ज़ (Quartz)	७	२.६५	१.५४४–१.५५३	·००९
पेस्ट (Paste)	५	३.७४	१.६३५	कुछ नहीं

यांत्रिक सहायता—असली और नकली हीरे की एवं अच्छे उत्तम श्रेणी एवं निकृष्ट श्रेणी के हीरों की पहचान तथा उनके रंग, रूप, चमक-दमक की परीक्षा के लिये कुछ नवीनतम यंत्रों का आविष्कार हुआ है।

(१) 'डायमण्डोस्कोप'—यह यंत्र एक प्रकार का 'दूरबीन' है, जिसकी सहायता से हीरों की दागी एवं अन्यान्य दोष, रंगरूप, तथा उनकी कटाई छँटाई के विषय का परिज्ञान होता है।

(२) 'कलरीमीटर'—विशेषतः इस यंत्र के द्वारा हीरे का रंग मालूम होता है। इसी प्रकार के पुराने यंत्र से हीरे के केवल ७ ही रंगों का विवेचन किया जा सकता था परन्तु नवीनतम 'कलरीमीटर' यंत्र से हीरे के १३ प्रकार के रंगों का परिज्ञान हो जाता है।

(३) 'डायमोलाइट'—इस यंत्र द्वारा 'मास्टर स्टोन' के साथ हीरों के रंग और चमक का मिलान किया जाता है। एक तेज लैम्प द्वारा हीरे पर प्रकाश डालकर यंत्र द्वारा हीरे के भीतरी रंगों का अध्ययन किया जाता है।

इन विभिन्न यंत्रों द्वारा अब यह सम्भव हो गया है कि हीरे का उसके गुण के अनुसार क्रमशः विभाजन किया जा सके।

गुणधर्म—आयुष्प्रदं झटिति सद्गुणदं च वृष्यम्
दोषत्रयप्रशमनं सकलासयघ्नम्।
सूतेन्दुबन्धवधसद्गुणकृत्प्रदीपनम्
मृत्युञ्जयं तदमृतोपममेव वज्रम्॥ (रसरत्नसमुच्चय)

हीरे में एक खास गुणधर्म यह है कि रोगी नितान्त मरणशय्या पर

है, घण्टे आधे घण्टे में संसार छोड़ने वाला है—ऐसी अवस्था में हीरक भस्म या उसके अन्यान्य योगों की एक ही मात्रा देने से शीघ्र ही चैतन्यता आकर आयु बढ़ जाती है। इसके अलावा वीर्य को बढ़ाने में हीरे की अनुपम शक्ति है। त्रिदोष का शमन करते हुये समस्त रोगों को नष्ट करता है। पारद का बन्धन और भस्मीकरण कर के उसके गुणों को और भी बढ़ा देता है। हीरा-भस्म अग्निप्रदीपक और मृत्युनाशक है। यह एक प्रकार का अमृत ही है। हीराभस्म ६ रसों से युक्त, हृद्य, योगवाही और सर्वोत्कृष्ट रसायन है। राजयक्ष्मा, प्रमेह और मेदरोग को नष्ट करता है। पाण्डु, शोथ, जलोदरादि उदररोग और नपुंसकता को जड़ से दूर करता है।

प्रकारानुसार गुणधर्म

रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः।
क्षत्रियो व्याधिविध्वंसिजरामृत्युहरः स्मृतः॥
वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तस्तथा मेहस्य दार्ढ्यकृत्।
शूद्रो नाशयति व्याधीन् वयःस्तम्भं करोति च॥

रसायन कार्य्यों में एवं इष्टसिद्धि के देने में ब्राह्मण जाति का हीरा सर्वश्रेष्ठ माना गया है। क्षत्रिय जाति का हीरा रोगों के नष्ट करने में तथा बुढ़ापा हरनेवाला और मृत्युञ्जय समझा गया है। वीर्य्य को गाढ़ा बनाने के लिये तथा अंगूठी में धारण करने से धनोपलब्धि करानेवाला वैश्यजाति का हीरा सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। रोगों के नष्ट करने तथा आयु को स्थिर करने वाला शूद्र जाति का हीरा उत्तम माना गया है।

तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धनकारिणः।
स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः॥
नपुंसकास्त्ववीर्य्याः स्युरकामाः सत्त्ववर्जिताः।
स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीवं क्लीवे प्रयोजयेत्।
सर्वेभ्यः सर्वदा देया पुरुषो वीर्य्यवर्धनः॥ (भावप्रकाश)
उत्तमोत्तमवर्णं हि नीचवर्णफलप्रदम्।
न्यायोऽयं भैरवेणोक्तः पदार्थेष्वखिलेष्वपि॥ (रसरत्नसमुच्चय)

पारद को बांधने के लिये 'नर-हीरा' श्रेष्ठ होता है। 'नारी-हीरा' को धारण करने अथवा सेवन करने से शरीर की कान्ति बढ़ती है, विशेष कर स्त्रियों के लिये बहुत ही सुखप्रद है। जो व्यक्ति नपुंसक और पराक्रम से रहित हैं उनके लिये 'नपुंसक'जाति के हीरे की भस्म का सेवन कराना चाहिये। भैरव नामक प्रसिद्ध और प्राचीन चिकित्सक कहते हैं कि 'ब्राह्मणजाति' का हीरा शूद्र व्यक्ति को धारण या सेवन करने से तो लाभ ही होता है परन्तु

शूद्र जाति का हीरा ब्राह्मण को धारण या सेवन कराने से लाभ न होकर नुकसान होता है। अतएव जो व्यक्ति जिस जाति का हो उसे उसी जाति का हीरा उपयोग में लाना चाहिये। ब्राह्मण जाति का हीरा सब किसी को किसी भी समय सेवन कराया जा सकता है अतएव जहाँ तक हो सके ब्राह्मण जाति का 'नर-हीरा' ही दान, धारण अथवा सेवन के उपयोग में लाना चाहिये।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म

'मखजन उल मुफरदात' के लेखक हीरा की प्रकृति सर्द व खुश्क मानते हैं और स्वाद में फीकापन। हीरा को किसी गहने में मढ़वाकर इस्तेमाल करने से दिल को कुव्वत मिलती है और किसी भी तरह का डर या झेंप दूर होती है। हीरे के कुश्ते (भस्म) को रोजमर्रा—एक महीने तक लेने से वलादत (बच्चा) पैदा होता है। तीन कोने वाले हीरे को अंगूठी में मढ़वाकर पहनने और कुश्ते का सेवन करने से मिरगी रोग दूर होता है।

हीरकशोधनम्

(१) हीरे के चूर्ण को पोटली में रखकर कोदो के क्काथ को दोलायंत्र में रखकर सात दिनों तक लगातार आँच देने से हीरे की उत्तम शुद्धि हो जाती है।

(२) सेंहुड के दूध में १०० बार डुबाने मात्र से ही हीरे की शुद्धि हो जाती है।

(३) कण्टकारी के क्काथ में दोलायंत्र द्वारा सात दिनों तक लगातार स्वेदन करने से भी हीरे की शुद्धि हो जाती है।

(४) बहुत ही तेज अग्नि पर एक दृढ़ मंजूषा में पारद भर कर रख दें। हीरे को इस मंजूषा में १०० बार डुबावें, हीरे की शुद्धि हो जायगी।

(५) कुलत्थकोद्रवक्वाथे दोलायन्त्रे विपाचयेत्।
व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनात्तद्विशुद्ध्यति॥

(शार्ङ्गधरसंहिता, भावप्रकाश, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसमंगल, आयुर्वेदप्रकाश)

कटेली के कन्द के भीतर हीरे को रखकर ऊपर से वस्त्र लपेट दें और कुलत्थ तथा कोदों के क्काथ में दोलायंत्र विधि से ३ दिन तक स्वेदन करें। हीरे का शोधन हो जाता है।

(६) गृहीत्वाह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दोदरे क्षिपेत्।
महिषीविष्ठया लिप्त्वा करीषाग्नौ विपाचयेत्॥
त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्तेऽश्वमूत्रके।
सेचयेत्पाचयेदेवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति॥

(शार्ङ्गधरसंहिता, आयुर्वेदप्रकाश)

किसी शुभ दिन में कटेली के कन्द के भीतर हीरे को रख दें और कटेली के कन्द के टुकड़े से छेद को बन्द करके कन्द को भैंस के गोबर से लेप करें। रात्रि में तो इस लेप किये हुये कन्द को ४ घण्टे तक उपलों में पकावें और प्रातः काल घोड़े के मूत्र में बुझावें। इस प्रकार ७ बार करने से हीरे की शुद्धि हो जाती है।

(७) व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायन्त्रेण पाचयेत्।
सप्ताहं कोद्रवक्वाथे कुलिशं विमलं भवेत्॥
(बृहद्योगतरंगिणी)

हीरे को कटीली के कन्द में भरकर कोदो के क्वाथ में दोलायंत्र विधि से शोधन करें।

(८) व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृदा लिप्तं पुटे पचेत्।
आहोरात्रात्समुद्धृत्य हयमूत्रेण सेचयेत्॥
वज्रीक्षीरेण वा सिञ्च्यात्कुलिशं विमलं भवेत्॥
(बृहद्योगतरंगिणी)

हीरे को कटेली के कन्द में भरमर इस कन्द पर मृत्तिका का एक मोटा लेप करें। इसके पश्चात् उसे घोड़े के मूत्र अथवा सेंहुड़ के दूध में बुझावें। इससे हीरा विशुद्ध हो जाता है।

(९) तप्तं तप्तं तु तद्वज्रं खरमूत्रं निषेचयेत्।
पुनस्ताप्यं पुनः सेच्यमेवं कुर्यात्त्रिसप्तधा॥
(शार्ङ्गधरसंहिता)

हीरे को २१ बार तपा तपा कर गधे के मूत्र में बुझावें। हीरा शुद्ध हो जाता है।

भस्मीकरण

(१) हरताल, गंधक, पारद और स्वर्णमाक्षिक और शुद्धीकृत हीरे को रखकर बेर के क्वाथ की भावना दें। इसके पश्चात् पिप्पली क्वाथ की सात भावनायें दें और इसका एक गोला बना लें। वारणपुट में इस गोले को सम्पुटित करके उपलों की अग्नि में पाचन करें। हीरे की भस्म हो जायगी।

(२) गंधक, पारद और मनःशिला समान भाग लेकर विशोधित हीरे को उसमें रखकर वारणाख्य पुट द्वारा सम्पुटित करके प्रबल अग्नि में पाचन करें। जब तक अच्छी भस्म न हो जाये लगातार पुनः पुनः आंच देते जावें। अधिक से अधिक १४ बार पुट दें। उत्तम भस्म हो जायगी।

(३) हरताल और मनःशिला समान भाग लेकर मजबूत खरल में विशोधित हीरे को डालकर तीन साल से लगे हुये कपास की जड़ के स्वरस

द्वारा भावना दें और घाम में सुखा लें। पश्चात् सम्पुट में रखकर महापुट द्वारा १४ बार फूंकें। हीरे की भस्म हो जायगी।

(४) हींग, सेंधा नमक और कुलथी के क्वाथ में हीरे को २१ बार बुझावें। हीरे की भस्म हो जायगी।

(५) मेढ़े का सींग, सर्प की हड्डी, कछुवे की खोपड़ी, खरगोश के दांत और अम्लवेतस—इन सबों को थूहर के दूध में पीसकर लुगदी बना लें और लुगदी के मध्य में विशोधित हीरे को रखकर धौंकनी से धौंके। हीरे की भस्म हो जायगी।

(६) मण्डूकं कांस्यजे पात्रे निगृह्य स्थापयेत्सुधीः।
सभीतो मूत्रयेत्तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत् ॥
तप्तं तप्तं च बहुधा वज्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥

(शार्ङ्गधरसंहिता, रसेन्द्रसारसंग्रह, आयुर्वेदप्रकाश)

हीरे को तपा-तपाकर मेढ़क के मूत्र में तब तक बुझावें जब तक कि हीरे की वारितर भस्म न हो जावे। मेढ़क को पकड़कर कांसे के पात्र में रखकर पकड़े रहें। मेढक डर के कारण मूत्र त्याग कर देगा।

(७) त्रिसप्तकृत्वः सन्तप्तं खरमूत्रेण सेचयेत्।
मुद्गरैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत् ॥
प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण तु।
भस्मीभवति तद्वज्रं वज्रवत्कुरुते तनुम् ॥
आयुष्यं सौख्यजननं बलरूपप्रदं तथा।
रोगघ्नं मृत्युहरणं व्रजभस्म भवत्यलम् ॥

(रसमंगल, रसेन्द्रसारसंग्रह)

हीरे को तपाकर गधे के मूत्र में बुझावें। इस विधि को २१ बार करें। इसके बाद हरताल को जल के साथ घोटकर गोला बनावें और इस गोले में हीरा (जो कि २१ बार गधे के मूत्र में बुझाया हुआ है) को रखें और तपावें। अब इस तप्त गोले को घोड़े के मूत्र में पीसकर गोला बनाकर और उसे तप्त-कर घोड़े के मूत्र में बुझावें। इस प्रकार यह विधि २१ बार करें। हीरे की बढ़िया भस्म बन जायगी। यह भस्म समस्त रोगों को नष्ट करके आयु, बल और सुख को बढ़ाती है। एक बार मृत्यु से भी बचाकर शरीर को दृढ बना देती है।

(८) हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्षिपेत्क्वाथे कुलत्थजे।
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥

(शार्ङ्गधरसंहिता, भावप्रकाश, रसचन्द्रिका, योगरत्नाकर, आयुर्वेदप्रकाश)

कुलथी के क्वाथ में हींग और नमक मिला लें। अब इस मिश्रण में हीरे को तपा-तपाकर २१ बार बुझावें। हीरे की भस्म हो जाती है।

(९) त्रिवर्षारूढकार्पासमूलमादाय पेषयेत्।
त्रिवर्षं नागवल्ल्या वा निजद्रावैः प्रपेषयेत्॥
तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
एवं सप्तपुटैर्नूनं कुलिशं मृतिमृच्छति॥ (बृहद्योगतरंगिणी)

तीन वर्ष पुराने लगे हुये कपास की जड़ अथवा तीन ही वर्ष पुरानी लगी हुई पान की बेल की जड़ को लेकर उन्हीं के स्वरस से घोट कर एक मूषा बना लें। इस मूषा में हीरा रखकर मुख बन्दकर दें और गजपुट में फूंक दें। सात पुट देने से निश्चय ही हीरा का मारण हो जाता है।

(१०) मेषश्रृङ्गभुजङ्गास्थिकूर्मपृष्ठाम्लवेतसम्।
शशदन्तं समं पिष्ट्वा वज्रीक्षीरेण गोलकम्॥
कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातमेव हि।
आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च॥
सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः॥ (भावप्रकाश)

भेड़ का सींग, सर्प की हड्डी, कछुवे की पीठ की हड्डी, अम्लवेतस, खरगोश के दांत—इन सबों को अलग २ समान भाग लेकर सेहुड के दूध के साथ खरल करें। खरल करते-करते जब सूख जाय तब उस समस्त द्रव्य का एक गोला बना लें। अब इस गोला में हीरा को रखकर फूंक (ध्मान) करें। हीरे की भस्म हो जाती है। यह भस्म आयुवर्धक, पौष्टिक, बलवीर्य्य-वर्धक, वर्णदायक, सुखकारक और सर्वरोगनाशक है।

(११) ब्रह्मज्योतिमुनीन्द्रेण क्रमोयं परिकीर्तितः।
नीलज्योतिर्लताकन्दे घृष्टं घर्मे विशोषितम्॥
वज्रं भस्मत्वमायाति कर्मवज्ज्ञानवह्निना॥ (रसरत्नसमुच्चय)

जिस प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि से कर्मरूपी बन्धन भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार नील ज्योति नामक लता के कन्द में हीरे को खरल करके खरल में ही लेप कर दें और सुखालें। सूखने के बाद हीरे की भस्म हो जायगी। यह विधि ब्रह्मज्योति नामक मुनि की कही हुई।

(१२) कुलत्थक्वाथसंयुक्तलकुचद्रवपिष्टया।
शिलया लिप्तमूषायां वज्रं क्षिप्त्वा निरुध्य च॥
अष्टवारं पुटेत्सम्यग्विशुष्कैश्च वनोपलैः।
शतवारं ततो ध्मात्वा निक्षिप्तं शुद्धपारदे॥
निश्चितं म्रियते वज्रं भस्म वारितरं भवेत्॥ (रसरत्नसमुच्चय)

कुलथी के क्वाथ तथा बड़ल के स्वरस से मनःशिला को घोट लें और दो

सकोरों के भीतर भाग को घुटी हुई मनःशिला का लेप कर के सुखा लें। अब एक सकोरे में हीरे को रखकर दूसरे सकोरे से सम्पुट करके आठ बार (पूर्वोक्त विधि से) पुट दे दें। इसके बाद पुट दिये हुए हीरे को तपा-तपाकर १०० बार पारद (शुद्ध) में बुझावें। हीरे की निश्चय ही वारितर भस्म बन जायगी।

मात्रा निरूपण—एक रत्ती हीरे की भस्म को खरल में रखकर चार मासा रस सिन्दूर उसमें डालकर एक दिल कर लें। उपयोग में लाने के लिये १ रत्ती से लेकर २ रत्ती की मात्रा का निर्धारण करें।

आमयिक प्रयोग

(१) नपुंसकता में—रससिन्दूर युक्त हीरे की भस्म १ रत्ती की मात्रा में दूध के साथ सेवन करने से नपुंसकता दूर होती है। इसी प्रकार मकरध्वज के साथ हीरक भस्म मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही नपुंसकता दूर होती है।

(२) राजयक्ष्मा में—हीरक भस्म १ रत्ती, स्वर्ण भस्म २ रत्ती, मोती भस्म ३ रत्ती की चार मात्रा बनावें। प्रतिदिन एक मात्रा के सेवन करने से एक मास में राजयक्ष्मा रोग दूर होता है।

(३) ½ रत्ती से १ रत्ती की मात्रा में सतत सेवन करने से अधोलिखित रोग दूर होते हैं।

(१) खदिरचूर्ण के साथ सेवन से कुष्ठ रोग दूर होता है।
(२) अडूसा रस के साथ सेवन से श्वासकास दूर होता है।
(३) अद्रकरस और मधु के साथ सेवन से श्वास दूर होता है।
(४) चित्रक क्वाथ के साथ सेवन से जीर्ण ज्वर दूर होता है।
(५) गुडूचि सत्व और मधु के साथ सेवन से प्रमेह दूर होता है।
(६) मक्खन के साथ सेवन से राजयक्ष्मा दूर होता है।
(७) विदारीकन्द चूर्ण के साथ सेवन से बहुमूत्र दूर होता है।
(८) पिप्पली मधु के साथ सेवन से मन्दाग्नि दूर होता है।
(९) पुनर्नवा क्वाथ के साथ सेवन से शोथ दूर होता है।

(४) पञ्चामृतरसः

हेम-माक्षिक-कान्ताभ्रवज्र-भस्म प्रवेशयेत्।
रसे सहेऽग्नि सप्ताहं मूलिकारसमर्दितम्॥
तां पिष्टिं यन्त्रयोगेन पचेत् पञ्चामृताह्वयः।
रसोऽयं मधुसर्पिर्भ्यां युक्तः पूर्वाधिको गुणः॥ (रसरत्नसमुच्चय)

स्वर्णमाक्षिक, कान्तलोह, अभ्रक और हीरा भस्म १-१ भाग, पारद और स्वर्ण भस्म १-१ भाग—इन समस्त द्रव्यों को मिलाकर मूलिका रस की ७

दिन तक भावना देकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को मधु और घृत के साथ सेवन करने से बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता एवं समस्त रोग नष्ट होते हैं।

(६) वज्रधाररसः

रसगन्धकताम्राभ्रं क्षारांस्त्रीन् वरुणाद्वृषम् ।
अपामार्गस्य च क्षारं लवणं द्विद्विमाषकम् ॥
चाङ्गेर्या हस्तिशुण्ड्याश्च रसे पिष्टं पचेत् पुटे ।
भक्षयित्वा ततो गुञ्जा ग्रहण्यां काञ्जिकं पिबेत् ॥
पक्तिशूले च कासे च मन्दाग्नावार्द्रकद्रवम् ।
अम्लपित्ते च धारोष्णं क्षीरं वज्रधरो ह्ययम् ॥

(रसरत्नसमुच्चय, रसकामधेनु)

हीराभस्म, पारदभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म—१-१ भाग। हरताल भस्म इन चारों के बराबर लें और सहजन, धतूरा, सेहुंड, मदार का दूध इन प्रत्येक की १-१ दिन भावना दें। इसके बाद बाकुची तेल की सात दिन तक भावना देकर सुरक्षित रखें।

सेवन—एक माशा की मात्रा है। इससे सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं।

(७) वडवानलरसः (वातनाशनरसः)

सूतहाटकवज्रार्ककान्तभस्म समाक्षिकम् ।
तालं नीलाञ्जनं तुत्थमब्धिफेनं समांशकम् ॥
पञ्चानां लवणानां तु भागैकैकं विमर्दयेत् ।
वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पुटेत् ॥
माषैकं चार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वडवानलम् ।
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सपिप्पल्यनुपाययेत् ॥
धनुर्वातं दण्डवातं शृङ्खलाकम्पवातनुत् ॥

(रसरत्नाकर, रसरत्नसमुच्चय)

पारद, स्वर्ण, हीरा, ताम्र, कान्तलोह, स्वर्णमाक्षिक, हरताल, सुरमा (काला), तुत्थक (तूतिया), समुद्रफेन, सेन्धानमक, काला नमक, बिड नमक, समुद्र नमक, काच नमक—इन समस्त द्रव्यों की भस्मों को समान मात्रा में लेकर मिला लें और थूहर के दूध को एक दिन तक भावना देकर गोला बना कर शराव सम्पुट में बन्द करके भूधर यंत्र में पाक करें।

मात्रा—१ माशा की मात्रा में अद्रक के रस के साथ सेवन करें।

अनुपान—में पीपल और पीपलामूल का क्वाथ लें।

उपयोग—इस रस को कम्पवायु, धनुर्वात (टिटेनस) और दण्डापतानकावस्था में देने से ये अवस्थायें नष्ट होती हैं।

(८) विद्यावागीश्वरीगुटिका

व्योमसत्त्वं मृतं वज्रं स्वर्णतारार्कमुण्डकम्।
तीक्ष्णं कान्तं तालकं च शुद्धं कृत्वा विमिश्रयेत्॥
सूक्ष्मचूर्णं समं सर्वं चूर्णांशं शुद्धपारदम्।
त्रिदिनं चाम्लवर्गेण मर्दितं चान्धितं धमेत्॥
विद्यावागीश्वरी ख्याता गुटिका वत्सरावधि।
यस्य वक्त्रे स्थिता तस्य जरा मृत्युर्न विद्यते॥
कर्षं ज्योतिष्मती तैलं क्रामणार्थं पिबेत्सदा।
वाक्पतिर्जायते धीरो जीवेच्चन्द्रार्कतारकम्॥ (रसरत्नाकर)

अभ्रकभस्म, हीराभस्म, स्वर्ण, चांदी, ताम्र, मुण्डलोह, तीक्ष्णलौह, कान्तलौह, शुद्ध हरताल—इन सबों की भस्मों को समान भाग में लेकर मिला लें और खरल करें। अब इसमें शुद्ध पारद समस्त द्रव्य के बराबर मिलाकर एक दिन खरल करें। दूसरे दिन से अम्लवर्ग की औषधियों के रस से तीन दिन तक भावना दें। प्रगाढ़ होने पर गोला बनाकर सुखा लें और अन्ध मूषा में रखकर ध्मान करें और तब तक ध्मान करें जब तक कि औषध द्रव्य की गोली न बन जावे। इस गोली को एक वर्ष तक सदैव मुख में रखने से बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता, मृत्यु शीघ्र नहीं हो पाती। बुद्धि में विशेष प्रखरता आकर वाक्शक्ति बढ़ जाती है। आयु विशेष बढ़ जाती है।

अनुपानमें—मालकांगनी का तैल एक कर्ष (१। तोला) अनुपानरूपेण सेवन करना चाहिये।

(९) अग्निरसः

वज्रहाटकसूतानां भस्मैषां द्वित्रिषट्क्रमात्।
त्रिकण्टकरसैर्भाव्यं दिनान्ते तद्विचूर्णयेत्॥
गुञ्जामात्रं प्रयोक्तव्यं सज्वरे राजयक्ष्मणि।
स्नुहीमूलं च जम्बीरद्रवैः स्यादनुपानकम्॥
साध्यासाध्यक्षयं हन्ति ह्यनुपानं मृगाङ्कवत्।
अयमग्निरसं खादेत् त्रिनिष्कं राजयक्ष्मनुत्॥ (रसरत्नाकर)

हीराभस्म २ भाग, स्वर्णभस्म ३ भाग, पारदभस्म ६ भाग—इन तीनों को मिलाकर गोखरू के क्वाथ की १ दिन तक भावना दें।

देश, काल और आयु को देखकर १ रत्ती की मात्रा में इसके सेवन से सज्वर राजयक्ष्मा, साध्य अथवा असाध्य क्षय रोग का नाश करता है।

इस अग्निरस के सेवनकाल में जम्बीरी नीबू के रस से भावित थूहर की जड़ के चूर्ण को अनुपान के रूप में देना चाहिये।

(१०) सुरसुन्दरीगुटिका

अभ्रकं माक्षिकं वज्रं कान्त हेम समं समम्।
सर्वाणि समभागानि सूतयुक्तानि कारयेत्॥
गोलकं ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा।
ततस्तं पुटपाकेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः॥
वाह्ये चास्यापि लिप्त्वा च वक्त्रस्था गुटिकोत्तमा।
स्तम्भयेच्छस्त्रसङ्घातं विषरोगांश्च नाशयेत्॥
अब्देनैकेन वक्त्रस्था वयःस्तम्भं करोति च।
वलीपलितहन्त्रीयं गुटिका सुरसुन्दरी॥

(रसरत्नाकर, रसचन्द्रिका)

अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, हीरा, कान्तलोह, स्वर्ण और पारदभस्म की समान मात्रा लेकर खरल करें और जलवेतस के स्वरस में पकावें। प्रगाढ़ होनेपर शराव सम्पुट में बन्दकर कण्डों में फूकें। स्वांगशीत होने पर औषध द्रव्य को निकाल लें।

शरीर में किसी भी स्थान से शस्त्रादि की चोट से यदि रक्तस्राव हो रहा हो उस समय इस रस को घृत से चुपड कर मुख में धारण करने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। विष रोग नष्ट होते हैं।

यदि इस रस को एक वर्ष तक मुख में धारण किया जाय तो आयु स्थिर होकर वली पलित नहीं हो पाता।

(११) मकरध्वजो रसः

वज्रहेमार्कसूताभ्रलोहभस्मक्रमोत्तरम्।
सर्वं कन्याद्रवैर्मर्द्यं शाल्मल्याश्च द्रवैस्त्र्यहम्॥
तद्रुद्ध्वा काचकुप्यन्तर्वालुकायां त्र्यहं पचेत्।
तत्कल्कं मुशलीक्वाथैर्द्राक्षाक्षीरसंयुतैः॥
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे रुद्ध्वाऽन्तर्भूधरे पुटेत्।
यामादुद्धृत्य सञ्चूर्ण्य सिताकृष्णात्रिजातकैः॥
समैः समं विमिश्र्याथ माषैकं भक्षयेत्सदा।
मागधी मुशली यष्टी वानरीबीजकं समम्॥
चूर्णं सिताज्यगोक्षीरैः पलार्धं पाययेदनु।

कामिनीनां सहस्रैकं रममाणो न मुह्यति ।
सेवनाद् दृढकायः स्याद्रसोऽयं मकरध्वजः ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

हीराभस्म १ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग, पारदभस्म ४ भाग, अभ्रकभस्म ४ भाग, लोहभस्म ६ भाग, इन समस्त भस्मों को मिलाकर ३ दिन तक घृत कुमारी एवं शाल्मली (सेमल वृक्ष) की मूसली के रस के साथ घोटें । अब इसे कांच की कूपी में रखकर तीन दिन तक बालुका यंत्र में पाचन करें । अब कांच की कूपी में से समस्त द्रव्य को निकालकर मूसली क्वाथ, स्नुही दुग्ध एवं मदार (अर्क) दुग्ध में प्रत्येक के साथ १-१ दिन घोटें और भूधर यंत्र द्वारा १ प्रहर अग्नि दें । इसके बाद इसमें मिश्री, पीपल, दालचीनी, इलायची तथा तेजपत्र के समान (औषध के बराबर) चूर्ण अच्छी तरह से घोट लें ।

सेवन—इस रस की एक माशा की मात्रा में—पीपल, मूसली, मुलेठी और केवांच बीज के चूर्ण को २॥ तोला की मात्रा में मिलाकर गोदुग्ध एवं मिश्री के साथ सेवन करें ।

उपयोग—इस मकरध्वज रस के सेवन से सहस्रों रमणियों के साथ सम्भोग किया जा सकता है । एवं अधिक दिन सेवन से शरीर एक दम पुष्ट हो जाता है ।

(१२) वज्रपञ्जररसः

वज्रपारदयोर्भस्म समभागं प्रकल्पयेत् ।
सूतपादं मृतं स्वर्णं सर्वं मर्द्यं दिनावधि ॥
हंसपाद्या द्रवैरेव तद्गोलं चान्धितं पुटेत् ।
अर्कक्षीरैः पुनर्मर्द्यं तद्वद्गजपुटे पचेत् ॥
भक्षयेत्सर्षपवृध्या यावन्माषं विवर्धयेत् ।
शरण्यः साधकानां तु रसोऽयं वज्रपञ्जरः ॥
चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थमृततीक्ष्णसुवर्चलम् ।
समं सर्वं सदा चानु भक्षयं स्यात्क्रामणे हितम् ॥
मासषट्कप्रयोगेण जीवेदाचन्द्रतारकम् ।
वलीपलितनिर्मुक्तो दिव्यकायो महाबलः ॥ (रसरत्नाकर)

हीरा और पारद की भस्म समान भाग लें । स्वर्णभस्म चतुर्थ भाग लेकर इन तीनों को हंसपाद के स्वरस में एक दिन तक भावना दें । प्रगाढ़ होने पर गोला बनाकर सुखालें और शराव सम्पुट में बन्दकर गजपुट द्वारा पाक करें । स्वांग शीत होने पर औषध द्रव्य को पुनः मदार के दूध की एक दिन भावना देकर प्रगाढ़ होने पर गोला बनावें और सुखालें । शराव सम्पुट में बन्दकर

गजपुट द्वारा पाक करें । स्वांग शीतल होने पर ठीक २ पीसकर सुरक्षित रख दें ।

मात्रा—एक सरसों के बीज के बराबर मात्रा से प्रारम्भ करके प्रतिदिन इतनी ही मात्रा बढ़ाते हुये १ माशा की मात्रा तक पहुँचे ।

अनुपान—में चीता, अद्रक, सैन्धव, सोंचर नमक और लोह भस्म—इनको समान मात्रा में लेकर खरल कर लें। इस चूर्ण को 'वज्रपंजररस' के सेवन के पश्चात् सेवन करना चाहिये ।

उपयोग—६ मास तक इस रस के सेवन से वलीपलित नष्ट होकर आयु की वृद्धि होती है और शरीर दिव्य-सुन्दर हो जाता है ।

(१३) कमलाविलासरसः

लौहाभ्रौ बलिसूतहाटकपविस्तुल्यं कुमारीरसे,
पक्वैरण्डदलैर्निबध्य सुदृढं सद्धान्यराशौ त्र्यहम् ।
क्षिप्त्वोद्धृत्य विचूर्णितं मधुवरोयुक्तं यथा सात्म्यतः,
कृष्णात्रेयविनिर्मितं गदजराविध्वंसि सौख्यप्रदम् ॥
आज्ञासिद्धमिदं रसायनवरं सर्वं प्रमेहप्रणुत् ।
कासं पञ्चविधं तथैव तनुगं पाण्डु च हिक्कां व्रणम् ।
श्लेष्माणं पवनं हलीमकगदं हन्याच्च मन्दानलम्
कण्डूकुष्ठविसर्पविद्रधिमुखापस्मारकाद्याञ्जयेत् ॥
गोप्याद्गोप्यतरः सुखेन सुलभः सर्वत्र सिद्धोऽस्त्ययम् ,
वैद्यानां कमलाविलासकरसोऽत्यंतं यशस्कारकम् ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

लोह, अभ्रक, गन्धक, पारद, स्वर्ण और हीरे की भस्म—समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस से घोटें और गोला बनालें। इस गोले को एरण्डपत्र से ढककर कच्चे सूत से बांधकर अन्नराशि में दबा दें। तीन दिन पश्चात् निकाल कर बारीक चूर्ण कर लें।

सेवन—देश, काल और आयु को देखकर मात्रा निश्चित करें। मधु और त्रिफला क्वाथ के साथ सेवन करने से वृद्धावस्था शीघ्र न आकर व्याधियाँ नष्ट होती हैं और सुखोपलब्धि होती है ।

उपयोग—यह रस प्रमेह, पांच प्रकार के कास, पाण्डु हिचकी, हलीमक, व्रण, कफरोग, वायुरोग, अग्निमांद्य, कण्डू, कुष्ठ, विसर्प, विद्रधि, मुखरोग, अपस्मार आदि रोगों को नष्ट करता है। यह रस प्रत्येक स्थान में सुलभतापूर्वक निर्माण किया जा सकता है और वैद्यों के लिये बहुत ही यश का देनेवाला है।

(१४) त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः

हीरं सुवर्णं सुमृतं च तारमेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम् ।
समं मृताभ्रं रससिन्दूरञ्च निष्पिष्टतीक्ष्णस्य तथाऽश्मनो वा ॥
खल्ले द्रवेणैव कुमारिकायाः गुञ्जाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात् ।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरसे नाम्ना सम्पूज्य सम्यग्गिरिजां दिनेशम् ॥
हन्त्यामयाद् योगशतैर्विवर्ज्यानथ प्रणाशाय मुनिप्रणीतः ।
अस्य प्रसादेन गदानशेषान् जरां विनिर्जित्य सुखं विभाति ॥

(रसराजसुन्दर, आयुर्वेदप्रकाश, रसचन्द्रिका, रसायनसारसंग्रह)

हीरा, स्वर्ण और चांदीभस्म १–१ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ३ भाग, अभ्रकभस्म और पारदभस्म ६–६ भाग, इन सबों को मिलाकर घृतकुमारी के रस में लौह या पत्थर के ख़रल में घोटें। प्रगाढ़ होने पर १–१ रत्ती की गोलियां बना लें।

इस रस के सेवन से (जो रोग किसी और अन्य औषधियों से अच्छे नहीं हो पाये हैं) समस्त रोग नष्ट होते हैं। इस त्रैलोक्यचिन्तामणिरस का सेवन शंकर-पार्वती का पूजन करके करना चाहिये।

(१५) जयमङ्गलो रसः

तालं ताप्यजगन्धकञ्च विमलं कान्ताऽऽरतीक्ष्णाभ्रकम्,
मण्डूरं कुलिशं सुराऽऽयसघनं चैभिः समं सूतकम् ।
वन्ध्याकन्दससिन्धुवारमधुकं शृङ्गीविषं टङ्कणम्
वोलं चित्रकलाङ्गली समरिचं विश्वोपकुल्याविषा ॥
एभिः सर्वसमांशकैस्सुविधिना बद्ध्वा द्विगुञ्जावटी
माधूकेन रसेन दोषनिचये तस्यै प्रपाने हिता ।
कृत्वा नेत्रयुगेऽञ्जनं च विधिना तत्सन्निपातं जये-
द्वैद्यैस्त्यक्तमचेतनं च विषमं तापं हि सर्वोत्थितम् ॥ (रसमंगल)

हरताल, स्वर्णमाक्षिक, अजमोदा, रौप्यमाक्षिक, कान्तलोह, पीतल, तीक्ष्ण-लोह, अभ्रक, मण्डूर, हीरा, स्वर्ण और वंगभस्म १–१ भाग, पारद १२ भाग और गन्धक १२ भाग लेकर दोनों की कज्जली बना लें। इस कज्जली में समस्त भस्मों को डालकर बांझ ककोड़े की जड़, सम्भालु के पत्ते, मुलेठी, मीठातेलिया, सुहागाभस्म, खूनखरावा, चीता, कलिहारी, कालीमिरच, सोंठ, पीपल और अतीस इन सबों का बराबर-बराबर भाग चूर्ण मिलावें और महुआ के पुष्पों के रस की भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां बना लें।

उपयोग—सन्निपात या विषव्याप्त अचेतनावस्था में इस रस को मुख द्वारा, नस्य अथवा अञ्जन करने से फौरन चेतन आ जाता है। सब प्रकार के विषमज्वरों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(१६) कालकंटको रसः

वज्रसूताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुंडं क्रमोत्तरम् ।
मारितं मर्दयेदम्लवर्गेण दिवसत्रयम् ॥
त्रिक्षारं पञ्चलवणं मर्दितस्य समं समम् ।
दत्वा निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥
शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषं चास्याष्टमांशतः ।
टङ्कणं विषतुल्यांशं दत्वा जम्बीरजैर्द्रवैः ॥
भावयेद्दिनमेकन्तु रसोयं कालकण्टकः ।
दातव्यः सर्वरोगेषु सन्निपाते विशेषतः ॥
द्विगुञ्जामार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगिणाम् ।
निर्गुण्डीमूलचूर्णं तु माहिषाख्यं च गुग्गुलुम् ।
समांशं मर्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसंमिता ।
अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णं च भोजनम् ॥
मंडलान्नाशयेत्सर्वान्वातरोगान्न संशयः ।
सन्निपाते पिबेच्चाशु रविमूलकषायकम् ॥

(बृहन्निघण्टुरत्नाकर)

हीराभस्म १ भाग, पारदभस्म २ भाग, अभ्रकभस्म ३ भाग, स्वर्णभस्म ४ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ६ भाग, मुण्डलोहभस्म ७ भाग, इन सबों को अम्लवर्ग के रसों की तीन दिन तक भावना दें । अब इस औषध द्रव्य में सर्जिका क्षार, टंकण (सुहागा) भस्म, यवक्षार एवं पांचों नमक—प्रत्येक १-१ भाग मिलावें और सम्भालु स्वरस की तीन दिन तक भावना दें । इसके पश्चात् समस्त द्रव्य का अष्टमांश वत्सनाभ (मीठातेलिया) और अष्टमांश ही सुहागे की भस्म मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस की एक दिनभर भावना दें ।

मात्रा—२ रत्ती की मात्रा में अद्रक रस के साथ दें ।

अनुपान—सम्भालु मूल चूर्ण और गूगल समान मात्रा में मिलाकर ११-१। तोले की गोलियां बना लें। इस कालकण्टकरस के सेवन के पश्चात् इस गूगल का सेवन करें । यह अनुपान वातज व्याधियों में उत्तम है । सन्निपात में अद्रक के रस का सेवन करें ।

उपयोग—मण्डल कुष्ठ और वातजरोगों के अलावा समस्त रोगों में अनुपान भेद से दिया जा सकता है ।

(१७) वातकण्टकरसः

वज्रसूताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम् ।

मरिचं मर्द्दयेदम्लवर्गेण दिवसत्रयम् ॥
द्विक्षारं पञ्चलवणं मर्द्दितं स्यात्समं समम् ।
ततो निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्द्दयेद्दिवसत्रयम् ॥
शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विपञ्चास्याष्टमांशतः ।
टङ्कणं विषतुल्यांशं दत्त्वा तं जम्बीरद्रवैः ॥
भावयेद्दिनमेकन्तु रसोयं वातकण्टकः ।
दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः ॥
द्विगुञ्जामार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगिणे ।
निर्गुण्डीमूलचूर्णन्तु महिषाक्षञ्च गुग्गुलुम् ॥
समांशं मर्द्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता ।
अनुयोज्य घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ॥
मण्डलं नाशयेत्सर्वं वातरोगे विशेषतः ।
सन्निपाते पिबेच्चानु तालमूलीकषायकम् ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, रसराजसुन्दर)

हीराभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म २ भाग, स्वर्णभस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, तीक्ष्णलोहभस्म ५ भाग, मुण्डलोहभस्म ६ भाग, कालीमिर्चचूर्ण ७ भाग—इन सबों को तीन दिन तक अम्लवर्गीय औषधियों की भावना दें और इस द्रव्य में यवक्षार, सर्जिकाक्षार और पांचों नमक को (सब मिलाकर ८ भाग) डालकर सम्भालु के स्वरस की तीन दिन तक भावना दें। प्रगाढ़ होने पर इसमें १ भाग शुद्ध मीठातेलिया का चूर्ण और १ भाग सुहागाचूर्ण डाल दें और जम्बीरी नीबू के रस की भावना दें। प्रगाढ़ होने पर २–२ रत्ती की गोलियां बना लें।

अनुपान—सम्भालु की जड़ का चूर्ण और शुद्ध गुग्गुलु सम मात्रा में लेकर उसमें घी मिलाकर एक दिल कर लें। १।–१। तोले की गोलियां बना लें। २ रत्ती की मात्रा में 'वातकण्टकरस' लेने के बाद में १। तोले की गोली निगल जायं और फिर स्निग्ध और गरमागरम भोजन का सेवन करें।

उपयोग—यह रस अद्रक स्वरस अथवा घृत के साथ लेने से वातव्याधि और सन्निपात को नष्ट करता है।

सन्निपात में अनुपानरूप से मूसली का क्वाथ देना चाहिये।

(१८) सर्वेश्वररसः

शुद्धसूतं चतुर्गन्धं पलं यामं विचूर्णयेत् ।
मृतताम्राभ्रलोहानां दरदं च पलं पलम् ॥
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् ।

माषैकं मृतवज्रं च तालसत्त्वं पलद्वयम् ॥
जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ।
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ।
वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥
आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम् ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥
द्विगुञ्जो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तमण्डलकुष्ठनुत् ।
वाकुची देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत् ॥
लिहेदेरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम् ॥

(शार्ङ्गधरसंहिता, बृहद्योगतरंगिणी, योगतरंगिणी, रसकामधेनु, रसरत्नसमुच्चय, भैषज्यरत्नावली, रसप्रकाश सुधाकर)

(नोट—'रसकामधेनु' और 'भैषज्यरत्नावली' में पारद और गन्धक का समावेश नहीं है। 'रसप्रकाश सुधाकर' में स्वर्णमाक्षिक और सीसाभस्म अधिक है।)

शुद्ध पारद २० तोला और गन्धक ५ तोला दोनों की कज्जली बनाकर रख लें। ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म और हिंगुलभस्म ५—५ तोला, स्वर्णभस्म और चांदीभस्म प्रत्येक ३ तोला ७॥ माशा, हीराभस्म १। माशा, हरतालसत्व १० तोला—इन सबों को मिलाकर जम्बीरी नीबू का रस, धतूरे का रस, वासक (अडूसा) रस, थूहर का दूध, मदार का दूध, कुचले का रस, कनेर-मूल के रस से (प्रत्येक से एक-एक दिन तक) भावना दें। प्रगाढ़ावस्था होने पर एक गोला बना लें। कपड़े से उस गोले को लपेटकर शरावसम्पुट में बन्द करें। अब इस शरावसम्पुट को वालुकायंत्र में मन्द-मन्द अग्नि द्वारा तीन दिन तक स्वेदित करें। स्वांगशीत होने पर औषध का चूर्ण करके उसमें मीठा तेलिया का चूर्ण ५ तोला, पीपलचूर्ण १० तोल। सब को मिलाकर खूब घोटें और सुरक्षित रख दें।

उपयोग—२ रत्ती की मात्रा में सेवन करने से सुप्तिकुष्ठ और मण्डलकुष्ठ नष्ट होता है।

अनुपान—बाकुची और देवदारु का चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर १। तोला की मात्रा में रेंडी के तेल में मिलाकर सेवन करें।

(१६) मृत्युञ्जयरसः

एकांशं प्रक्षिपेत्स्वर्णं रौप्यं वज्रञ्च तत्समम् ।
मुसल्या चाखुकर्ण्या च भाव्यं लुङ्गरसैस्त्र्यहम् ॥

मोचात्मगुप्ता स्वररसैस्तदा मृत्युञ्जयो रसः।
सर्वरोगहरो ह्येष सेवितः पथ्यशालिभिः॥
राजयक्ष्मादिरोगांश्च प्रमेहान् विंशतिं तथा।
जीर्णज्वरानतीसारान् ग्रहणीं बहुमूत्रताम्॥
तेन तेनानुपानेन नाशयेन्नात्र संशयः।
किमत्र बहुनोक्तेन जरामृत्युहरस्तथा॥
वज्रदेहो भवेत्सेवी द्रावयेद्वनिताशतम्।
न रेतसः क्षयस्तस्य षण्ढोऽपि तरुणायते॥
ऊर्ध्वलिङ्गः सदा तिष्ठेल्ललनायाः प्रियो भवेत्।
तप्तहाटकसंकाशः श्रीधीमेधाविभूषितः॥
हयवेगो मयूराक्षो वाराहश्रुतिरेव सः॥
अपरः कामदेवो वा मानिनीमानमर्दनः॥
गोधूमजान्विकारांश्च माषान्नं कदलीफलम्।
पनसं चापि खर्ज्जूरं वातामं नालिकेरकम्॥
मधुरञ्च भजेत्प्राज्ञो वर्षमात्रमतन्द्रितः।
मात्रास्य माषप्रमिता सदा सेव्या नरोत्तमैः॥

(रससंकेतकलिका, रसराजसुन्दर)

स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, हीराभस्म—इन तीनों को समान मात्रा में लेकर मूसली, चूहाकन्नी, बिजौरा नीबू तथा केवांच के क्वाथ में ३–३ दिन घोटकर तैयार कर लें। इस रस को रोगानुसार अनुपान सहयोग से सेवन करें। इससे राजयक्ष्मा, प्रमेह, जीर्णज्वर, अतिसार, संग्रहणी एवं बहुमूत्र रोग नष्ट होते हैं। यहां तक कि यह रस बुढ़ापा और मृत्यु तक पर विजय करता है। शरीर वज्र के समान मजबूत होकर सैकड़ों स्त्रियों के साथ संभोग करने की शक्ति पैदा हो जाती है। वीर्यक्षय नहीं हो पाता और नपुंसक पुरुष भी जवान हो जाता है। शिश्नेन्द्रिय सदा खड़ी रहती है और वह पुरुष स्त्रियों का परम प्रिय हो जाता है। इस रस के सेवन करने से सुन्दरता, मेधाशक्ति और बुद्धि तीव्र हो जाती है। चलने की शक्ति घोड़े के समान, नेत्रदृष्टि मयूर के समान, श्रवण शक्ति वराह के समान हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह रस स्त्रियों की कामपिपासा को बुझाने में दूसरा कामदेव ही है।

सेवन—मात्रा १ माशा है। गेहूँ की चीजें, उड़द, केला, कटहर, छुहारा, बादाम, नारियल एवं मधुर पदार्थ पथ्य रूप से एक वर्ष तक सेवन करें।

(२०) मदनकामदेवोरसः (मदनकामेश्वरो रसः)

तारं वज्रं सुवर्णञ्च ताम्रं सूतं सगन्धकम्।
लौहञ्च क्रमवृद्धानि कुर्य्यादेतानि मात्रया॥
विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत् काचमये घटे।
विमुद्रय पिठरीमध्ये धारयेत्सैन्धवैर्भृते॥
वह्निं शनैः शनैः कुर्यादि्दनैकं तत्समुद्धरेत्।
स्वाङ्गशीतञ्च तच्चूर्णं भावयेदर्कदुग्धकैः॥
अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा।
त्रिस्त्रिवेलं रसैरेपा शतवर्य्याश्च भावयेत्॥
पद्मकन्दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत्।
कस्तूरी व्योपकर्पूरं कङ्कोलैलालवङ्गकम्॥
पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतत् चूर्णं विमिश्रयेत्।
सर्वैः समां शर्कराञ्च दत्वा शाणोन्मितं पिवेत्॥
गोदुग्धा द्विपलेनैव मधुराहारसेवकः।
अस्य प्रभावात्सौन्दर्यं वलं तेजोऽभिवर्द्धते॥
तरुणी रमयेद्वह्वीर्न च हानिः प्रजायते॥

(योगरत्नाकर, रसमंगल, बृहद् योगतरङ्गिणी, रसराजसुन्दर)

चांदी भस्म १ भाग, हीराभस्म २ भाग, स्वर्णभस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, पारदभस्म ५ भाग, गंधक ६ भाग, लोहभस्म ७ भाग—इन सवों को परस्पर मिलाने के पूर्व गन्धक पारद की कज्जली वना लें। अव इस कज्जली में अन्य समस्त औषधियों को मिलाकर घृतकुमारी के रस से घोटे और काच कूपी में भर दें। अव इस काच कूपी का ठीक प्रकार से मुख बन्द करके एक वड़ी हण्डी में रख दें। इस हांडी में नमक भर दें और चूल्हे पर चढ़ा दें। मन्द-मन्द अग्नि देते हुये एक दिन तक पाचन करें। काच कूपी का स्वांग शीतल हो जाने पर औषध को निकाल लें। अव इस रसौषध को मदार दुग्ध, असगन्ध, काकोली, केवांच, मूसली, तालमखाना, शतावर, पद्म-कन्द, कसेरु और कास के क्वाथ से ३-३ वार भावना दें। इसके पश्चात् इस भावना दिये हुए रस में कस्तूरी, सोंठ, मिरच, पीपल, कपूर, कंकोल, छोटी इलायची तथा लौंग का चूर्ण और इन सब के वरावर मिश्री मिलाकर रख दें।

सेवन—१० तोला गोदुग्ध के साथ ५ माशा की मात्रा में करें। इस रस के सेवन करते समय मधुराहार का सेवन करें। इससे सुन्दरता, वल, और तेजस्विता वढ़ती है। इस रस से तरुणियों के साथ अत्यन्त रमण करने पर भी शरीर को कोई हानि नहीं होती।

(२१) कालाग्निरुद्रो रसः

वज्रसूतार्कस्वर्णायस्तारतीक्ष्णमयं क्रमात् ।
भागवृद्ध्या मृतं सर्वं सहसा चित्रकद्रवैः ॥
मर्दयेन्मातुलुङ्गाम्लैर्जंबीरस्य दिनत्रयम् ।
तथा शिग्रुजलैः क्वाथैः कन्याक्वाथैर्दिनत्रयम् ॥
आर्द्रकस्य दिनैः सप्त दिवसे भावितं ततः ।
शोषितं सूक्ष्मचूर्णन्तु पादांशं टङ्कणं तथा ॥
टङ्कणं सवत्सनागं चूर्णं कृत्वा विमिश्रितम् ।
त्रिकटुत्रिफलावह्निचातुर्जातकसैन्धवम् ॥
सौवर्चलं धूमसारं चूर्णमेतत् समं समम् ।
कृत्वा समं सुभागैकं तत्सर्वं चार्द्रकद्रवैः ॥
शिग्रुजैर्मातुलुङ्गोत्थैर्लोलयित्वा वटीकृतम् ।
रसः कालाग्निरुद्रोयं त्रिगुञ्जं खादयेत्सदा ॥
अग्निदीप्तिकरं हिक्काश्वासं सर्वकृतान्तकः ।
स्थूलानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकारकम् ॥
अनुपानविशेषैस्तु ततो रोगेषु योजयेत् ।
साध्यासाध्यं जयत्याशु मण्डलान्नात्र संशयः ॥ (रसराजसुन्दर)

हीराभस्म १ भाग, पारदभस्म २ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग, स्वर्णभस्म ४ भाग, लोहभस्म ५ भाग, चांदीभस्म ६ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ७ भाग—इन सबों को लेकर चीता, विजौरा नीबू, जम्बीरी नीबू, सहजने की जड़ और घृत-कुमारी (घीकुमार) के रस से तीन दिन तक भावना दें। अद्रक के रस की सात दिन तक भावना देकर उसमें मीठा तेलिया का चूर्ण चतुर्थांश और सुहागाभस्म चतुर्थांश मिलावें। एक दिन करने के पश्चात् इसमें त्रिकुटा, त्रिफला चातुर्जात (दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर) सेन्धा और सोंचर नमक, घर का धुंआ—इन सबों को १–१ भाग लेकर मिलावें और खूब घोटें। अब अद्रक, सहजना और बिजौरे नीबू के रस की भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें।

उपयोग—अग्निमांद्य, हिचकी, श्वास, मण्डलकुष्ठ, और यदि शरीर मोटा हो अथवा दुर्बल हो तो उसे ठीक २ समावस्था में लाता है।

(२२) दिव्यखेचरी वटिका

स्वर्णं कृष्णाभ्रसत्वं च तारं ताम्रं सुचूर्णितम् ।
समांशं द्वन्द्वलिप्तायां मूषायां चान्धितं धमेत् ॥
तत्खोटभागाश्चत्वारा भागैकं मृतवज्रकम् ।

माक्षिकं तीक्ष्णकान्तं च भागैकं मृतवज्रकम् ॥
समस्तं द्वन्द्वलिप्तायां मूषायां चान्धितं धमेत् ।
तत्खोटं सूक्ष्मचूर्णन्तु चूर्णांशं द्रुतसूतकम् ॥
त्रिदिनं तप्तखल्वे तु मर्द्यं दिव्यौषधिद्रवैः ।
रुद्ध्वाथ भूधरे पच्यादहोरात्रात्समुद्धरेत् ॥
द्रुतसूतं पुनस्तुल्यं दत्त्वा मर्द्यं पुटेत्तथा ।
इत्येवं सप्तवारांस्तु द्रुतं सूतं समं समम् ॥
दत्त्वा मर्द्यं पुटे पच्याज्जायते भस्मसूतकः ।
भस्मसूतसमं गन्धं दत्त्वा रुद्ध्वा धमेद् दृढम् ॥
जायते गुटिका दिव्या विख्याता दिव्यखेचरी ।
वर्षैकं धारयेद्वक्त्रे जीवेत्कल्पसहस्रकम् ॥
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां सर्वलोहस्य लेपनात् ।
जायते कनकं दिव्यं समावर्त्तं न संशयः ॥
पलद्वयं भृङ्गराजद्रवं चानुपिबेत्सदा ।
पूर्वोक्तं भस्मसूतं वा गुञ्जामात्रं सदा लिहेत् ॥
वर्षैकं मधुनाऽऽज्येन लक्षायुर्जायते नरः ।
वलीपलितनिर्मुक्तो महाबलपराक्रमः ॥

एक अंधमूषा लेकर उसके भीतर नाग और वंग का लेप कर दें। इस मूषा में स्वर्णभस्म, कृष्णाभ्रभस्म, चांदीभस्म और ताम्रभस्म १-१ भाग लेकर बन्द कर दें। इस मूषा को अग्नि पर रखकर धोंकनी से १ दिन भर धोंकें। इस प्रकार की विधि से मूषा के अन्दर समस्त औषध द्रव्य की एक गोली बन जायगी। स्वांगशीतल होने पर मूषा में की गोली निकाल लें।

अब एक दूसरी मूषा को नाग, वंग का लेप करके उसमें पूर्वोक्त गोली, हीराभस्म १ भाग स्वर्णमाक्षिक, तीक्ष्णलोह तथा कान्तलोहभस्म १-१ भाग रखकर मुख बन्द कर दें और एक दिनभर तक धोंकनी से धोंकें। स्वांग-शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल लें और उसे अच्छी प्रकार बारीक चूर्ण बनालें। अब इस चूर्ण के बराबर पारद लेकर दोनों को मिला लें और दिव्य वनस्पतियों के फलों के रस की भावना देते हुये तप्त खरल में ३ दिन तक घोटें और इसके पश्चात् एक मूषा में बन्द करके भूधरयंत्र में २४ घण्टे तक पाक करें। स्वांग शीतल होनेपर औषध द्रव्य निकालकर पुनः बराबर परिमाण का पारद डालकर पूर्वोक्त विधि द्वारा प्रस्तुत करके २४ घण्टे तक भूधर यंत्र में पाक करें। यह विधि सात बार होनी चाहिये। सात बार यह विधि करने से पारद की भस्म बन जायगी। अब इस भस्म में बराबर की गंधक मिलाकर

अन्ध मूषा में बन्द करके अग्नि पर रख करके १ दिन भर धौंकनी से धौंकें। इस विधि से गोली बन जायगी।

सेवन—इस गोली को एक वर्ष तक मुख में धारण करने से आयु की वृद्धि होती है। उस व्यक्ति के मल मूत्र में ऐसी शक्ति आ जाती है कि यदि लोहे के या ताम्र के टुकड़े पर मल का प्रलेप करके अग्नि पर तपाया जाय तो वह स्वर्ण बन जाता है ?

यदि गोली न बनाकर भस्म ही एक रत्ती की मात्रा में एक वर्ष तक घृत और मधु के साथ सेवन किया जाय तो शरीर दिव्य होकर वलि पलित रहित, पराक्रमी एवं सौन्दर्य युक्त हो जाता है। आयु १ लाख वर्ष की हो जाती है ?

अनुपानमें १० तोला भृङ्गराज का रस पान करते रहना चाहिये।

(२३) दिव्यखेचरी गुटिका

हेम्ना यद्द्वन्द्वितं वज्रं कुर्यात्तत्सूक्ष्मचूर्णितम्।
एतद्देयं गुह्यसूते मूषायामधरोत्तरम्॥
पादमात्रं प्रयत्नेन रुद्ध्वा सन्धिं विशोषयेत्॥
भूधराख्ये दिनं पच्यात्समुद्धृत्याथ मर्दयेत्।
दिव्यौषधफलं द्रावैस्तप्तखल्वे दिनावधि।
उद्धृत्य भूधरे पच्याद्दिनं लघुपुटैः पुटेत्॥
समुद्धृत्य पुनस्तद्वन्मर्द्यं रुद्ध्वा दिनत्रयम्।
तुषाग्निना शनैः स्वेद्यमूर्ध्वाधः परिवर्त्तयन्॥
जायते भस्मसूतोऽयं सर्वयोगेषु योजयेत्।
द्रुतसूतस्य भागैकं भागैकं पूर्वभस्मकम्॥
शुद्धनागस्य भागैकं सर्वमम्लेन मर्दयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मेयं खोटो भवति तद्रसः॥
धमेत्प्रकटमूषायां यावन्नागक्षयो भवेत्।
द्रुतसूतप्रकारेण द्रावयित्वा त्विमं रसम्॥
निक्षिपेत्कच्छपे यन्त्रे विडं दत्वा दशांशतः।
स्वर्णादिसर्वलोहानि क्रमेणैव च जारयेत्॥
प्रत्येकं षड्गुणं पश्चाद्वज्रद्वन्द्वञ्च जारयेत्।
त्रिगुणं तु भवेद्यावत्ततो रत्नानि वै क्रमात्॥
जारयेद्द्रावितान्येव प्रत्येकं त्रिगुणं शनैः।
ततो यन्त्रात्समुद्धृत्य दिव्यौषधद्रवैर्दिनम्॥
मर्द्यं रुद्ध्वा धमेद्गाढं जायते गुटिका शुभा।

पूजयेदङ्कुशीमन्त्रैर्नाम्नेयं दिव्यखेचरी ॥
यस्य वक्त्रे स्थिता ह्येषा स भवेद्भैरवोपमः ।
दिव्यतेजा महाकायः खेचरत्वेन गच्छति ॥
यत्रेच्छा तत्र तत्रैव क्रीडते ह्यङ्गनादिभिः ।
महाकल्पान्तपर्यन्तं तिष्ठत्येव न संशयः ॥
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां ताम्रं भवति काञ्चनम् ।
पलाशपुष्पचूर्णन्तु तिलाः कृष्णाः सशर्कराः ॥
सर्वं पलत्रयं खादेन्नित्यं स्यात् कामणे हितम् ॥
(रसरत्नसमुच्चय)

स्वर्ण का मोटा पत्र १ भाग, हीरा का मोटा चूर्ण १ भाग, पारद ४ भाग लेकर प्रथम एक अन्धमूषा में २ भाग पारद डाल दें। और उस पर हीरा चूर्ण और स्वर्ण पत्र डाल दें तथा पुनः बचा हुआ २ भाग पारद भी डाल दें। अब अन्धमूषा को ठीक तरह से बन्द करके भूधर यंत्र द्वारा पाक करें। स्वांगशीतल होने समस्त औषध द्रव्य को निकालकर दिव्य वनस्पतियों के फलों के रसों की एक दिन तक तप्त खल्व में भावना देकर भूधर यंत्र द्वारा पाक करें। स्वांगशीतल होने पर पुनः एक बार इसी विधि द्वारा पाक करें। इसके बाद औषध द्रव्य को दिव्य वनस्पतियों के फलों के रस की भावना देकर मूषा में बंद करके तुषाग्नि में तीन दिन तक (मूषा को चीमटे से उलट-पलट करते हुये) पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल लें। पारदभस्म प्रस्तुत मिलेगी। अब इस द्रव्य में की पारदभस्म १ भाग, शुद्ध सीसे का बुरादा १भाग, हिंगुलोत्थ पारद १ भाग—इन तीनों को जम्बीरी नीबू के रस की भावना देकर अन्धमूषा में बन्द करके एक दिन तक अग्नि में रखकर धौंकनी से धौंके। (अन्धमूषा के अन्दर ही अन्दर पारदादि की एक गोली सी बन जायगी) स्वांग शीतल होने पर पारदादि की गोली निकाल लें और एक खुली मूषा में रखकर अग्नि पर रखें और धौंकनी से तब तक धौंकते रहें जब तक कि गोली में मिश्रित सीसा भस्मीभूत होकर अपने अस्तित्व को नष्ट न कर दे। अब इस अवशिष्ट द्रव्य में १०वां भाग विडनमक मिलाकर कच्छप यंत्र रखकर स्वर्णादि सातों धातुओं का एक एक करके जारण करें। प्रत्येक धातु ६-६ गुनी जारण हो जानी चाहिए और सब के अन्त में हीरा द्विगुण जारण करें। इसके अलावा समस्त रत्नों का भी ३-३ गुना जारण करें। इन सब विधियों के समाप्त होने के पश्चात् दिव्य वनस्पतियों के फलों के रसों में समस्त औषध द्रव्य को खूब अच्छी प्रकार से घोटकर एक मूषा में बन्द करके अग्नि पर रखें और धौंकनी से धौंके। मूषा में अन्दर ही अन्दर गोली बन जायगी।

सेवन—इस गोली का शालिग्राम के समान अंकुशी मंत्र से पूजन करके मुख में धारण करने से शरीर दिव्य-प्रभायुक्त हो जाता है। प्रतिदिन मुख में धारण करने से आयु बहुत बढ़ जाती है। यहां तक कि मनुष्य आकाश मार्ग में उड़ने लगता है ? उसके मल-मूत्र में इतनी शक्ति आ जाती है कि स्पर्श मात्र से तांबे का स्वर्ण बन जाता है ?

अनुपान—ढाक के फूल, तिल (काली) और मिश्री ५ तोला दूध के साथ मिलाकर पान करते रहना चाहिये।

(२४) कामदेवो रसः

तारं वज्रं स्वर्णताम्रं च सूतं लोहं गन्धं भागयुग्मं प्रकुर्यात्।
कन्याद्रावैर्मर्दयेदेकयामं चूर्णं कृत्वा काचकूप्यां निवेश्य ॥
कूपीं चापि पूरयेत्सिन्धुचूर्णैर्मुद्रां दत्वा शोषयेत्तत्प्रयत्नात्।
वह्निं कुर्याद्वासरैकं प्रयत्नात् शीतं जातं खल्वमध्ये विचूर्ण्य ॥
अर्कक्षीरेणाथ भाव्यं हि सर्वं कासस्यैवं पद्मकन्दस्य नीरैः।
मौशल्या वै गोक्षुरस्य द्रवेण त्रिस्त्रिर्वेलां भावनां च प्रदद्यात् ॥
काकोल्या वै वाजिगन्धाशताह्वा-दुःस्पर्शानां वै स्वै रसैर्भावयेच्च।
चूर्णं कृत्वा मिश्रयेद्व्योषचूर्णं कर्पूरं वै कुङ्कुमैलालवङ्गम् ॥
कस्तूरीं वै पूर्वचूर्णात्षडंशां कार्या सर्वैः शर्करा वै समा च।
भक्षेच्चैवं निष्कमात्रं प्रयत्नाद्गोक्षीरं वै चानुपाने विधेयम् ॥
मिष्टाहारं सेवयेच्चैव नाम्लमोजस्तेजो वर्धते वै बलं च।
सौन्दर्यं वै जायते सुन्दरीणां वृद्धिः कामे नैव हानिश्च वीर्ये ॥
तस्मात्सेव्यः कामदेवो रसोऽयं वृष्येपूक्तस्त्वेष योगो वरिष्ठः ॥

(रसप्रकाश सुधाकर)

पारद गंधक २–२ तोला लेकर कज्जली बना लें। चांदी, हीरा, स्वर्ण, ताम्र और लौहभस्म २–२ तोला लेकर कज्जली में मिलाकर घृतकुमारी के रस के साथ भावना दें। प्रगाढ़ होने पर और खूब सूख जाने पर आतशी शीशी में भर दें और शीशी का मुख मिट्टी (नमक मिश्रित) से बन्द करके बालुकायंत्र द्वारा पाक करें। स्वांग शीतल होनेपर औषध द्रव्य निकाल लें और उसे पीस लें। अब मदार के दूध, कासमूल के स्वरस, कमलकन्द के रस, मूसली क्वाथ, गोखरू के क्वाथ, काकोलीस्वरस, असगन्ध स्वरस या क्वाथ, शतावर और जवासे के क्वाथ की अलग-अलग ३–३ भावनायें दें। अब इस भावित द्रव्य में सोंठ, कालीमिरच, पीपल, कपूर, केशर, इलायची, लौंग और कस्तूरी, सब समान भाग लेकर चूर्ण करके परस्पर मिलालें और खरल में खूब बारीक चूर्ण तैयार करलें। इस समस्त औषध द्रव्य के बराबर शुद्ध देशी शर्करा मिला लें।

अनुपान—गोदुग्ध के साथ १ निष्क की मात्रा में सेवन करें।

परिवर्जन—इस रस के सेवन काल में मधुर और अम्लपदार्थों का परित्याग करें।

उपयोग—इस रस के सेवन से बल, कान्ति एवं विशेपकर स्त्रियों के सेवन करने से उनकी सुन्दरता की अभिवृद्धि होती है। पुरुषों के सेवन करने से स्त्रीसम्भोग करने पर भी वीर्य्य क्षय नहीं होता। यह रस एक श्रेष्ठ वीर्य्य-वर्धक योग है।

(२५) अग्निकुमाररसः

सूतं चैकं गन्धकं च त्रिभागं नागं वङ्गं शुल्वतारं च हेम।
अभ्रं लोहं तारमाक्षीकवज्रमेकैकं वै शोधयित्वा प्रदेयम्॥
मुण्डीश्वेताकाकमाच्यश्वगन्धानिर्गुण्डयो वै भृङ्गराजेन युक्ताः।
रसैरेषां वासरान् त्रीन् प्रमर्द्यात्खल्वे सम्यग्गोलकं कारयेद्धि॥
ततो घर्मे शोषयेत्तं च गोलं लेपाः सम्यक् पञ्च मृद्भिः प्रदेयाः।
भाण्डं चार्धं पूरयेद्वालुकाभिर्मध्ये गोलं निक्षिपेन्मुद्रयेच्च॥
अग्निं कुर्याद्यामपष्टथष्टमात्रं शीते सिद्धो जायते वै रसोऽयम्।
कृष्णाक्वाथैर्भावनाः पञ्च देया आर्द्रेणैवं भावयेत्पञ्चवारान्॥
ज्वालामुख्याः स्वै रसैः सप्तवारं भाव्यं चाथो सूर्यवारं हि वह्नेः॥
निर्गुण्ड्या वै भावना भानुमात्राः पश्चात्कार्या वल्लमात्रा वटी हि॥
देया सद्भिः पञ्चमांशा हि कृष्णा तद्वच्छुण्ठी चूर्णिता तत्प्रमाणा।
कासे श्वासे मूत्रकृच्छ्रे ग्रहण्यामर्शःशोफे चाश्मरीमेढ्रोगे॥
मन्दे ह्यग्नौ वातरोगेऽथ शूलेऽपस्मारे वै सन्निपाते बलासे।
सेव्यो वल्लं चार्द्रकेणापि सम्यक् क्षारं चाम्लं वर्जयेच्चापि पथ्ये॥

(रसप्रकाश सुधाकर)

पारद १ भाग, गन्धक ३ भाग = इन दोनों की कज्जली बनाकर रख लें। सीसा, बंग, ताम्र, चांदी, स्वर्ण, अभ्रक, लोह, रौप्यमाक्षिक और हीरा—इन सबों की अलग-अलग १–१ भाग भस्म लेकर पारद गन्धक की कज्जली में मिला लें। अब गोरखमुण्डी, अतीस, मकोय, असगन्ध, सम्हालु और भृंगराज प्रत्येक के स्वरस से ३–३ दिन तक भावनायें दें। प्रगाढ़ होने पर गोला बनावें और सुखाकर उसपर पत्ते लपेटकर पांच परत का मिट्टी का लेप करके सुखा लें। अब एक मिट्टी की हांडी में आधा रेती भर दें और उस पर गोला रख दें और फिर से रेती हांडी के मुंह तक भर दें। इस हांडी का मुख एक सकोरे से ढक कर कपड़मिट्टी कर दें। हांडी को मन्दाग्नि पर रखकर ६८ प्रहर की आंच दें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर बारीक चूर्ण कर लें। इस

चूर्ण को पीपल और अद्रक की ५-५ भावनायें दें। कलिहारी स्वरस ७ भावना, चीतामूल क्वाथ और सम्भालु स्वरस की १२-१२ भावनायें दें और २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

२ रत्ती की १ गोली को पीपल और सोंठ के चूर्ण में मिलाकर अद्रक के रस के साथ लेने से कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, ग्रहणी, अर्श, शोथ, अश्मरी, उपदंशादि शिश्नरोग, अग्निमान्द्य, वातव्याधि, शूल, अपस्मार, सन्निपात और कफ का नाश होता है।

अनुपान—में अद्रक का सेवन करें।

अपथ्य—में क्षारद्रव्य और खट्टे अम्ल पदार्थों का परित्याग करें।

(२६) हीरावेध्यो रसः

द्वौ भागौ मृतहीरस्य ह्यभ्रकस्य त्रयः पुनः।
भस्म सूतस्य चत्वारः पट्शुद्धगन्धकस्य च॥
मृतलोहस्य द्वौ भागौ चत्वारस्तारकस्य च।
रोचनाया भवन्त्यत्र भावनाः पञ्च सूतके॥
तथा सुवर्चलायाश्च दातव्या भावनाः क्रमात्।
अथो दृढायाँ मूषायां मध्ये दत्वा च तं रसम्॥
पुनः शरावद्वितये दत्त्वा पश्चाद्विमुद्रयेत्।
हस्तप्रमाणके कुण्डे देयः शनैर्लघुः॥
द्वियामं यावदेवैतच्छीतमादाय तं रसम्।
विधाय भैरवस्याऽथ पूजनं भिषजस्ततः॥
गुञ्जामेकममुं दद्याद्धीरावेध्यं रसेश्वरम्।
मरिचेन समं प्रातस्ततस्ताम्बूलभक्षणम्॥
क्रोधमात्सर्यमुत्सार्य व्यायामं घर्मसेवनम्।
अतिप्रलपनं चिन्तामभ्यसूयां च वर्जयेत्॥
असत्यभाषणं चैव पथ्यं सेव्यं निरन्तरम्।
अनेन जायते पुष्टिर्दृढ्थारोग्यञ्च जायते॥
अनेन सुखमाप्नोति पुत्रं चानेन चोत्तमम्।
अनेन नश्यते वायुरनेनायुश्च वर्धते॥
अनेन लभते कान्तिमनेनापि जराञ्जयेत्।
अनेन पलितं याति खालित्यञ्च विशेषतः॥
अनेन वज्रकायाः स्याद्विशेषेण निरामयः।
स्थावरं जङ्गमञ्चापि कृत्रिमञ्चापि यद्विषम्॥

८ माशा)—इन दोनों को गधे के मूत्र में एक सप्ताह तक घोटें। पश्चात् इस घुटे हुये द्रव्य को कांजी से भरी हुई हण्डिका में डाल कर—इस हाण्डी का मुख ठीक-ठीक बन्द कर दें और स्वेदन करें। हाण्डी स्वांगशीत होने पर पारद को निकाल लें और उसे बार-बार वस्त्रपूत करके साफ करलें। अब इस स्वच्छ हुये पारद को एक पात्र में अलग रख दें।

२ रत्ती शुद्ध हीरा को खूब तपा-तपाकर उपरोक्त पारद में ७ बार बुझावें इस विधि से हीरे की भस्म हो जाती है। यदि भस्म न हो पावे तो हीरे को लोह निर्मित मूपा में रखकर पांच बार तपावें और पांच ही बार कटेली के काढ़े में बुझावें। भस्म अवश्य हो जाती है।

अब इस भस्म हुई हीराभस्म को एक मूषा में रखें और थोड़ा-सा (वसु-मात्र) तैल उसी मूपा में डालकर गरम करें। खूब गरम हो जानेपर प्रथम ही हीरा बुझाये गये पारद के आधे भाग को भी इसी मूपा में डाल दें एवं सीसे के बरक ६ माशा तथा सोने के बरक ६ माशा उसी मूपा में डाल दें और अग्नि पर किञ्चित् मन्दाग्नि दें जिससे सब वस्तुयें परस्पर मिल जावें। अब आधा बचा हुआ पारद भी इसमें मिला लें और गरम करें। एक दिल हो जाने पर खरल में डालकर घोटें। ठीक-ठीक घुट जाने के बाद एक गोला बना लें और शरावसम्पुट करके उसे जमीन की थोड़ी-सी गहराई में गाड़कर ऊपर से कोयलों की आंच दें। अग्नि की ज्वाला शान्त होनेपर एवं स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल लें। इस प्रकार की विधि से तैयार किया हुआ हीरावेध्य नामक प्रसिद्ध रसराज बड़े ही यत्न से प्रस्तुत किया जाता है। इस रस का जहाँ तहाँ विज्ञापन या उपयोग नहीं करना चाहिये। मौका पड़ने पर ही इसका उपयोग करना चाहिये। जब कि सन्निपात में रोगी मूर्च्छित हो जाता है तब उसके तालु प्रान्त में चौथाई रत्ती की मात्रा में मर्दन करने से या सुई की नोक से छेद करके थोड़ा-सा खून आने पर उस स्थान में मर्दन करने से रोगी को चैतन्य आ जाता है एवं सन्निपात से मुक्ति मिलती है। रोगी को प्यास लगने पर शीतल जल दें। पथ्य के रूप में शर्करा, ईख, मिश्री, चिरौंजी, दूध, खीर, केला, रसाला, फालसा और शर्बत आदि देना चाहिये। यह रस अग्निवर्धक, ग्रहणीरोग नाशक, क्षय और कुष्ठ रोग को नष्ट करता है। अनुपान भेद से यह समस्त रोगों को नाश करता है।

मृत्युञ्जयरसः

वज्रभस्म रसभस्म मौक्तिकं मर्दितं च खलु निम्बुवारिणा।
तच्च कुक्कुटपुटेन पाचितं चूर्णयेन्मधुयुतं हि वज्रकम्॥

वर्षमात्रमपि सेवितं जयेन्मृत्युमेव सकला रुजा अपि ॥
(रसप्रकाश सुधाकर)

हीरा, पारद और मोतीभस्म समान मात्रा में लेकर नीबू के रस की भावना देकर गोला बनालें और गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके कुक्कुटपुट द्वारा साफ करें।

सेवन—३ रत्ती की मात्रा में इस रस को मधुके साथ यदि एक वर्ष तक सेवन किया जाय तो मनुष्य की अकालमृत्यु नहीं होती तथा समस्तरोग नष्ट होते हैं।

विजयपर्पटी

रसं वज्रं हेमतारं मौक्तिकं ताम्रमभ्रकम्।
सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद्विजयपर्पटीम् ॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम्।
आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम् ॥
प्रवाहिकां षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम्।
शोथञ्च कामलां पाण्डुं प्लीहगुल्मजलोदरम् ॥
पक्तिशूलाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं भ्रमिम्।
अष्टादशविधान् कुष्ठान् प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥
चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः।
प्रातः करोति नियतं सततं द्विगुञ्जाम्
यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं
हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥
जराव्याधिसमाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणः सुधाम् ॥
(रसचन्द्रिका, भैषज्यरत्नावली)

शुद्ध पारद, हीराभस्म, स्वर्ण, चांदी, मोती, ताम्र और अभ्रकभस्म १-१ भाग, गन्धक समस्त द्रव्य के बराबर लेकर मिला लें और पर्पटी निर्माणविधि से पर्पटी बना लें तथा पीसकर सुरक्षित रख लें।

सेवन—२ रत्ती की मात्रा में इस पर्पटी के सेवन से कष्टसाध्य और बहुत पुरानी संग्रहणी, अत्यन्त कष्टकर और पुराना आमशूल एवं अतिसार, प्रवाहिका, ६ प्रकार के अर्श, सोपद्रव राजयक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डु,

प्लीहा, गुल्म, जलोदर, पक्तिशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, भ्रम १८ प्रकार के कुष्ठ, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण (४ प्रकार का), अग्निमांद्य और अरुचि रोग नष्ट होते हैं। वृद्ध व्यक्ति भी इस पर्पटी के सेवन करने से वह बलिपलित से रहित और निर्मल, स्वच्छ-बुद्धिवाला होकर (१०० वर्ष) तक जीता है। प्रातःकाल सेवन करने से अत्यन्त कामोत्तेजना होती है।

भगवान् शंकर ने जब इस संसार को व्याधिग्रस्त देखा तब इस पर्पटी का निर्माण किया जिस प्रकार भगवान विष्णु ने अमृत का निर्माण किया था।

भूताङ्कुशरसः

सूतायस्ताम्रमभ्रञ्च मुक्तां चापि समं समम्।
सूतपादोत्तमं वज्रं शिलागन्धकनालकम्॥
तुत्थं रसाञ्जनं शुद्धमब्धिफेनं शिलाञ्जनम्।
पञ्चानां लवणानाञ्च प्रतिभागं रसोन्मितम्॥
भृङ्गराजचित्रवज्रीदुग्धेनापि विमर्दयेत्।
दिनान्ते पिण्डिकां कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्॥
भूताङ्कुशो रसो नाम नित्यं गुञ्जाद्वयं लिहेत्।
आर्द्रकस्य रसेनापि भूतोन्मादनिवारणम्॥
पिप्पल्याक्तं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम्।
स्वेदयेत्कटुतुम्ब्या च तीक्ष्णं रूक्षञ्च वर्जयेत्॥
माहिषञ्च घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भक्षयेत्।
अभ्यङ्गं कटुतैलेन हितो भूताङ्कुशे रसे॥

(रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली)

पारद गंधक १–१ भाग लेकर कज्जली बना लें। इस कज्जली में लोह, ताम्र, अभ्रक और मोतीभस्म १–१ भाग, हीराभस्म ¼ भाग, मैनसिल, हरताल, अंजन और तुत्थभस्म १–१ भाग, रसौंत, समुद्रफेन और पांचो नमक १–१ भाग मिला लें। अब भृंगराज रस, चीताक्वाथ और थूहर के दूध की १–१ दिन तक भावना देकर गोला बनालें और इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करें। स्वांगशीतल होनेपर औषध द्रव्य निकालकर पीस लें और सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को २ रत्ती की मात्रा में अद्रक रस के साथ सेवन करने से और अनुपान में पीपलचूर्ण और दशमूल क्वाथ के सेवन करने से उन्माद रोग नष्ट होता है।

पथ्य—प्रतिदिन सरसों के तेल की मालिश और भैंस का घी तथा दूध

एवं गुरु पदार्थों का सेवन करें। दो-दो दिन का अन्तर देकर कड़वी तुम्बी के क्वाथ से वाष्पस्नान भी करना उत्तम है।

अपथ्य—तीक्ष्ण और रूखे पदार्थों का सेवन न करें।

प्रमेहकुञ्जरकेसरीरसः

रसगन्धायसाभ्राणि नागवङ्गौ सुवर्णकम्।
वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत्॥
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे।
बुद्ध्वा शुष्कं समुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत्॥
सन्धिलेपं मृदा कुर्याद् गर्ते च गोमयाग्निना।
पुटेद्यामचतुःसङ्ख्यमुद्धृत्य स्वांगशीतलम्॥
श्लक्ष्णं खल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्दयेद् दृढम्।
देवब्राह्मणपूजाञ्च कृत्वा धृत्वाऽथ कूपिके॥
खादेद्वल्लद्वयं प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम्।
अष्टादशप्रमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः॥
पुष्टिं तेजो वलं वर्णं शुक्रवृद्धिमनुत्तमाम्।
अग्नेर्बलं वितनुते मेहकुञ्जरकेसरी॥
दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचारणा॥ (रसचन्द्रिका)

प्रथम पारद गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैय्यार कर लें। इस कज्जली में लोह, अभ्रक, नाग, वंग, स्वर्ण, हीरा और मोतीभस्म समानमात्रा में लेकर मिला लें और शतावर के रस की भावना देकर गोला बनालें। इस गोले को ठीक प्रकार से सुखाकर शरावसम्पुट में बन्द कर दें और एक गर्त में रखकर उपलों की आंच दें। गर्त में उपले इतने भरना चाहिये कि जिसकी आंच ४ प्रहर तक बनी रहे। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को ६ रत्ती की मात्रा में शीतल जल के साथ एक मास तक सेवन करने से १८ प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं तथा पुष्टि, तेज, बल, वर्ण, शुक्र और अग्नि की वृद्धि होती है। यह एक दिव्य और उत्तम रसायन है। इस रस का सेवन देव ब्राह्मणों के पूजन के बाद करना चाहिये।

कन्दर्पसुन्दरोरसः

सूतं वज्रमहिमुक्ता तारं हेमसिताभ्रकम्।
रसैः कार्पासकानेतान् मर्दयेदरिमेदजैः॥
प्रवालं चूर्णगन्धस्य द्वि द्विकर्षो विमिश्रयेत्।
प्रवालं चूर्णगन्धस्य विमर्द्य मृगश्रृंगके॥

क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्धातकीरसैः ।
काकोलीमधूकं मांसी बलात्रयविषेंगुदम् ॥
द्राक्षा पिप्पलि वंदाकं वरी पर्णीचतुष्टयम् ।
परूपकं कसेरुश्च मधुकं वानरी तथा ॥
भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा विचूर्णयेत् ।
एलात्वक् पत्रकं मांसी लवंगागरु केशरम् ॥
मुस्तं मृगमदं कृष्णा जलं चन्द्रश्च मिश्रयेत् ।
एतच्चूर्णैः शाणमितैः रसं कन्दर्पसुन्दरम् ॥
खादेच्छाणमितं रात्रौ सिताधात्रीविदारिका ।
एतेषां कर्षचूर्णेन सर्पिष्कर्षेण सम्मितम् ॥
तस्यानु द्विपलं क्षीरं पिबेत्सुखितमानसः ।
रमणीरमयेद्बह्वीर्न हानिं क्वापि गच्छति ॥

(रसराजसुन्दर, रसप्रकाशसुधाकर)

पारद, हीरा, सीसा, मोती, चांदी, स्वर्ण और अभ्रक भस्म १–१ तोला लेकर कपास और खैर के क्वाथ की भावना दें और इसमें प्रवाल भस्म और शुद्ध गंधक २॥—२॥ तोला मिला दें। अच्छी तरह खरल करके हिरन के सींग में भरकर मुख को बन्द कर दें और लघुपुट में पाक करें। (स्वांगशीतल होने पर औषधद्रव्य को निकालकर धाय के फूल, काकोली, महुआ, जटामांसी, बला, अतिबला, महाबला, मीठातेलिया, हिंगोट, दाख, पीपल, बन्दा, शतावर, शालपर्णी, पृष्णिपर्णी मुद्गपर्णी, माषपर्णी, फालसा, कसेरू, मुलेठी और केवांचके बीज का क्वाथ या रस की अलग अलग १–१ भावना दें और अब इसमें इलायची, दालचीनी, तेजपात, जटामांसी, लौंग, अगर, केशर, नागरमोथा, कस्तूरी, पीपल, सुगन्धबाला और कपूर प्रत्येक का चूर्ण ४–४ माशा मिला लें और सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को ४ माशा की मात्रा में, मिश्री, आंवला और विदारीकन्द १। तोला तथा घृत १। तोला के साथ सेवन करने से सम्भोग शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है।

अनुपान—में १० तोला दूध पीना चाहिये। इस रस को खाकर सम्भोग करने से कुछ भी थकावट नहीं प्रतीत होती।

रत्नप्रभा वटिका

स्वर्णं मौक्तिकमभ्रञ्च नागं वङ्गञ्च पित्तलम् ।
माक्षिकं रजतं वज्रं लौहं तालञ्च खर्परम् ॥
कदल्याः काकमाच्याश्च वासकस्योत्पलस्य च ।

स्वरसेन जयन्त्याश्च कर्पूरसलिलेन च ॥
भावयित्वा यथाशास्त्रमहोरात्रगतः परम् ।
सम्मर्द्यातन्द्रितः कुर्याद् भिषग्गुञ्जामिता वटीः ॥
एकैकाञ्च प्रयुञ्जीत प्रातराशं बलाम्बुना ।
उष्णेन पयसा वापि केशराजरसेन वा ॥
इयं रत्नप्रभा नाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा ।
सर्वस्त्रीरोगहन्त्री च बल्या वृष्या रसायनी ॥ (भैषज्यरत्नावली)

स्वर्ण, मोती, अभ्रक, सीसा, वंग, पीतल, स्वर्णमाक्षिक, चांदी, हीरा, लोह, हरताल और स्वर्णभस्म समान मात्रा में लेकर मिला लें और केला, मकोय, अडूसा, नीलकमल और जयन्ती रस की १-१ भावना देकर पश्चात् कर्पूर जल से १ दिन रात खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

सेवन—इस रस को प्रातः काल सेवन करने से समस्त स्त्री रोग नष्ट होते हैं। बलवीर्य की वृद्धि होती है।

अनुपान—में खरैटी क्वाथ या उष्ण दुग्ध अथवा भृंगराज के रस का पान करना चाहिये।

महोदधिरसः

रसं गन्धं तथा हेम वज्रविद्रुममौक्तिकम् ।
गृहीत्वा समभागेन मर्दयेत् त्रिफलाम्बुना ॥
गुञ्जार्द्धप्रमिताः कुर्याद् वटीश्छायप्रशोषिताः ।
एकैकां दापयेदासां यथादोषानुपानतः ।
रुद्धान्त्रस्वमन्त्रवृद्धिं तथान्यानन्त्रजान् गदान् ।
वातपित्तकफोत्थांश्च सर्वान् हन्ति महोदधिः ॥ (भैषज्यरत्नावली)

प्रथम पारद गंधक समानमात्रा में लेकर कज्जली बना लें। इस कज्जली में स्वर्ण, हीरा, प्रवाल और मोतीभस्म समान मात्रा में डालकर त्रिफला क्वाथ की भावना दें और आधी आधी रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क कर लें।

सेवन—इस रस को दोषानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से रुद्धांत्र, आंत्रवृद्धि, वातज, पित्तज तथा कफज अन्यान्य समस्त रोग नष्ट होते हैं।

मृगाङ्करसः (महा)

निरुत्थभस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम् ।
द्विगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुकपुच्छं चतुर्गुणम् ॥
मृततार्प्यं च पञ्चांशं तारभस्म चतुर्गुणम् ।
सप्तभागं प्रवालं च रसतुल्यं च टङ्कणम् ॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य त्रिदिनं लुङ्गवारिणा ।

ततश्च गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ॥
लवणैः पात्रमापूर्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत् ।
तन्मुखं तु मृदा रुध्वा पाचेद्यामचतुष्टयम् ॥
आकृष्य चूर्णयेत् शुद्धं चतुःषष्ठिविभागतः ।
वज्रं वा तदभावे तु वैक्रान्तं षोडशांशिकम् ॥
महामृगाङ्कः खलु एष सिद्धः श्रीनन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम् ।
वल्लास्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः सेव्योऽथवा पिप्पलिकासमेतः ॥
तत्रोपचाराः कर्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः ।
वल्यं वृष्यं च भोक्तव्यं त्यजेत्सूतविरोधि यत् ॥
यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगदं गुल्मं तथा विद्रधिम् ,
मन्दाग्निं स्वरभेदकासमरुचिं वान्तिं च मूर्च्छां भ्रमिम्
अष्टावेव महागदान्ग्रहगदान् पाण्डूवामयं कामलान् ,
पित्तोत्थांश्च समग्रकान् बहुविधानन्यांस्तथा नाशयेत् ॥

(रसराजसुन्दर, रसायनसारसंग्रह, रसचन्द्रिका, भैषज्यरत्नावली)

निरुत्थ स्वर्णभस्म १ भाग, पारदभस्म १ भाग, मुक्ताभस्म ३ भाग, गंधक ४ भाग, स्वर्ण माक्षिक भस्म ५ भाग, चांदी भस्म ४ भाग, प्रवालभस्म ७ भाग, सुहागा भस्म २ भाग—इन सबों को मिलाकर बिजौरे नीबू के रस की तीन दिन तक भावना देकर गोला बना लें। इस गोले को कड़ी धूप में सुखा कर कपड़ा लपेटें और एक अंगुल मोटा मिट्टी का लेप करके सुखा लें तथा नमक से भरी हुई हांडी के मध्य में रखें और हांडी का मुख बन्द करके ४ प्रहर की आँच दें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर ६४ वाँ भाग हीराभस्म—अथवा यदि हीरा भस्म न हो तो १६ वाँ भाग वैक्रान्त भस्म डालकर खरल करें और सुरक्षित रख दें।

त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः

रसं वज्रं हेमतारं ताम्रतीक्ष्णाभ्रकं मृतम् ।
गन्धकं मौक्तिकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला ॥
शोधितञ्च समं सर्वं सप्ताहं भावयेद् दृढम् ।
चित्रमूलकषायेण भानुदुग्धैर्दिनत्रयम् ॥
निर्गुण्डीसुरणद्रावैर्वज्रीदुग्धैर्दिनत्रयम् ।
अनेन पूरयेत्सम्यक् पीतवर्णान् वराटकान् ॥
टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तेषां मुखं लिपेत् ।
रुध्वा भाण्डे पुटेत्पश्चात् स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥
चूर्णतुल्यं मृतं सूतं वैक्रान्तं सूदपादकम् ।

शिग्रुमूलद्रवैः सर्वं सप्तवारं विभावयेत् ॥
चित्रमूलकषायेण भावना चैकविंशतिः ।
आर्द्रकस्य रसेनैव भावना सप्त एव च ॥
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा चूर्णपादांशटङ्कणम् ।
टङ्कणांशं वत्सनाभं तत्समं मरिचं क्षिपेत् ॥
लवङ्गं नागरं पथ्या कणा जातीफलं पृथक् ।
प्रत्येकं वत्सनाभस्य पादांशं चूर्णितं क्षिपेत् ॥
मातुलुङ्ग आर्द्रकस्य रसेन तद्विलोडयेत् ।
चतुर्गुञ्जामितं खादेत् कणाक्षौद्रं लिहेदनु ॥
अनुपानैः समायोज्यं सर्वरोगोपशान्तये ।
वह्निं दीपयते बलं च कुरुते तेजो महद्वर्धते,
वीर्यं वर्द्धयते विषं च हरते दार्ढ्यं च धत्ते तनौ ।
अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं पुष्टिं प्रदत्ते नृणाम्,
कासं तुन्दयते क्षयं क्षपयते श्वासं च निर्णाशयेत् ।
वातं विद्रधिं पाण्डुशूलग्रहणीरक्तातिसारं जये-
न्मेहप्लीहजलोदराश्मरितृषाशोफोहलीमोदरम् ।
भूतोत्थं च भगन्दरं ज्वरगणं चार्शांसि कुष्ठाञ्जयेत्,
साध्यासाध्यरुजां निहन्ति स रसस्त्रैलोक्य-चिन्तामणिः ॥

(रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका, बृहद्योगतरंगिणी, योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली)

पारद गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली तैय्यार कर लें। इस कज्जली में हीरा, चांदी, ताम्र, तीक्ष्ण लौह, अभ्रक, मोती, शंख, प्रवाल, हरताल और मैनसिल भस्म समान मात्रा में चीता की जड़ के क्वाथ की ७ दिन तक भावना देकर मदार दूध, सम्हालु के रस, सूरण रस और सेंहुड़ के दूध की अलग २ तीन तीन दिन तक भावना देकर औषध द्रव्य को पीतवर्ण की कौड़ियों में भर दें और कौड़ियों के मुख को सुहागा (मदार दुग्ध भावित) से बन्द कर दें। अब इन कौड़ियों को शरावसम्पुट में बन्द कर गजपुट की आंच दें। स्वांगशीतल होनेपर औषध द्रव्य निकाल लें और उसे पीसकर इसी पिसे हुए द्रव्य में पारद भस्म (समस्त औषध द्रव्य के) बराबर और वैक्रान्त भस्म (पारदभस्म की अपेक्षा) $\frac{1}{2}$ भाग डालकर सहजना मूल और चीता मूल क्वाथ एवं अद्रक रस की क्रमशः ७, २१ और ७ भावना देकर इसमें सुहागा, मीठा तेलिया, काली मिर्च, लौंग, इलायची, सोंठ, हरीतकी, पीपल और जायफल का चूर्ण प्रत्येक $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{4}$ भाग मिलाकर नीबू और अद्रक के रस में घोट कर ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—इस रस को पीपल चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हुये अग्नि दीपन, बल, तेज और वीर्य्य का वर्धन होता है। विष, कास, क्षय, श्वास, वातप्रधान विद्रधि, पाण्डु, शूल, संग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अश्मरी, तृषा, हलीमक, शोथ, उदररोग, भगन्दर, ज्वर, अर्श और कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं। बहुत दिन तक सेवन करते रहने से पलित और मृत्यु शीघ्र न होकर शरीर बहुत ही दृढ़ और मजबूत हो जाता है।

रत्नगर्भपोटलीरसः

रसं वज्रं हेमतारं नागं लौहञ्च ताम्रकम्।
तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम्॥
शङ्खञ्च तुत्थं तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका॥
टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुखमन्धयेत्।
मृद्भाण्डे तं निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत्॥
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्याः सप्तभावनाः।
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः॥
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुञ्जैकसम्मितम्।
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः॥
योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा।
महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके॥
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहे नियोजयेत्॥

(रसराजसुन्दर, रसकामधेनु, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसरत्नाकर, रसचन्द्रिका, रसेन्द्रसारसंग्रह, योगतरंगिणी, बृहद्योगतरंगिणी, बृहन्निघण्टुरत्नाकर)

पारद, हीरा, स्वर्ण, चांदी, सीसा, लोह, ताम्र, मोती, स्वर्णमाक्षिक, प्रवाल, शंख और तुत्थभस्म समान मात्रा में लेकर चीता क्काथ की सात दिन तक भावना देकर पीतवर्ण की बड़ी-बड़ी कौड़ियों में भरकर (मदार दूध से भावित) सुहागा से मुखबन्द कर दें और शरावसम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर समस्त औषध द्रव्य को निकालकर पीस लें और सम्हालु तथा अद्रक रस की ७–७ भावना देकर चीताक्काथ की २१ भावना दें और सुखाकर सुरक्षित रख दें।

सेवन—१ रत्ती की मात्रा में पीपल, कालीमिरच, मधु और घृत के साथ सेवन करने से साध्य अथवा असाध्य सभी प्रकार का क्षय रोग निश्चय ही नष्ट होता है। ८ प्रकार के महारोग, कासश्वास, ज्वर और अतिसार रोग नष्ट होते

हैं। यह रस योगवाही है अतएव अनुपान भेद से समस्त रोगों में लाभप्रद है।

सुरेन्द्राभ्रवटी

अभ्रं सहस्रशो दग्धं रसं दरदसम्भवम्।
फेटराजाम्भसा शुद्धं गन्धकं हीरकन्तथा॥
विद्रुमं मौक्तिकं हेम रौप्यं माक्षिकमेव च।
कान्तलोहञ्च सम्मर्द्य विधिना वह्निवारिणा॥
वल्लमात्रां वटीं कृत्वा छायायां परिशोषयेत्।
एकैकां योजयेत्प्राज्ञो यथादोषानुपानतः॥
क्लोमरोगविनाशाय वह्नेः सन्धुक्षणाय च।
न सोऽस्ति रोगो लोकेऽस्मिन्यमित्थं न विनाशयेत्॥
यो यः समाश्रयेद्व्याधिः क्लोमितं तमवेक्ष्य च।
क्रियां संसाधयेद्वैद्यो यथादोषं यथाबलम्॥
अनुग्राण्यन्नपानानि क्लोमामयनिपीडितः।
सेवतोग्राणि सर्वाणि यत्नतः परिवर्जयेत्॥ (भैषज्यरत्नावली)

प्रथम पारद गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर लें। इस कज्जली में सहस्रपुटी अभ्रक, हीरा, प्रवाल, मोती, स्वर्ण, चांदी, स्वर्णमाक्षिक और कान्त लोहभस्म समान मात्रा में मिलाकर चीतामूल क्वाथ की भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

सेवन—बल दोषानुसार अनुपान व्यवस्था करके इस रस के सेवन से क्लोमरोग नष्ट होते हैं। क्लोमरोग के रोगी को उग्र आहार-विहार को छोड़ देना चाहिये। संसार में ऐसा कोई रोग नहीं है जिसे यह रस नष्ट न कर सकता हो।

वसन्तकुसुमाकररसः

पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रं त्रयो बङ्गाहिकान्तजम्।
चत्वारः सूतं वज्रञ्च प्रवालं मौक्तिकं तथा॥
भावना गव्यदुग्धेक्षुवासाश्रीह्रिजलैर्निशा।
मोचकन्दरसैः सप्त क्रमाद्भाव्यं पृथक्पृथक्॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमैस्तथा।
पश्चान्मृगमदैर्भाव्यः सुसिद्धो रसराड् भवेत्॥
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः।
वल्लद्वयमितः सेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः॥
वलिपलिहृन्मेध्यः कामदः सुखदः सदा।

मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः परं वृष्यो रसायनम् ॥
आयुर्वृद्धिकरं पुंसां प्रजाजननमुत्तमम् ।
क्षयकासतृषोन्मादश्वासरक्तविषार्तिजित ॥
सिताचन्दनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगजित् ।
शुक्लपाण्ड्वामयाञ्शूलान्मूत्राघाताश्मरीं हरेत् ॥
योगवाहि त्विदं सेव्यं कान्तिश्रीबलवर्धनम् ।
सुसात्म्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमदाशतम् ॥
मदनं मदयेन्मदमुज्ज्वलयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन् ।
सुरतैः सुखदैर्गतिविच्यवनैरतिसारजुषामयमेव सुहृत् ॥
(रसराजसुन्दर, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसरत्नाकर, रसचन्द्रिका, रसरत्नसमुच्चय, योगतरंगिणी, बृहद्‌योगतरंगिणी, योगरत्नाकर, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली, नपुंसकामृत)

स्वर्ण और चांदीभस्म २—२ भाग, वंग, नाग और कान्तलोहभस्म ३—३ भाग, रससिन्दूर, हीरा, प्रवाल और मोतीभस्म ४—४ भाग—इन सबों को मिलाकर गोदुग्ध की भावना दें—इसके अलावा ईख, अडूसा, केले की जड़, कमल और चमेली के फूलों की अलग-अलग सात-सात भावना देकर सफेद चन्दन, सुगन्धवाला, खस और हल्दी के क्वाथ की अलग-अलग सात-सात भावना देकर कस्तूरी जल की भावना देकर ६—६ रत्ती की गोलियां बनाकर सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को मधु, मिश्री और घृत के साथ सेवन करने से बलिपलित, प्रमेह, क्षय, कास, तृषा, उन्माद, श्वास, रक्तदोष, विषविकार रोग नष्ट होते हैं। इसके अलावा श्वेतपाण्डु, मूत्राघात और अश्मरी रोग नष्ट होते हैं।

इस रस को मिश्री और चन्दन के साथ सेवन करने से अम्लपित्तादि रोग नष्ट होते हैं।

यह रस मेधा, बल, वीर्य्य, कामशक्ति, कान्ति और आयु को बढ़ाते हुये पुत्र की प्राप्ति कराता है।

इस रस के सेवन काल में उत्तम सात्विक आहार-विहार का पालन करने से सौ-सौ स्त्रियों के साथ समागम करने की शक्ति आ जाती है। इतनी कामशक्ति बढ़ जाती है कि कितनी ही मदमाती स्त्री हो उसका मदमर्दन करके उसे विह्वल बनाया जा सकता है।

इसके अलावा यह रस एक योगवाही है। रोगानुसार अनुपानादि के साथ देने से समस्त रोगों में लाभप्रद है।

सर्वेश्वरपर्पटीरसः

रसोपरसलोहानि कार्षिकाणि पृथक् पृथक्।
तेषु लोहानि सर्वाणि पाषाणाः कठिनास्तथा॥
घनसत्वं च तत्सर्वं भस्मीकृत्य प्रयोजयेत्।
रत्नानि वल्लतुल्यानि भस्मीकृत्य च सर्वशः॥
एभिश्चतुर्गुणः सूतो गन्धस्तस्माच्चतुर्गुणः।
कृत्वा कज्जलिकां ताभ्यां क्षिपेल्लोहस्य भाजने॥
प्रद्राव्य बदराङ्गारैर्निक्षिपेत्तदनन्तरम्।
रसोपरसलोहानां रत्नानामपि सर्वशः॥
चूर्णं भस्म च निक्षिप्य काष्ठेनाऽऽलोड्य मेलयेत्।
ततश्च षोडशांशेन मिश्रयित्वाऽरुणं विषम्॥
गोमयोपरि निक्षिप्ते निक्षिपेत्कदलीदले।
पत्रेणान्येन रम्भायाः समाच्छाद्य प्रयत्नतः॥
कराभ्यां चिपटीकृत्य क्षिपेदुपरि गोमयम्।
ततः शीतं समाहृत्य चूर्णयित्वा च पर्पटीम्॥
विनिक्षिपेत्करण्डान्तः सम्पूज्य रसभैरवम्।
सर्वेश्वराभिधानेयं पर्पटी परिकीर्तिता॥
सर्वलोकहितार्थाय नन्दिनेयं विनिर्मिता।
रक्तियुक्ता समानेया मरिचार्द्रसमन्विता॥
विद्रधौ षट्प्रकारायां देया वर्ष्मसु सप्तसु।
क्षयरोगेषु सर्वेषु पाण्डुरोगे विशेषतः॥
ग्रहणीरोगभेदेषु गुल्मेष्वष्टविधेषु च।
मूलरोगेष्वशेषेषु प्लीहायां यकृदामये।
प्रमेहे सोमरोगे च प्रदरे जठरार्तिषु।
विशेषेण च मन्दाग्नौ सर्वेष्वावर्तकेषु च॥
अनुक्तेष्वपि रोगेषु तत्तदौचित्ययोगतः।
रसोऽयं खलु दातव्यः शिवतुल्यपराक्रमः॥
यद्यद्द्रव्यमसात्म्यं हि जनानामुपजायते।
तत्सर्वं सात्म्यमायाति रसस्यास्य निषेवणात्॥
दुःसाध्यो विद्रधिर्मासाच्छान्तिमायाति निश्चितम्॥

(रसरत्नसमुच्चय)

स्वर्ण, चांदी, ताम्र, नाग, वंग, लोह, कान्तलोह, मुण्डलोह, अभ्रक, कांस्य, पित्तल, स्वर्णमाक्षिक, रौप्यमाक्षिक, तुत्थ, खर्पर, गन्धक, गेरु, कसीस हर-

ताल, मैनसिल, अंजन और फिटकिरी भस्म, कंकुष्ठ और शिलाजीत १।-१। तोला, वैक्रान्त, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि, महानीलमणि, हीरा, मोती, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, प्रवाल, स्फटिक, वैडूर्य और राजावर्त भस्म ३-३ रत्ती, उपर्युक्त समस्त द्रव्य से ४ गुणा अधिक शुद्ध पारद और पारद से चार गुणा अधिक गंधक लेकर इनकी कज्जली बना लें और इस कज्जली में समस्त औषध द्रव्य मिलाकर खरल करें। एक लोहे के पात्र में रखकर अग्नि पर चढ़ायें और एक काष्ठ दण्ड से औषध को चलाते जायें। जब सब औषध अच्छी तरह से पिघल जाये तब उसमें मीठा तेलिया चूर्ण (समस्त औषध द्रव्य का) $\frac{1}{16}$ भाग मिला लें। अब नीचे गोबर बिछाकर ऊपर केले का पत्ता बिछा दें और समस्त औषध द्रव्य इस केले के पत्ते पर डालकर दूसरे केले के पत्ते से ढक दें और हथेली से दबा दें तथा ऊपर गोबर बिछा दें। १०-१५ मिनट बाद जब कि औषध शीतल हो जाये—निकालकर पीस लें और कारण्ड-पात्र में सुरक्षित रख दें।

सेवन—मरिच और अद्रक के रस के साथ इस रस की १ रत्ती की मात्रा में सेवन करने से ६ प्रकार की विद्रधि, ७ प्रकार के वर्त्मरोग, सब प्रकार के क्षयरोग तथा विशेष कर पाण्डु, संग्रहणी, और ८ प्रकार के गुल्मरोग, यकृत् और प्लीहारोग, जठररोग, प्रमेह, सोमरोग, प्रदर, अग्निमांद्य समस्त उदावर्तरोग नष्ट होते हैं। इसके अलावा और भी रोग अनुपान भेद से सेवन करने से नष्ट होते हैं।

इस रस को सेवन करने के पूर्व भैरवदेव का पूजन अवश्य करें। इस रस को नन्दिन नामक महाशय ने बनाया है।

यह रस दुःसाध्य विद्रधि या कैन्सर को भी निश्चय से नष्ट करना है। इस रस के सेवन करने से असात्म्य पदार्थ भी सात्म्य हो जाते हैं।

रत्नभागोत्तररसः

वज्रं मरकतं पद्मरागं पुष्पं च नीलकम्।
वैडूर्यं चाथ गोमेदं मौक्तिकं विद्रुमं तथा॥
पञ्चगुञ्जामितं सर्वं रत्नं भागोत्तरं परम्।
तत्तन्त्रोक्तविधानेन भस्मीकुर्यात् प्रयत्नतः॥
सर्वस्मादष्टगुणितं भस्म वैक्रान्तसम्भवम्।
तत्तुल्यं ताप्यजं भस्म तद्वद्विमलभस्म च॥
सर्वतस्त्रिगुणां तुल्यां रसगन्धककज्जलीम्।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य छागीदुग्धेन तद्द्वयहम्॥
विधाय पर्पटीं यत्नात्परिचूर्ण्य प्रयत्नतः।

वन्ध्याकर्कोटकीचूर्णक्वाथेन परिमर्दयेत् ॥
काननोत्पलविंशत्या पुटेत्षोडशवारकम् ।
एवं रसो विनिष्पन्नो रत्नभागोत्तराभिधः ॥
महावन्ध्यादिवन्ध्यानां सर्वासां सन्ततिप्रदः ।
देवीशास्त्रे विनिर्दिष्टः पुंसां वन्ध्यत्वरोगनुत् ॥
सोऽयं पाचनदीपनो रुचिकरो वृष्यस्तथा गर्भिणी
सर्वव्याधिविनाशनो रतिकरः पाण्डुप्रचण्डार्तिनुत् ।
धन्यो बुद्धिकरश्च पुत्रजननः सौभाग्यकृद् योषितां
निर्दोषः स्मरमन्दिरामयहरो योगादशेषार्तिनुत् ॥
(रसरत्नसमुच्चय, रसचन्द्रिका)

हीराभस्म ५ रत्ती, पन्नाभस्म ६ रत्ती, माणिक्यभस्म ७ रत्ती, पुखराजभस्म ८ रत्ती, नीलमभस्म ९ रत्ती, वैडूर्यमणिभस्म १० रत्ती, गोमेदभस्म ११ रत्ती, मोतीभस्म १२ रत्ती, प्रवालभस्म १३ रत्ती, वैक्रान्त, स्वर्णमाक्षिक और रौप्यमाक्षिकभस्म ८१-८१ माशा, पारद गन्धक (समान भाग वाली) की कज्जली समस्त द्रव्य से तिगुनी इन सबों को मिलाकर बकरी के दूध की २ दिन तक भावना देकर पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बनायें और बांझ ककोड़े की जड़ के क्वाथ की भावना देकर गोला बनायें। इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके २० उपलों में फूंक दें। इस प्रकार १६ बार बांझ ककोडे की भावना और उपलों की आंच दें।

सेवन—इस रस के सेवन करने से दीपन, पाचन, रुचिवर्धन, वीर्यवर्धन एवं गर्भिणी रोगनाशन होता है, पाण्डु और योनिरोग नष्ट होते हैं। कामशक्ति और बुद्धि बढ़ती है। विशेषकर यह रस वन्ध्यत्व नष्ट करके सन्तति प्रदान करने में तथा सौभाग्य दान में सर्वश्रेष्ठ है।

मणिपर्पटीरसः

वज्रं मरकतं पुष्पमिन्द्रनीलं सुचूर्णितम् ।
रसहिङ्गुलगन्धञ्च कज्जलीं कारयेद्भिषक् ॥
द्रावयेत्तां लोहपात्रे पर्पट्याकारतां नयेत् ।
निर्गुण्डी-तुलसी-शिग्रुधत्तूररविवह्निजैः ॥
रसैर्ज्योपवरारम्भासुरसैरपि भावयेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा परिभावयेत् ॥
एवं सिद्धो रसो नाम्ना विख्याता मणिपर्पटी ॥
सेविता गुञ्जया तुल्या निहन्यान्नासिकागदान् ।
पथ्योपचारादिवशात सर्वव्याधीन् विशेषतः ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

हीरा, पन्ना, पुखराज, नीलम, पारदभस्म, हिंगुल और गंधक समान भाग ले लें। प्रथम पारद गंधक की कज्जुली बना लें। इस कज्जली में उपर्युक्त भस्म मिला लें। इस समस्त द्रव्य को लोहपात्र में रखकर चूल्हे पर गरम करें और पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बना लें। पर्पटी के शीतल हो जाने पर सम्हालु, तुलसी, सहजन, धतूरा, आक, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, केला तथा अद्रक के रस एवं क्वाथ की पृथक्-पृथक् ७-७ भावना दें और सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को १ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करने से अथवा दोषानुसार ठीक-ठीक अनुपान के साथ सेवन करने से समस्त नासारोग नष्ट होते हैं।

अनङ्गनिगडो रसः

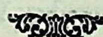
मिहिरकुलिशमुक्तातालवैक्रान्तभास्व-
न्मणिकुजमणिभस्मान्येकभागानि कृत्वा।
कनकरजतताप्यव्योमसत्त्वानि चत्वा-
र्यखिलसमरसेन्द्रं गन्धकं सर्वतुल्यम्॥
मृदुविदलितमेतच्छोणकार्पासपुष्पा-
म्बुभिरमलतरैस्त्रिर्भावयित्वा विशोष्य।
क्रमदहनविपक्वं वालुकाकाचकुम्भे
त्रिदिनमथ कलांशेनाच्छहालाहलेन॥
युतमथ मरिचेन्दुत्वक्पयोजातिकोशा-
मरकुसुमसृगाण्डैर्भावयेज्जायतेऽसौ।
मदननिगडनामा माषमात्रो दिनादौ
निशि च भुजगवल्लीपर्णखण्डेन भुक्तः॥
तदनु सुरभि दुग्धं पेयमल्पं सिताढ्यं
पुनरपि ससिताऽम्लं चारुताम्बूलमध्यात्।
इह समुदितमन्नं पथ्यमाह द्विजन्मा
मुनिरखिलगदानामन्तके ख्यातवीर्यैः॥
ऽनं संसेव्य मर्त्यो रमयति रमणीवृन्दमानन्दतुन्दं
चामन्दं तस्य शुक्रं क्व च न च भवति प्रत्यहं वर्द्धते च।
पण्ढः षाण्ढ्यं जहाति प्रबलतरमपि प्रौढमाप्नोति गाढं
शेफःपातित्ययुक्तं गतनवतिसमस्यापि मर्त्यस्य चारु॥
किं बहुना कथितेन गृहेऽसौ यस्य नरस्य वसत्यसमस्य।
पञ्चशरस्य शरस्य शरव्यं संभवतीह सदा महिलाहृदयस्थः॥

मेहान्विंशतिमेष हन्ति सहसा यक्ष्माणमुग्रं जये-
दानाहग्रहणीग्रहान्स्लपयति प्रौढं विधत्ते बलम् ।
पाण्डुं खण्डयति प्रसह्य रचयत्यर्शोविनाशं भृशं
पित्तास्रं दलयत्यवश्यमुदरव्याधिं विलुम्पत्यपि ॥
ओजःकान्तिबलप्रमोदधिषणादृग्दन्तनासाश्रुति-
प्रौढिं देहदृढत्वमग्निपटुतां पुंसः प्रकुर्यादयम् ।
रोगो नास्ति स यो न शान्तिमुपयात्येतेन भूमीतले
भूमीपव्रजपूजितेन रमणीप्रेमास्पदेनाशितम् ॥

(बृहद्योगतरंगिणी)

पारद ११ भाग, गंधक २२ भाग—इन दोनों की कज्जली बना लें। इस कज्जली में ताम्र, हीरा, मोती, हरताल, वैक्रान्त, सूर्यकान्तमणि, माणिक्य, स्वर्ण, रौप्य, स्वर्णमाक्षिक और अभ्रकभस्म १-१ भाग मिला लें तथा लालकपास के फूलों के रस की तीन भावना देकर सुखा लें और आतशी शीशी में भरकर वालुका यंत्र द्वारा तीन दिन तक पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालें। अब इसमें समस्त औषध द्रव्य का $\frac{१}{१६}$ वां भाग मीठा तेलिया चूर्ण मिलालें तथा कालीमिरच, कपूर, वंशलोचन, जावित्री, लौंग एवं कस्तूरी-चूर्ण मिलाकर खूब घोट डालें और सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को सुबह शाम पान के बीड़े में १ माशा की मात्रा में डालकर सेवन करने से अनेक युवती स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी वीर्य क्षरण नहीं हो पाता। ६० वर्ष की आयु के वृद्ध व्यक्ति के शिश्न में भी दृढ़ता आ जाती है। नपुंसकता का नाश होता है। जो पुरुष इस रस का सेवन करेगा वह सदा युवती स्त्रियों का प्यारा बना रहेगा। २० प्रकार के प्रमेह, राजयक्ष्मा, आनाह, ग्रहणी, ग्रहबाधा, पाण्डु, अर्श, रक्तपित्त और उदररोग निश्चय नष्ट होते हैं। इसके अलावा पांचों ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति बढ़ाते हुये कान्ति, ओज, बल, प्रसन्नता तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है। यह रस समस्त रोगों को नष्ट करता है।



मोती

(Pearl)

मुख्य-मुख्य भाषाओं में नाम

संस्कृत—मुक्ता, मौक्तिक, सौम्या, तारा, तारका, स्वम्भसारः, नीरज, इन्दुरत्न, मुक्ताफल, बिन्दुफल (राजनिघण्टु)। शुक्तिमणि (धन्वन्तरि-निघण्टु)। रसोद्भव (कैयदेव नि०)। सिन्धुजातम् (द्रव्यरत्नाकर)। शौक्तिक, सौक्तिक (मदनपाल नि०)। शुक्तिज, शौक्तिकेय, शशिरत्न, शशिप्रिय (रसतरंगिणी), भौतिक, जीवरत्न, अन्तःसार, (रसजल-निधि)। हिन्दी, म० गु०—मोती। अरबी, फारसी–लुलु, लोलो, मरवारीद, मूर्वारीद, दुर। अंग्रेजी—पर्ल (Pearl)। लेटिन—मार्गारिटा (Margarita), पिनिक्टेडा मार्गारिटिफेरा (Pinctada morgaritifera)।

आधुनिक प्राणिशास्त्रज्ञों ने मोती और मोती की माता शुक्ति का समावेश 'शुक्त्यादि वर्ग' (N. O. Class—Mallusca) में किया है।

उद्भवस्थान

भारतीय क्षेत्र—प्राचीन समय में मुख्यतः भारतीय समुद्र के किनारे मन्नार की खाड़ी (Gulf of Mannar) जो कि मन्नारद्वीप के कुछ दूर दक्षिण की ओर तथा लंकाद्वीप के पश्चिमी किनारे से ८-१० मील की दूरी पर समुद्रगर्भ से मोती निकालने का बहुत बड़ा रोजगार होता था। सौराष्ट्र प्रान्त के द्वारका नगरी के समीप ओखामण्डल एवं कच्छ की खाड़ी में एक विशिष्ट प्रकार की मुक्ताशुक्ति पाई जाती है। इन मुक्ताशुक्तियों में राई व राजगिरा के दानों के बराबर छोटे औषधोपयोगी मोती उत्पन्न होते हैं। शुक्तियों का उपयोग चिकित्सा में तथा सबसे अधिक कमीज व कोट के बटन एवं मन्दिरों की दीवालों व फर्श पर उनकी चमक या सुन्दरता के लिये होता है। जाम-नगर मण्डलान्तर्गत नवानगर के पार्श्ववर्ती समुद्रीयतटों में भी मार्गेरिटिफेरा वल्गेरिस (Margeritifera vulgaris) नामक मुक्ताशुक्ति पायी जाती हैं। इन शुक्तियों से भी कभी-कभी बहुमूल्य मोती प्राप्त हो जाया करते हैं। औषधोपयोगी छोटे मोती तो पर्याप्त उपलब्ध होते रहते हैं। यहाँ के मोतियों को साधारण बाजारू भाषा में 'गामशाही' मोती कहा जाता है।

लंका और मद्रास के समुद्रीयतटों में भी मुक्ताशुक्ति पायी जाती हैं। तूती-कोरन के पार्श्ववर्ती समुद्रों से प्राचीन समय में बहुत मोती निकाले जाते थे।

तूतीकोरन के समीप टिन्नीवेल्ली (Tinee velly) नामक स्थान में अभी भी मोती निकाले जाते हैं।

बंगाल के चूनाखाड़ी नामक समुद्रीय स्थान में से भी प्राचीन समय से छोटे मोती एवं कभी-कभी बड़े आभूषणोपयोगी मोती प्राप्त हो जाया करते हैं।

विदेशीय क्षेत्र

फारस में यूनानियों के आधिपत्य काल से ही फारस की खाड़ी में मोती प्राप्त करने का व्यवसाय चला आ रहा है। सर्वसाधारणतः यह कहा जाता है कि फारस की खाड़ी के समस्त अरब के किनारे मुक्ताशुक्ति एवं उसमें मुक्ताकीट प्रायः पाये जाते हैं परन्तु यह धारणा पर्याप्त अतिरञ्जनात्मक है। हाँ यह बात अवश्य प्रामाणिक है कि बेहरीन द्वीप के पार्श्ववर्ती स्थानों में अवश्य ही मुक्ताशुक्ति एवं उसमें सबल मुक्ताकीट पाये जाते हैं। विद्वान कार्नेल के कथनानुसार सन् १८६३ में एकमात्र बेहरीन की ही मुक्ताशुक्ति सञ्चयार्थ १५०० नावें थीं। बेहरीन राज्य को इस व्यवसाय से ४० लाख रूपयों की वार्षिक बचत थी। बेहरीन का यह व्यवसाय लगभग २०० वर्षों से सुचारु रूप से चला आ रहा है। बेहरीन के समीपवर्ती सुप्रसिद्ध लिंगाह (Lingah) नामक बन्दरगाह इस व्यवसाय का मुख्य केन्द्र था। भारत में यहाँ के मोती को बाजारू भाषा में प्रायः 'बम्बइया' या 'सूरती' मोती कहा जाता है क्योंकि यहाँ के अधिकांश मोती बम्बई एवं सूरत के बाजार में ही विक्रय होते हैं। बेहरीन द्वीप से उपलब्ध मोती किञ्चित् पीताभायुक्त एवं श्वेतरंग के भी होते हैं। यहाँ की मुक्ताशुक्ति के किनारों का रंग कालापन लिये हुए एवं ऊपर का उन्नत भाग कत्थई रंग का होता है। किञ्चित् पीताभायुक्त मोती बम्बई के बाजार में आते हैं और श्वेतरंग के प्रायः बगदाद के बाजार में विशेष पसन्द किये जाते हैं। बहुत छोटे-छोटे मोती जो कि बाजरे के दानों से भी छोटे होते हैं। "बीज मोती" (Seed pearls) कहलाते हैं।

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति टोलोमी के समय से ही 'लाल समुद्र' के किनारे तथा जिद्दाह और कोसिर के किनारे के मोती प्राप्त करने की सख्त मनाही कर दी गई थी फिर भी अरबियन मल्लाह चोरी छिपे मोती प्राप्त करते ही रहे हैं। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अलेक्जेन्ड्रिया के बाजार में यहीं के मोती बिका करते थे। उस जमाने में यहाँ से उपलब्ध मोतियों को मिसरी (मिश्रदेशीय) मोती कहा जाता था। आजकल जिद्दाह और कोसिर के किनारे मुक्ताशुक्ति बहुत ही कम पायी जाती हैं।

बोर्नियो के पूर्वोत्तर 'सुलुद्वीप' पुंज में उत्तम श्रेणी के मोती पाये जाते हैं। सुलुद्वीपीय मुक्ताशुक्ति के किनारे पीतवर्ण एवं काली रेखायुक्त होते हैं।

न्यूगनी के पश्चिम-दक्षिण में अरु के द्वीपों में मोती बहुतायत से पाये जाते हैं। लेबुयान से बहुत बड़ी संख्या में मुक्ताशुक्ति सिंगापुर भेजी जाती है। मुक्ताशुक्ति टिमोर और न्यूकालिडोनिया (U. S. A.) के समीप भी प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि मुक्ताशुक्ति समस्त प्रशान्त महासागर में पाये जाते हैं। पोलिनोशियम लोग डूबते समय कमर में पत्थर नहीं बाँधते और यह भी कहा जाता है कि यहाँ के मर्दों की अपेक्षा इस कार्य में स्त्रियाँ अधिक दक्ष होती हैं।

अतीव सुन्दर मुक्ताशुक्तियाँ नेविगेटर, सोसाइटी, पावमोटा एवं गैम्बियर आदि द्वीपों में भी पायी जाती हैं। गैम्बियर के मोती किञ्चित् ताम्रवर्ण के होते हैं।

मध्य अमेरिका के पश्चिमीय तटों पर विशेषतः कैलिफोर्निया की खाड़ी में और पनामा की खाड़ियों में मुक्ताशुक्ति पकड़ने के लिये लोगों को राज्य की तरफ से बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया जाता है। यहाँ के समुद्र में मुक्ता-शुक्तियाँ ६० से ८० फीट गहराई में प्राप्त होती हैं। मुक्ताशुक्ति संचय का व्यवसाय लगभग ४ मास ही रहता है। प्रत्येक गिरोह प्रतिदिन लगभग ३ टन से अधिक मुक्ताशुक्ति संचय नहीं कर पाता। प्रति एक हजार मुक्ताशुक्तियों में से एक उत्तम श्रेणी का मोती तो अवश्य ही उपलब्ध हो जाया करता है। कैलिफोर्निया की मुलेजी खाड़ी में अति उत्तम श्रेणी के मोती उपलब्ध हुये हैं। सन् १८८२ ई० में ७५ कैरेट तौल का एक उत्कृष्ट मोती इसी खाड़ी से प्राप्त किया गया था। कहा यह जाता है कि अभी तक प्राप्त रिकार्ड में यहाँ का यह मोती सबसे बड़ा है। गुआकिल (Guayakil) के किनारे भी मोती प्राप्त होते हैं। कोलम्बस (सन् १४९२ ई०) ने यह देखा था कि मैक्सिको की खाड़ी (Gulf of mexico) में भी मुक्ताशुक्ति संचय का व्यवसाय होता है। अभी भी केरेबियन समुद्र (Caribban sea) से मोती प्राप्त किये जाते हैं। वेस्ट इन्डीज (West Indies) में उत्तम श्रेणी के मोती सेन्ट थामस (St Thamas) और वेनेंज़ुएला (Venezuela) के किनारे मार्गेरिटा द्वीपों (Island of Margerita) में प्राप्त होते हैं। यह कहा जाता है कि सन् १५७९ ई० में स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय (Phillip II) ने मार्गें-रिटा द्वीप से एक प्रसिद्ध २५० कैरेट का मोती प्राप्त किया था।

हाल में आस्ट्रेलिया के किनारे मुक्ताशुक्ति संचय का एक बहुत बड़ा

व्यवसाय प्रारम्भ किया गया है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया के किनारे शार्क की खाड़ी (Gulf of shark) में अच्छे मोती प्राप्त किये जाते हैं।

क्वीन्सलेण्ड के किनारे भी मोती प्राप्त करने का व्यवसाय प्रारम्भ किया गया है। न्यूजीलेन्ड के क्वीक नामक स्थान में भी मोती प्राप्त होते हैं।

मोती के कुछ प्राचीन उत्पत्ति स्थान

मोती के उद्भव स्थानों का जिक्र गरुडपुराण, अग्निपुराण आदि पुराणों में तथा वराहमिहरकृत् 'वृहत्संहिता' एवं राजा भोजकृत् 'युक्तिकल्पतरु' नामक ग्रन्थों में पाया जाता है। उपर्युक्त ग्रन्थों में प्रायः समान अर्थ का बोध कराने वाले श्लोक पाये जाते हैं। गरुडपुराण एवं युक्तिकल्पतरु में अधोलिखित श्लोक पाये जाते हैं—

सैंहलिक-पारलौकिक-सौराष्ट्रिक ताम्रपर्णी-पारसवाः।
कौवेर-पाण्ड्य-वाटक-हैमा इत्याकरा ह्यष्टौ ॥
सुस्निग्धं मधुरच्छायं मौक्तिकं सिंहलोद्भवम्।
पारलौकिक-सम्भूतं मौक्तिकं निविडं गुरु ॥
प्रायः सशर्करं ज्ञेयं विषमं सार्ववर्णिकम्।
सौराष्ट्रिकभवं स्थूलं वृत्तं स्वच्छं सितं घनम् ॥
ताम्रपर्णभवं ताम्रं पीतं पारसवोद्भवम्।
ईषच्छ्यामच्च रुद्रच्च कौवेरोद्भवमौक्तिकम् ॥
पाण्ड्यदेशोद्भवं पाण्डु सितं रूक्षं विराटजम्।

सर्वस्य तस्याकरजा विशेषाद्, रूपप्रमाणे च यथैव विद्वान्।
नहि व्यवस्थास्ति गुणागुणेषु, सर्वत्र सर्वाकृतयो भवन्ति ॥

अर्थात्—मोती के प्रमुख उद्भव स्थान आठ हैं। सिंहल (लंका) पारलौकिक*, सुराष्ट्र (काठियावाड़), ताम्रपर्णी (दक्षिण भारत की एक नदी जो कि 'तामलुक' नामक ग्राम से निकली है।)

पारसीक (ईरान देश), कावेरी नदी (मैसूर राज्य में बहनेवाली एक प्रसिद्ध नदी), पाण्ड्य (दक्षिण भारत के तिनिवल्ली, मदुरा आदि स्थान) वाटक हैम (हेमकूट पर्वत जहाँ से सरस्वती नदी निकली है)

लंका से प्राप्त मोती अतीव सुचिक्कण एवं किंचित् श्वेतारुण आभायुक्त होते हैं। पारलौकिक से जायमान मोती भारी और निविड़ होते हैं तथा प्रायः खुर-

---

* पारलौकिक शब्द से किस स्थान का ग्रहण किया जाना चाहिये, इस पर विद्वानों को विचार करना चाहिये। 'वाटक हैम' शब्द अशुद्ध पाठ प्रतीत होता है। क्योंकि नीचे वाले श्लोक में मोती की रूपाकृति का वर्णन करते समय विराट शब्द आया है।

दरे, विषम आकृति वाले एवं अनेकों वर्ण के होते हैं। काठियावाड़ के मोती बड़े, गोल, स्वच्छ सफेद रंग के एवं भारी होते हैं। तामलूक ग्रामोद्भव मोती ताम्रवर्ण और ईरान देश के मोती पीताभा युक्त होते हैं। कावेरी नदी से प्राप्त मोती किंचित् कृष्णाभा लिये हुये एवं रूखे होते हैं। पाण्ड्य देशोद्भव मोती पाण्डुवर्ण के एवं विराट देश से प्राप्त मोती सफेद रंग के और रुच होते हैं। विद्वज्जनों ने मोती की रूपाकृति एवं प्रमाणादिक का उनके उद्भवस्थानों का विशेषरूप से निर्देश किया है परन्तु कभी-कभी प्रायः सभी स्थानों में अच्छे और बुरे बेडौल मोती प्राप्त हो सकते हैं।

बादशाह जहाँगीर के समय का एक फारसी में लिखा हुआ हस्तलिखित 'जवाहरनामा' नामक ग्रन्थ महाराज जयपुर के 'पोथीखाने' में आज भी सुरक्षित है। इस समय यह पोथीखाना महाराज जयपुर की निजी सम्पत्ति है। सन् १९५० में श्रीमान् पं० हीरालालजी शास्त्री की सिफारशी चिट्ठी के आधार पर महाराज ने मुझे वह ग्रन्थ देखने का अवसर प्रदान किया था। यह ग्रन्थ ८२ पृष्ठों में खुले पत्रों में है। अरबी-फारसी के अच्छे जानकार, वयोवृद्ध मौलवी इब्राहिम बबसजी जयपुर निवासी मुझे पढ़कर सुनाते जाते और हिन्दी में अनुवाद करके समझाते जाते थे और मैं हिन्दी में नोट करता जाता था। मोती एवं अन्य रत्नों के विषय में आवश्यकीय नोट मैंने लिख लिया है। इसी प्रकार का एक ग्रन्थ खुदाबक्स लायब्रेरी पटना में भी है। यह भी जहाँगीर के समय का है। परन्तु इसमें मोती के उत्पत्ति स्थानों का निर्देश नहीं है। जयपुर वाली पोथी में जिन स्थानों का जिक्र आया है—प्रायः उसी का अनुवाद सेठ अभयचन्दजी जौहरी बनारस वाले (मूल अधिवासी जयपुर) ने अपनी पुस्तक 'रत्नपरीक्षा' में हिन्दी पद्य में दिया है। वह पद्य अधोलिखित है।

पारस अरबट सिंघल खान, बरबरु अरु दरभंग सैलान॥
पारसि विमल स्वेत अति होई, रंग पीत कछु अरबट सोई॥
स्यानी बसरा सिंघल दीप, रूखा उज्जल बरबरु सीप॥
काहिल स्वेत कान्ति सैलान, दरभंग माहिल सुरखी जान॥
कचिया बूक सटलिया हाड़ी, चावलि बादामी चुनखाड़ी॥

उपर्युक्त पद्य से एवं जयपुर वाली पोथी के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जहाँगीर के समय में फारस, अरब, सीलोन, बेहरीन द्वीप एवं सुलुद्वीप पुञ्ज, दरभंगा और चूनाखाड़ी आदि स्थान मुक्ता उपलब्धि के लिये प्रसिद्ध केन्द्र स्थान थे। आजकल भी कुछ स्थानों को स्थानो को छोड़कर प्रायः वे सभी स्थान प्रसिद्ध हैं।

मोती के विषय में ऐतिहासिक दृष्टि

अथर्ववेद में मणि माणिक्य मुक्तादि रत्नों का धारण के लिये उल्लेख पाया जाता है। प्राचीनतम समय से ही मोती की गणना बहुमूल्य वस्तुओं में समझी जाती रही है। प्राचीन हिन्दू चीनी आदि प्रसिद्ध जातियाँ अपने मन्दिरों, चैत्यालयों और मसजिदों में देवी-देवताओं का श्रृङ्गार करके उनकी शोभा बढ़ाने के निमित्त मुक्ताहारों का उपयोग करने का अनेकों स्थलों पर वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण, पुराणों एवं महाभारत के अनेकों स्थलों पर मोती का जिक्र आया है। समस्त रत्नों में सम्भवतः मोती ही अन्य रत्नों की अपेक्षा सर्वप्रथम और सरलतापूर्वक मनुष्य की निगाह में आया होगा। प्राचीनतम समय के अधिकांश लोग प्रायः नदियों एवं समुद्र के किनारे ही बस कर सामुद्रिक जीव घोंघा, शंख, शुक्ति द्वारा अपना सर्वतः योगक्षेम चलाया करते थे। स्टीवेन्सन नामक विद्वान् ने लिखा है कि ईसा के २३०० वर्ष पूर्व चीन का यू नामक बादशाह अनेकों राजाओं से कर रूप में मोती वसूल किया करता था। पुरानी पुस्तक इंजील में भी मोती का उल्लेख है। चरक सुश्रुत नामक संहिताओं में रोग शमनार्थं मोती धारण करने का जिक्र है। लंका एवं परशियन गल्फ में सर्वप्रथम किस व्यक्ति ने मोती का पता लगाया—इस बात का उत्तर देने में इतिहास मौन है। सिंहल के राजा विजय (ईसा पूर्व ५५० वर्ष) ने भारतवर्ष में आकर हिन्दू कन्या से विवाह किया था। उसने अपने श्वसुर को आठ प्रकार के मोतियों की भेंट की थी जिसका उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम हिन्दू ज्योतिषियों ने ही मोती की मैत्री चन्द्रमा से है और मोती धारण करने से चन्द्रमा अनुकूल होकर इष्टसिद्धि प्रदान करता है इस बात का पता लगाया। प्लीनी नामक विद्वान् के कथनानुसार सिद्ध होता है कि रूमियों में मुक्तादि रत्नों का परिज्ञान अलेक्जेन्ड्रिया की विजय के पश्चात् हुआ। १२वीं शताब्दी तक यूरोप वाले मोती के विषय में प्रायः कुछ भी नहीं जानते थे। १५ वीं-१६ वीं शताब्दी में यूरोपियन महिलाओं के आभूषणों में मोती के जड़ाव का उल्लेख मिलता है। १७ वीं एवं १८ वीं शताब्दी में मोती का महत्त्व प्रायः समस्त संसार में छा गया। परिणामस्वरूप समुद्रों में १८ वीं शताब्दी के मध्य में मुक्ता शुक्तियों का मिलना बहुत ही कम हो गया। इसी बीच आस्ट्रेलिया वालों ने अपने सामुद्रिक किनारों की खोज-बीन की और उन्हें आशातीत सफलता मिली। मोती का बहुल प्रयोग ही नकली मोतियों के निर्माण की बात सर्वप्रथम अमेरिका और उसके बाद जापान के कुछ वैज्ञानिकों के दिमाग में आयी। जापान बहुत अधिक सफल हुआ। आज २० वीं शताब्दी में तो प्राकृतिक मोती का मिलना

उसी प्रकार दुर्लभ है जिस प्रकार डालडा के सामने असली घी।

कुछ प्रसिद्ध बहुमूल्य मोती

प्राकृतिक मोती की कीमत उसकी बड़ाई, आभा और एतज्जन्य आकर्षण पर निर्भर होती है। बादशाह जूलियस सीज़र ने मार्क्स ब्रूटस की माता सरचीलिया को लगभग ७० लाख रूपयों की कीमत का एक मोती भेंट किया था। मिस्र की साम्राज्ञी क्लियोपेट्रा के पास लगभग १२ लाख रूपयों का केवल एक ही मोती था। कहा जाता है कि इस मोती को किसी प्रकार ट्रेवरनियर नामक प्रसिद्ध रत्न पारखी ने प्राप्त किया और उसने फारस के बादशाह को २५ लाख रूपयों में बेंचा। सन् १५७४ ई० में स्पेन के बादशाह फिलिप द्वितीय के पास एक अतीव सुन्दर आभामय कपोताण्डवत् मोती था जिसकी कि कीमत २० लाख रूपया कूती गई थी। उत्कृष्ट श्रेणी के मोतियों का संग्रह यदि विश्व में किसी के पास है तो वह महाराजा गायकवाड़ के पास है। महाराज अपने राजकीय उत्सवों पर एक सातलड़ियों की मुक्तामाल पहनते हैं (इसमें २८० मोती हैं) इसकी कीमत के विषय में संसार के प्रसिद्ध जौहरियों का कथन है कि यह कम से कम १ करोड़ रूपयों की होनी चाहिये। महाराज के पास एक और मोती है जो कि तौल में सवा तीन माशे है। इसका नाम 'पैरागन' है। इसकी कीमत कम से कम १॥ लाख कूती जाती है। दिल्ली में एक व्यक्ति के पास संसार का सबसे बड़ा मोती है। इसका तौल ७। तोला है। इस मोती के विषय में कहा जाता है कि यह फ्रांस की रानी के पास था—इसके बाद यह घूमता-फिरता मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर हेनरी फिलिप होप के पास आया और इसके बाद यही मोती दिल्ली के एक हिन्दू परिवार में है। हेनरी होप के पास से यह मोती किस प्रकार दिल्ली पहुँचा इस विषय का लेखा जोखा ये महाशय बताने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं और न अपने को ही सर्वसाधारण के सामने प्रकाश रूप में लाना चाहते।

मोती की उत्पत्ति—कुछ प्राचीन विचार

मोती की उत्पत्ति समुद्र में शुक्ति के अन्दर चन्द्रमा की किरणावलियों का प्रवेश होकर किस प्रकार हुई। इसका वर्णन गरुड पुराण में अधोलिखित श्लोकों में है।

> नक्षत्रमालेव दिवो विशीर्णा, दन्तावली तस्य महासुरस्य।
> विचित्ररूपेषु विचित्रवर्णा, पयसुः पत्युः पयसां पपात॥
> सम्पूर्णचन्द्रांशुकलापकान्ते-र्मणिप्रवेकस्य महागुणस्य।
> तच्छुक्तिमत्सु स्थितिमाप बीज-मासन् पुराण्यन्यभवानि यानि।
> यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात, सुचारुमुक्तामणिरत्नबीजम्।

तस्मिन् पयस्तोयधरावकीर्णं, शुक्तौ स्थितं मौक्तिकतामवाप ॥
स्वात्यां स्थिते रवौ मेघैर्ये मुक्ता जलविन्दवः।
शीर्णाः शुक्तिषु जायन्ते तैर्मुक्ता निर्मलत्विषः ॥
स्थूला मध्यास्तथा सूक्ष्मा विन्दुमानानुसारतः। (ग० पुराण)

मोती की उत्पत्ति—आधुनिक विचार

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसन्धान से यह वात सिद्ध हो चुकी है कि समुद्र में शुक्ति-कीट कई प्रकार के होते हैं। इनमें मुख्य मुक्ताकीट (Cesloid-worms) होते हैं। मुक्ताकीट ही शुक्ति के अन्दर मोती का निर्माण करता है। मुक्ताकीट की प्रमुखतः तीन जातियाँ हैं। मुक्ता के विभिन्न रूप-रंग इन्हीं विभिन्न तीन जातियों के ही कारण होते हैं।

शुक्ति के भीतर मुक्ताकीट उत्पन्न होते हैं। ये कीट स्वभावतः शुक्ति सम्पुट से निकलना चाहते हैं। जब अनेकों मुक्ताकीटों के समुदाय में से एक दो या कुछ अधिक कीट निकलने का प्रयत्न करते हैं तब उसे रोके रखने के लिये स्वभावतः शुक्ति अपने आभ्यन्तरीय स्तरों द्वारा मुक्ताकीट पर आवरण चढ़ाना प्रारम्भ कर देती है। इन आवरणों का चढ़ाना ही मोती का बन जाना है। शुक्ति-सम्पुट-तत्त्व और मुक्तातत्त्व में कोई भी वैज्ञानिक प्रभेद नहीं होता। शुक्ति के अन्दर मुक्ताकीट जितना अधिक प्रवल एवं अधिक समय तक संजीवित रहेगा उतना ही उत्तम श्रेणी का मोती निर्मित होगा। मोती पर जो आभा या आव होती है वह शुक्ति और मुक्ता के परस्पर संघर्ष के परिणाम-स्वरूप होती है।

शुक्ति के अन्दर जब मोती बनता रहता है तब यह कोई आवश्यक नहीं है कि वह नितान्त गोल ही बने। उसकी आकृति टेढ़ी-मेढ़ी अथवा किसी भी प्रकार की हो सकती है। गोल मोती का बनना दैवात् ही हो जाता है। गोल और टेढ़े-मेढ़े मोती में तात्त्विक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता। चिकित्साशास्त्र में टेढ़े-मेढ़े या बेडौल मोती को निकृष्ट मोती माना जाता है परन्तु जब कि वैज्ञानिक रीत्या यह सिद्ध हो चुका है कि इनमें तात्त्विक दृष्टया कोई अन्तर नहीं है। हमारे विचार से बेडौल मोती भी चिकित्सा कार्य में व्यवहार्य हैं। आभूषणों में गोल मोती का महत्व अधिक है।

मोती निकालने में सरकारी नियन्त्रण

वे स्थान जहाँ पर कि मोती निकालने का रोजगार होता है वे समस्त स्थान सरकारी देखभाल में होते हैं। जब सरकार यह देख लेती है कि इस समय सामुद्रिक किनारा उत्तम है तभी वह मोती निकालने की आज्ञा प्रदान करती है। प्रायः इस काम के लिये मार्च और अप्रैल मास उत्तम समझा जाता

है। जिस मील दो मील स्थान से मोती निकाल लिये जाते हैं पुनः उस स्थान की पारी चार वर्ष बाद आती है। यदि इस अवधि के पूर्व ही उस स्थान से मोती निकाले जाते हैं तो वे उपलब्ध मोती उत्तम श्रेणी के नहीं हो पाते। मोती प्राप्त करनेवाले व्यक्ति साहसी नाविक और गोतेखोर होते हैं। ये लोग अपनी जान को हथेली पर रखकर काम करते हैं। ये लोग अपने बाल-बच्चों का माया-मोह छोड़कर प्रतिदिन आधी रात को ही घर से रवाना हो जाते हैं। ताकि ठीक प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में समुद्र के किनारे पहुँच जाँय। प्रत्येक बार में ५० से १०० नावों का झुण्ड रवाना होता है। प्रत्येक नाव में ५ से १० नाविक होते हैं। कार्यारम्भ करने के पूर्व समुदाय का मुखिया बन्दूक की आवाज छोड़ता है ताकि समस्त सामुद्रिक जानवर इधर-उधर भाग जाँय। प्रत्येक गोताखोर एक खास प्रकार का कवच पहनता है और साथ में ग्रेनाइट नामक पत्थर जोकि कम से कम आधा मन से एक मन वजन का होता है—अपनी कमर में बाँध लेता है। इस पत्थर का सम्बन्ध एक मजबूत रस्सी द्वारा अन्य साथी नाविकों की कमर से होता है। एक साथ दो गोताखोर समुद्र की तली में पहुँचते हैं। यहाँ पहुँचकर ये लोग अपने बड़े-बड़े जेबों में आयस्टर शुक्तियों को बीन-बीन कर भरना शुरू करते हैं। यह बीनने की क्रिया इतनी द्रुतगति से होती है कि एक मिनट में तीन-चार सेर शुक्तियाँ सञ्चय कर ली जाती हैं। जो गोताखोर जितनी अधिक शुक्ति सञ्चय कम समय में कर पाता है वह उतना ही अधिक कार्यदक्ष समझा जाता है और तदनुसार ही उसके वेतन में अभिवृद्धि होती रहती है। कार्यदक्ष गोताखोर अधिक से अधिक ४० सेकण्ड से ६० सेकण्ड तक ही समुद्रतली में कार्य कर सकता है। तत्पश्चात् उसका नाविक साथी रस्सी खींचता है और गोताखोर ऊपर नाव में आकर विश्राम करता है। फिर दो गोताखोर कूद पड़ते हैं। इस प्रकार सरकारी विधान के अनुसार प्रत्येक गोताखोर से एक घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जाता। परन्तु ठीकेदार इस नियम का पालन बहुत ही कम कर पाते हैं। इन गोताखोरों को कभी-कभी तो ८—१० घण्टे भी काम करना पड़ता है। इसी कारण से ये अल्पायु होकर तरह-तरह के रोगों से ग्रसित होकर कार्य अक्षम हो जाते हैं। बहुत से गोताखोर लोभ के वशीभूत होकर १०-१० मिनट तक समुद्रतली में रहने का अभ्यास कर लेते हैं परन्तु ऐसे व्यक्ति ५—७ साल बाद बेकार हो जाते हैं। कार्य बन्द करने की सूचना बन्दूक की आवाज करके दी जाती है। समस्त नावें समुद्र के किनारे पर आ लगती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी शुक्ति-सञ्चय एक गोडाउन में सुरक्षित पृथक्-पृथक् रख देता है। दो घण्टे बाद प्रत्येक व्यक्ति को उसका नाम पुकार

कर बुलाया जाता है और उसके संग्रहीत शुक्तियों में चौथाई भाग उसे दे दिया जाता है। बाकी तीन भाग गोडाउन के भीतर रख लिये जाते हैं। सीजन समाप्त होने पर ठेकेदार यह सब माल बड़े-बड़े व्यापारियों के हाथ नीलाम कर देते हैं। अथवा स्वयं शुक्तियों से मोती निकालने के लिये मजदूर रखते हैं। शुक्तियों से मोती जब निकाले जाते हैं तब शुक्तियों पर तथा मोतियों पर काई इत्यादि का वेष्टन एवं अन्य सामुद्रिक अपद्रव्य लगा रहता है। पर जब वे कई प्रकार की चलनियों से साफ कर लिये जाते हैं तब इनके रूप रंग आकृति एवं वजन के अनुसार पृथक् पृथक् श्रेणियों में विभक्त करके व्यापार केन्द्रों में भेज दिये जाते हैं। मोती का भारत में मुख्य व्यापार केन्द्र बम्बई है।

व्यावसायिक महत्त्व

मोती अन्य रत्नों की अपेक्षा अपनी एक निराली ही शान रखता है। इसकी सुन्दरता, शोभा दिल और दिमाग को एकदम प्रसन्न कर देती है। मोती के उद्‌भव स्थानों में सीजन टाइम में हजारों व्यापारी पहुँच जाते हैं। लाखों नाविक मजदूर समुद्र से सीपों को निकालने का काम करते हैं। इन सीपों से मोतियों को निकालकर उनका ठीक-ठीक परिसंस्कार और सुन्दर आबदार बनाकर बाजार में भेजे जाते हैं। मोती की कीमत उसकी अधिक तहों गुलाबी मिश्रित सफेदी युक्त छाँई, बृहत्तता और गोलाई पर निर्भर होती है। मोती में छेद की छोटाई-बड़ाई पर भी कीमत का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। जिस मोती में जितना छोटा बारीक छेद होगा उस मोती की उतनी ही अधिक कीमत होती है। आजकल बाजार में ऐसे-ऐसे होशियार कारीगर काम करने लग गये हैं जो कि कैसे भी टेढ़े-मेढ़े एवं आबरहित मोतियों को एसिड से सम्पर्कित कर तथा अन्यान्य कृत्रिम साधनों से उसे आबदार और सुन्दर बना लेते हैं। छेदों को छोटा बनाने के लिये तरह-तरह के मसाले उसके अन्दर भर दिये जाते हैं। मामूली और अनुभव रहित ग्राहकों को तो इन बातों का पता ही नहीं लग पाता। कभी-कभी तो अच्छे-अच्छे जौहरी इस काम में धोखा खा जाते हैं। कृत्रिम मोतियों की उत्पत्ति एवं निर्माण में मुख्यतः जापान ने संसार को चकाचौंध में डाल दिया है। जापान के कृत्रिम मोतियों के सामने असली मोती भी फीके दिखाई देते हैं। जापानी कारीगर सीपों को पालने का रोज़गार करते हैं। सीपें जब अपनी पूर्ण-वृद्धि में आती हैं तब उनके खुले हुये मुखों में कृत्रिम और विशेष प्रकार की जल की बूँदें डाली जाती हैं। यही बूँदें मोती का रूप धारण कर लेती हैं। हिन्दुस्तान में मोती प्रायः बेहरीन टापू और मिस्कट से आते हैं। कृत्रिम मोती जापान से आते हैं। सन् २९-३० में कृत्रिम मोती

५० लाख का आया। इस प्रकार एक साधारण मजदूर से लेकर बड़े-बड़े व्यापारियों एवं उनके नौकर चाकरों की रोजी मोती के व्यवसाय पर निर्भर है। मोती का व्यवसाय बहुत श्रेष्ठ और भद्र व्यक्तियों के हाथों में होता है। जिस देश में इस प्रकार के व्यवसाय संचालित होते हैं वे देश वैभवशाली एवं विकसित समझे जाते हैं।

मोती का मूल्यात्मक विनिमय

भारत में मोती का व्यवसाय अतीव प्राचीन समय से चला आ रहा है। पुराणों में मोती के मूल्य के विषय में विस्तृत रूप से उल्लेख पाया जाता है। गरुड पुराण में अधोलिखित श्लोक पाये जाते हैं।

पञ्चभिर्माषको ज्ञेयो गुञ्जाभिर्माषकैस्तथा।
चतुर्भिः शाणमाख्यातं माषकैर्म्मणिवेदिभिः॥
एकस्य शुक्तिप्रभवस्य शुद्धमुक्तामणेः शाणकसम्मितस्य।
मूल्यं सहस्राणि कपर्दकानि त्रिभिः शतैरभ्यधिकानि पञ्च॥
यन्मापकार्धेन ततो विहीनं चतुःसहस्रं लभतेऽस्य मूल्यम्।
यन्मापकांस्त्रीन् विभृयाद् गुरुत्वे द्वे तस्य मूल्यं परमं प्रदिष्टम्॥
अर्धाधिकद्वौ वहतोऽस्य मूल्यं, त्रिभिः शतैरभ्यधिकं सहस्रम्।
द्विमाषकोन्मापितगौरवस्य, शतानि चाष्टौ कथितानि मूल्यम्॥
अर्धाधिकं माषकसम्मितस्य, स पञ्चविंशं त्रितयं शतानाम्।
षड्माषकोन्मापितमानमेकं, तस्याधिकं विंशतिभिः शतं स्यात्॥
गुञ्जाश्च षड् धारयतः शते द्वे, मूल्यं परं तस्य वदन्ति तज्ज्ञाः।
गुञ्जाश्चतस्रो विधतं शतार्द्धा-दर्धं लभेताप्यधिकं त्रिभिर्वा॥
अतः परं स्याद्धरण-प्रमाणं, संख्याविनिर्देशविनिश्चयोक्तिः।
त्रयोदशानां धरणे धृतानाम्, हिक्केति नाम प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥
अध्यर्द्धमात्रञ्च शतं धृतं स्याद्, मूल्यं गुणैस्तस्य समन्वितस्य।
यदि षोडशभिर्भवेत् सुपूर्णं, धरणं तत्प्रवदन्ति दार्विकाख्यम्॥
अधिकं दशभिः शतञ्च मूल्यं, समवाप्नोत्यपि वालिशस्य हस्तात्।
यदि विंशतिभिर्भवेत् सुपूर्णं, धरणं मौक्तिकजं वदन्ति तज्ज्ञाः॥
नवसप्ततिमाप्नुयात् स्वमूल्यं, यदि न स्याद् गुणयुक्तितो विहीनम्॥
त्रिंशता धरणं पूर्णं शिक्येति परिकीर्त्यते।
चत्वारिंशत् परं तस्य मूल्यमेष विनिश्चयः॥
चत्वारिंशद्भवेच्छिक्या त्रिंशन्मूल्यं लभेत सा।
पञ्चाशत्तु भवेत् सोमस्तस्य मूल्यन्तु विंशतिः॥
षष्टिर्निकरशीर्षं स्यात् तस्य मूल्यं चतुर्दश।

अशीतिर्नवतिश्चेति कुप्येति परिकल्प्यते ॥
एकादश स्युर्नव च तयोर्मूल्यमनुक्रमात् ।
शतमर्धाधिकं द्वे च चूर्णोऽयं परिकीर्तितः ॥
सप्त पञ्च त्रयश्चैव तेषां मूल्यमनुक्रमात् ।
शाणात्परं माषकमेकमेकं यावाद्विवर्धेत गुणैरपीदम् ।
मूल्येन तावद् द्विगुणेन योग्यमाप्नोत्यनाघृष्टिहृतेऽपि देशे ॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मोत्तममध्यमानां, यन्मौक्तिकानामिह मूल्यमुक्तम् ।
तज्जातिमात्रेण न जातु कार्यम्, गुणैरहीनस्य हि तत्प्रदिष्टम् ॥
यत्तु चन्द्रांशु-संकाशमीषद्विस्वफलाकृति ।
स्वमूल्यात् सप्तमं भागमवृत्तत्वाल्लभेत तत् ॥
पीतकस्य भवेदर्धमवृत्तस्य त्रिभागतः ।
विषमव्यस्तजातीनां षड्भागं मूल्यमादिशेत् ॥
अर्धरूपाणि सस्फोटात् पङ्कचूर्णानि यानि च ।
असाराणि च यानि स्युः करकाकारवन्ति च ॥
एकदेशप्रभावन्ति सकलाश्लेपितानि च ।
यानि चातकवर्णानि कांस्यवर्णानि यानि च ॥
मीननेत्रसवर्णानि ग्रन्थिभिः संवृतानि च ।
सदोषाणि च यानि स्युस्तेषां मूल्यं पदांशिकम् ॥

अन्यत्र तु—

सञ्चाली प्रोच्यते गुञ्जा सा तिस्रो रूपकम्भवेत् ।
रूपकैर्दशभिः प्रोक्तः कलञ्जो नाम नामतः ॥
कलञ्जनामकं द्रव्यं एकदेशे निधापयेत् ।
अन्यतो जलबिन्दुस्तु तोलनार्थं विनिक्षिपेत् ॥
चत्वारि चीर्णयुग्मं वा तथैकं बहु वा स्थितम् ।
समं कलञ्जमानेन तुलामानादतः क्रमात् ॥
नवमात्पञ्चमं यावत् कलञ्जेन समं यदा ।
तत्क्रमादुत्तमं ज्ञेयं मौक्तिकं रत्नवेदिभिः ॥
चतुर्दशात् समारभ्य दशसंख्याविधिं क्रमात् ।
कलञ्जस्य समानं वा मौक्तिकं मध्यमं विदुः ॥
आरभ्य विंशतितमात् क्रमात्पञ्चदशावधि ।
लंघ्यास्ताः कथिता मुक्ता मूल्यञ्च तदनुक्रमात् ॥
कलञ्जद्वयमानेन यद्येकं मौक्तिकं भवेत् ।
न धार्यं नरनाथैस्तु देवयोग्यममानुषम् ॥

इत्थं विचार्य यो मुक्तां परिधत्ते नराधिपः ।
तस्यायुश्च यशो वीर्य्यं विपरीतमतोऽन्यथा ॥
इति श्रीभोजराजीये युक्तिकल्पतरौ मुक्तापरीक्षा ।

मोतियों की माला एवं हार—

भारतीय प्राचीन साहित्य में मोतियों की मालायें बनवाकर पहनी जाती थीं और वह रिवाज अनेकों स्थानों में आज भी उसी प्रकार व्यवहार में है। मोतियों की संख्या के अनुसार मालाओं के अनेकों नाम प्रचलित हैं। 'बृहत्संहिता' एवं 'अमरकोश' में यह प्रकरण अधोलिखित है ।

सुरभूषणं लतानां सहस्रमष्टोत्तरं चतुर्हस्तम् ।
इन्द्रच्छन्दो नाम्ना विजयच्छन्दस्तदर्धेन ॥

'इन्द्रच्छन्दमाला' में १००८ मोती होते हैं। यह चार लम्बी अनेकों लड़ों से युक्त होती है। 'विजयच्छन्दमाला' में ५०४ मोती होते हैं। यह दो हाथ लम्बी अनेकों लड़ों से युक्त होती है ।

शतमष्टयुतं हारो देवच्छन्दं ह्यशीतिरेकयुता ।
अष्टाष्टकोर्धहारोररिमकपालश्च नवपट्कः ॥

'देवच्छन्दहार' वह कहलाता है जिसमें मोतियों की १०४ लड़ें या कम से कम ८१ लड़ें हों। 'अर्धदेवच्छन्दहार' में ८८ लड़ें होती हैं। 'रश्मिकपालहार' में ६९ लड़ें होती हैं।

द्वात्रिंशता तु गुच्छो विंशत्या कीर्तितोर्धगुच्छाख्यः ।
षोडशभिर्माणवको द्वादशभिश्चार्धमाणवकः ॥

'गुच्छमाला' ३२ लड़ों की, 'अर्धगुच्छमाला' २० लड़ों की, 'माणवकमाला' १६ लड़ों की, 'अर्धमाणवकमाला' १२ लड़ों की होती है ।

मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिः पंचलताहारः फलकमित्युक्तम् ।
सप्तविंशतिमुक्ताभिर्हस्तो नक्षत्रमालेति ॥

'मन्दरमाला' ८ लड़ों की होती है एवं 'फलकहार' ५ लड़ों का होता है। एक हाथ लम्बी २७ मोतियों की एक ही लड़ को 'नक्षत्रमाला' कहा जाता है।

अन्तरमणिसंयुक्ता मणिसोपानं सुवर्णगुलिकैर्वा ।
तरकलमणिमध्यं तद्विज्ञेयं चाटकारमिति ॥

मोतियों की मालाओं की दो लड़ियों के बीच में रत्नमण्डित सुवर्ण की गुलिका (उरवसी) बैठाई जाती है। यदि 'इन्द्रच्छन्दमाला' में उरवसी बैठाई

जाती है तो उसे 'इन्द्रच्छन्दमणि सोपानमाला' और यदि 'विजयच्छन्दमाला' में उरवसी बैठा दी जाती है तो उसे 'विजयच्छन्दमणि सोपानमाला' कहा जाता है। यदि सुवर्ण की अनेकों रत्नमण्डित उरवसी न बैठाकर केवल तर-कल (एकरत्न युक्त) मणि युक्त ही बैठाया जाता है तो उसे 'चाटुकार इन्द्र-च्छन्दमणि सोपानमाला' कहा जाता है।

एकावली नाम यथेष्टसंख्या हस्तप्रमाणैर्मणिविप्रयुक्ता।
संयोजिताया मणिना तु मध्ये यष्टीति सा भूषणविद्भिरुक्ता॥

एक हाथ लम्बी माला में जितने भी मोती आ सकें बनवायी जाती हैं तो उसे 'एकावली' माला कहा जाता है। यदि इस 'एकावली माला' के बीच बीच में अर्थात् दो मोतियों के बीच में एक रत्न भी मण्डित कर दिया जाता है तो उसे 'यष्टिमाला' कहा जाता है।

पिक्का पिच्चाऽर्घाऽर्धो रवकः सिक्थस्त्रयो दशाद्यानाम्।
संज्ञा परतो निगराश्चूर्णश्चाशीतिपूर्वाणाम्॥

१३ से १६ मोतियों की लड़ को 'पिक्का', १६ से २० तक 'पिच्चा', २० से २५ तक 'अर्घा', २५ से ३० तक 'अर्ध', ३० से ४० तक 'रवक', ४० से ५५ तक 'सिक्थ' ५५ से ८० तक 'निगर', और ८० से ५०० तक मोतियों की एक लड़ को 'चूर्ण' कहा जाता है।

अमरकोशे तट्टीकायामपि'हार' भेदाः कथिताः।
अथोरःसूत्रिका मौक्तिकैः कृता॥
हारो मुक्तावलीदेवच्छन्दोसौ शतयष्टिका।
हारभेदा यष्टिभेदाद् गुच्छगुच्छार्धगोस्तनाः॥
अर्धहारो माणवक एकावल्येकयष्टिका।
सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैः॥ १०६॥

सैव ललन्तिका मौक्तिकैरचिताचेदुरस्यसूत्रिका इत्येकम्। हारः ह्रियते मनोऽने-नेति हारः। अथवा हारयति मनः। मुक्तावली द्वे मुक्ताहारस्य असौ मुक्तावली शतयष्टिका शतलतिका चेत् देवच्छन्दः एकम्। यष्टिभेदाल्लतानां भेदा-द्गुच्छादयो हारभेदाः स्युः गुत्सगुत्सार्धगोस्तनाः इत्यपि पाठः। ते यथा द्वात्रिंशद्याष्टिको गुच्छः चतुर्विंशतियष्टिको गुच्छार्धः चतुर्यष्टिको गोस्तनः द्वादश-यष्टिकोऽर्धहारः विंशतियष्टिको माणवकः एकयष्टिका एकावली सैव एकावली सप्तविंशतिमौक्तिकैः कृता नक्षत्रमाला स्यात् एकैकम्।

'हार' उसे कहा जाता है जो कि मन को आकर्षित करता हो। मोतियों के गले के हार को 'उरःसूत्रिका' कहा जाता है। १०० लड़ियों के मोतियों के हार को 'देवच्छन्द' एवं ३२ लड़ियों के हार को 'गुच्छ' या 'गुत्स' तथा २४

लड़ियों के हार को 'गुच्छार्ध' या 'गुत्सार्ध' कहा जाता है। १२ लड़ियों के हार को 'अर्धहार' और ४ लड़ियों के हार को 'गोस्तन' कहते हैं २० लड़ियों के हार को 'माणवक' एवं एक लड़ी के हार को 'एकावली' कहते हैं। यदि इस 'एकावली हार' में केवल २७ मोती ही पिरोये गये हों तो उसे 'नक्षत्रमाला' कहा जाता है।

कृत्रिम मोती की रचना

यह एक स्वाभाविक बात है कि जब असली वस्तु प्रकृति में कम पायी जाती है और अतएव उसकी कीमत भी अधिक होती है तब प्रत्येक साधारण व्यक्ति यह चाहता है कि यदि असली वस्तु न मिले तो कम से कम वैसी ही तद्रूप कोई वस्तु अवश्य मिले। मनोवैज्ञानिकों को मानव की इसी कमजोरी से लाभ उठाने की लालसा बनी रहना स्वाभाविक ही है।

कृत्रिम मोती कब से बनना प्रारम्भ हुआ इसका लेखा ठीक-ठीक तो नहीं लगाया जा सकता परन्तु अनुमानतः यह सिद्ध हो चुका है कि १६वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में पेरिस के 'जेकी' नामक व्यक्ति ने सर्वप्रथम कृत्रिम मोती बनाया था। १६ वीं शताब्दी से भी पूर्व की सम्भवतः १० वीं शताब्दी की मिश्रदेशीय एक पुरानी कब्र में एक घड़ा मोती प्राप्त हुये थे। वैज्ञानिकों द्वारा विश्लेषण कराने पर यह सिद्ध हुआ है कि ये मोती कृत्रिम हैं। कहा जाता है कि अमेरिका के आदि निवासियों ने एवं चीनियों ने भी कृत्रिम मोती बनाने के लिये चेष्टायें की थीं परन्तु वे सफल न हो सके।

कृत्रिम मोती निर्माण में १९ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों के वैज्ञानिक विशेष सफल हुये। फ्रांस, जर्मनी और इटली ने इस काम में अच्छी तरक्की की परन्तु इन देशों से कहीं अधिक तरक्की सन् १९१३ में जापान के एक 'मीकीमोतो' नामक वैज्ञानिक ने की। इन महाशय को शुक्ति-अस्थि से सटे हुये खराब मोतियों को खूबसूरत मोती बनाने में सफलता मिली। इसके बाद वह शुक्ति में किन्हीं बाह्य लघु वस्तुओं को प्रविष्ट करके छोटे छोटे मोती बनाने में सफल हुआ। जापान राज्य ने इस व्यवसाय को खूब प्रोत्साहन दिया। साथ ही काफी आर्थिक सहायता भी दी। कुछ ही वर्षों में करोड़ों रुपयों की जापान की आय बढ़ गई। जापान की इस तरक्की को अमेरिका सहन न कर सका। अमेरिका के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक (जिनका कि नाम 'वोस्टविक' है। इन महाशय ने इस विषय में १८८० ई० के लगभग से ही अनुसंधान प्रारम्भ करदिया था) ने इस विषय में आशातीत सफलता कर दिखायी। वोस्टविक को सर्वप्रथम अनुसन्धान के लिये अमेरिका राज्य से किसी भी प्रकार की मदद नहीं मिली थी परन्तु जब जापान को आगे बढ़ते

देखा तब अमेरिका राज्य ने भी वोस्टविक को पर्याप्त प्रोत्साहन और आर्थिक सहायता दी।

वोस्टविक के प्रयोग—सफल वैज्ञानिक अपनी धुन का पक्का होता है। वह अपनी कार्यप्रणाली पर सदा विश्वास रखता है। उसकी आँखों के सामने अपनी सफलता सदा नृत्य करती रहती है। वोस्टविक ने अपनी प्रयोगशाला का प्रारम्भ अयोवा नामक नदी से किया। नदी के किनारे एक सीमेन्ट का कच्च बनाया गया। कच्च की तली में बालू, कीचड़, मिट्टी, रोड़े और सेवार जमायी गई। इस तली पर से जलप्रवाह का प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार कच्च बनवाकर शुक्ति और शम्बूक (घोंघा) पाले गये, शुक्ति और शम्बूकों पर से सदा जलप्रवाह होते रहने दिया गया। शुक्ति एवं शम्बूकों में क्या और किस प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं—इस बात को देखने के लिये 'शल्यकर्म मंच' बनाया गया।

वोस्टविक का कहना है कि असली मोतियों की अपेक्षा कृत्रिम मोती कहीं उत्तम और आभायुक्त होते हैं। असली मोती में बालू के कण, कीचड़, अथवा कोई भी बाह्य पदार्थ के कारण बदसूरती आ सकती है, परन्तु कृत्रिम मोती में किसी भी प्रकार की खराबी नहीं आ सकती। वोस्टविक ने शुक्ति के अन्दर बहुत ही सूक्ष्म असली मोती प्रविष्ट किये। इस सूक्ष्म मोती पर शुक्ति-स्तर चढ़ना प्रारम्भ हो गया। यह सूक्ष्म मोती धीरे-धीरे बढ़ता है और सुन्दरातिसुन्दर बड़ा मोती बन जाता है। वोस्टविक के विचार से कृत्रिम मोती बनाना एक मामूली सी बात है। होशियारी केवल इस बात में है कि शुक्ति के अन्दर सूक्ष्म मोती को इस प्रकार रखा जावे कि शुक्ति के मांस भाग के मध्य में ही रखा जाये। यदि सूक्ष्म मोती शुक्ति के अस्थिभाग के सम्पर्क में रख दिया तो वह टेढ़ा-मेढ़ा और बदसूरत मोती बनेगा। यह क्रिया वर्षों के अभ्यास के बाद ही सफलतापूर्वक की जा सकती है।

अयोवा नदी की शुक्ति द्वारा मोती निर्माण की सफलता को देखकर वोस्टविक को केलिफोर्निया बुलवाया गया। यहाँ पर एक विशेष शुक्ति द्वारा भी आशातीत सफलता मिली।

वोस्टविक का कथन है कि मैं एक न एक दिन बड़े से बड़ा आभायुक्त मोती बना सकूँगा।

जापानी वैज्ञानिकों के दिल में यह था कि हल्दी लगे न फिटकिरी और रंग चोखा आ जाय। इन लोगों ने प्रकृति के पास पहुँचने की जरा भी चेष्टा न की। सीधे ही कैल्सीयम कार्बोनेट के गोल दानों पर हाइड्रो क्लोरिक

एसिड द्वारा ऐसे उत्तम रीति से जिला चढ़ायी कि असली और वोस्टविक द्वारा बनाये गये मोतियों को भी मात कर दिया। यहाँ तक लोभ बढ़ गया कि काँच और चायनाक्ले के भी मोती बनाकर संसार के बाजार को पाट दिया। असली मोतियों का बाजार मन्दा पड़ गया।

प्राकृतिक मोतियों में एवं वोस्टविक स्कूल से निर्मित मोती में तात्त्विक दृष्टि भेद नहीं होता। यहाँ तक कि औषध प्रयोग में भी गुण धर्म समान पाये गये हैं।

प्राकृतिक और कृत्रिम मोती की परीक्षा

(१) विमर्दितं शालितुषैर्गोमूत्रेण पटुना भृशम्।
यन्नेति विकृतिं किंचित् तन्मौक्तिकमकृत्रिमम्॥

अर्थात्—शालि चावलों के छिलकों में मोतियों को रखकर खूब रगड़े और इसके पश्चात् गोमूत्र से प्रक्षालन करे। यदि असली मोती होंगे तो मोतियों में जरा भी खराबी नहीं आवेगी। अन्यथा कुछ न कुछ विकृति अवश्य आवेगी।

(२) उपर्युक्त परीक्षा के अलावा अधोलिखित परीक्षा हमारी अनुभूत है। दो सेर गोमूत्र में आधा पाव सांभर नमक मिला लें। इस नमक मिले गोमूत्र को चार सेर वाली हण्डी में भर दें। इस हण्डी में दोलायन्त्र विधि से एक पोटली में मोतियों को बाँधकर लटका दें। ४ से ८ घण्टे की मन्द मन्द आँच दें। पश्चात् मोतियों को निकाल कर शालि चावलों की भूसी में खूब रगड़ें और फिर गोमूत्र से प्रक्षालन करें। असली मोती पूर्वापेक्षा और भी चमक उठेंगे। नकली मोतियों की आभा एकदम फीकी पड़ जायगी।

(३) असली मोतियों को गन्धकाम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड) में थोड़ी सी देर डुबोने से आभा नष्ट हो जाती है। काँच और 'चायना क्ले' के मोतियों का गन्धकाम्ल में कुछ भी नहीं बनता बिगड़ता। कैल्सियम कार्बोनेट द्वारा निर्मित मोती भी गंधकाम्ल में घुलनशील हैं परन्तु असली मोती और वोस्टविक के मोतियों की अपेक्षा शीघ्र ही।

(४) असली मोती दाँत से सरलतापूर्वक टूट जाता है। 'वोस्टविक' वाले मोती थोड़ी कठिनता से टूटते हैं। काँच एवं चायना क्ले के मोती दाँतों से नहीं टूट सकते।

(५) असली और नकली मोतियों की पहिचान में कभी कभी तो अच्छे-अच्छे जौहरी चक्कर में पड़ जाते हैं। परन्तु सावधानी और धैर्यपूर्वक देखने से स्पष्ट ही फरक मालूम पड़ जाता है। आखिरकार बनावट के फूलों से सुगन्धी

आ ही नहीं सकती। यदि आती भी है तो अधिक देर तक नहीं ठहर पाती। असली—असली ही है और नकली—नकली ही।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार मोती ८ प्रकार का है

शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणिर्मत्स्यश्च दर्दुरः।
वेणुश्चाष्टौ समाख्याता सुज्ञैः मौक्तिकयोनयः॥

शुक्तिजमोती, शंखजमोती, गजमोती, वराहमोती, सर्पजमोती, मत्स्यजमोती, दर्दुरमोती और वेणुजमोती—इस प्रकार से ८ प्रकार के मोती होते हैं।

(१) शंखमौक्तिक—

शंखस्याच्युतहारिणो जलनिधौ ये वंशजा कम्बुकाः,
तेष्वन्तः किल मौक्तिकं भवति वै तच्छुक्रतारानिभम्।
कापोताण्डसमं सुवृत्तमसकृच्छ्रीकं सरूपं लघु,
स्निग्धं स्पर्शकृतं हि तच्च न पुनर्मर्त्यैस्तदासाद्यते॥

अर्थात्—कम्बुक नामक शंख समुद्र में होते हैं—इन शंखों के अन्दर तारों के समान चमकदार एवं कबूतर के अण्डों के समान गोल देदीप्यमान और स्निग्ध मोती पैदा होते हैं। ये मोती लक्ष्मी और शोभा को देनेवाले होते हैं।

(२) गजमौक्तिक—

यद्दन्तावलकुम्भसम्भवमदः पीतारुणं मन्दरुक्,
धात्री धारणतोऽत्र रत्नमधमं काम्बोजकुम्भोद्भवम्।

अर्थात्—काम्बोज नामक हाथियों के गण्डस्थल में कभी-कभी पीले-लालवर्ण के आवरहित मोती पाये जाते हैं। यह मोती बहुत ही अधम श्रेणी के होते हैं।

(३) शूकरमुक्ता—

एकाकी ससुखेन निस्पृहतया यः काननं गाहते,
तस्यानादिवराहवंशजनुषः कोलस्य मूर्ध्नि स्थितम्।
कंकोलाकृतिमिन्दुवत्सधवलं दैवादवाप्नोति तत्,
सौमर्त्यै समुपासते स निधिभिर्मर्त्यो धनाधीशवत्॥

अर्थात्—एक प्रकार का सूअर जो कि जंगल में अभय और मस्त होकर घूमता-फिरता है। कभी-कभी उसके मस्तिष्क में मोती पाया जाता है। उस मोती की आकृति कंकोल के समान और शोभा आदि चन्द्रमा के समान होती है। यह मोती कभी किसी को भाग्य से ही मिल जाता है। जिसको यह मिल जाता है वह शीघ्र ही भाग्यशाली और करोड़पति हो जाता है।

(४) सर्पज मौक्तिक—

शेषस्यान्वयिनां फणासुफणिनां यन्मौक्तिकं जायते,
वृत्तं निर्मलमुज्ज्वलं शशिरुचिश्यामच्छवि श्रीकरम्।

कंकोलाकृतिकोऽपि कोटिसुकृतैः प्राप्नोति चेन्मानवः,
स स्याद्वाजिगजाधिको नृपसमो जातोऽपि नीचे कुले।
भूते सद्मनि चेत् स पन्नगमणिस्ते यातुधानामरा,
हर्तुं रन्ध्रमवेक्षतेऽन्यतरतः कुर्यान्महाशान्तिकम् ॥

अर्थात्—एक प्रकार के शेषनाग होते हैं। उनके फण में मोती पाये जाते हैं। ये मोती गोल, निर्मल, उज्वल, कंकोलाकृति चन्द्रमा के समान आह्लादकारी होते हैं। यह मोती कोई-कोई भाग्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। यदि दरिद्री मनुष्य भी इसे धारण कर ले तो वह राजा महराजाओं के समान प्रतिभावान् दिखाई देता है। जिस घर में यह मोती मौजूद रहता है उस घर में भूत-प्रेत का डर न होकर सुखशान्ति बनी रहती है।

(५) मत्स्यमौक्तिक—

प्रोष्ठीगर्भगतस्तु मौक्तिकमणिर्गर्जिः स्मः पाटली।
पुष्प्याभः स न लभ्यते भुवि जनैरस्मिन्कलौ पापिभिः ॥

अर्थात्—मछली के उदर में भी मोती उत्पन्न होता है। इसका वर्ण पाटल पुष्पाभा के समान होता है। कलियुग में यह मोती पापियों को नहीं प्राप्त होता।

(६) दर्दुरमौक्तिक—

यन्मेघोदरसंभवं तदवनीमप्राप्तमेवामरः,
व्योमस्थैरपनीयते विनिपतद्वर्षासु मुक्ताफलम्।
तिग्मांशोरपि दुर्निरीक्ष्यमकृशं सौदामिनीसंनिभम्,
देवानामपि दुर्लभं न मनुजस्यैतस्य लाभः पुनः ॥

अर्थात्—वर्षा ऋतु के मेघों के भीतर उत्पन्न होनेवाले मेढ़क जो कि पृथ्वी पर नहीं गिरते—उन मेढ़कों के उदर में मोतियों की उत्पत्ति होती है। उन मोतियों को देवता गण ही ले लिया करते हैं। ये दर्दुर मोती बिजली के समान चमकदार होते हैं। यह मोती जब कि देवताओं के लिये भी दुर्लभ हैं तो फिर मनुष्यों के लिये तो प्राप्त हो ही नहीं सकते।

(७) वेणुमौक्तिक—

मुक्ताः सन्ति कुलाचलेषु करकाः कान्त्युद्भवा वंशजाः,
कर्कन्धूफलबन्धवो निदधते कण्ठेषु शुद्धाङ्गनाः।

अर्थात्—कुलाचल पर्वत पर बहुत बड़े-बड़े मोटे बांस उत्पन्न होते हैं। इन बांसों में मोती उत्पन्न होते हैं। इन मोतियों का आकार बेर के समान होता है। पवित्र आचरण वाली स्त्रियाँ इसे अपने गले में धारण करती हैं।

(८) शुक्तिमौक्तिक—

पट्स्वेतेष्वपि रुक्मिणीव जगति, ख्यातिं गता रुक्मिणी-
नाम्ना शुक्तिरतीव चोत्तमगुणा सिन्धौ समुज्जृम्भते।
तस्या गर्भभवं तु कुम्भसदृशं, जातीफलाकारभं
स्थूलस्निग्धमतीव निर्मलमलं भूमौ प्रकाशं सदा॥

अर्थात्—समुद्रों में ६ प्रकार की शुक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इन ६ की शुक्तियों में रुक्मिणी नामक शुक्ति सर्वश्रेष्ठ होती है। इस शुक्ति में कुम्भ के समान एवं जायफल के आकार के मोती उत्पन्न होते हैं। ये मोती बहुत बड़े-बड़े, सुचिक्कण, निर्मल और दीप्तिमय होते हैं।

देशानुसार मोती के बाजारू नाम एवं संक्षिप्त परिचय

बम्बई, कलकत्ता, जयपुर आदि नगरों में मोतियों के देशानुसार बाजारू नाम अधोलिखित शब्दों द्वारा व्यवहार में आते हैं।

(१) बसरे का मोती—ईरानी खाड़ी में बसरे के निकटवर्ती स्थानों से निकलने वाले मोती श्वेत, कुछ गुलाबी झाँई वाले, गोल, पांच छ परत वाले और आबदार होते हैं। यथार्थ में पूछा जाय तो यही मोती प्रत्येक काम के लिये सर्वोत्तम होते हैं।

(२) अरबियनमोती—

श्वेतं स्निग्धमतीव बन्धुरतरं स्याद् पारसीकोद्भवम्।

पारस देश (परशियन गल्फ) में पैदा होनेवाले मोती सफेद, चिकने और अत्यन्त सुन्दर होते हैं। इन्हें बाजार में अरबियन मोती कहा जाता है।

(३) सीलीदाणा मोती—यह मोती गोल, श्वेत और कुछ कम आबदार होते हैं। मस्कत की खाड़ी से उद्भावित मोतियों को, 'सीलीदाणा' मोती कहा जाता है।

(४) निमिसारी मोती—यह मोती आफ्रिका के समुद्रों से निकाले जाते हैं।

(५) उड़न मोती—उड़न मोती सीलोन के पार्श्ववर्ती समुद्र से निकाले जाते हैं।

(६) टाल मोती—यह प्रकार आस्ट्रेलिया के समुद्रों से निकाले जाते हैं।

(७) जामशाई मोती—यह जामनगर के पार्श्ववर्ती सामुद्रिक स्थलों से निकाले जाते हैं।

सापेक्ष निदर्शक सारिणी

क्रमिक संख्या	देशानुसार प्रकार	रासायनिक तत्व	रंग	कठोरता	आपेक्षिक गुरुत्व	विवरण
१	प्राच्यमुक्ता (Oriental)	कैल्सियम कार्बोनेट ($CaCo_3$)	श्वेत या मलाई के समान (Creamy)	३.५	२.७१	परसियनगल्फ, मन्नारगल्फ, चुनाखाड़ी, मोतिहारी इत्यादि स्थानों के मोती 'प्राच्यमुक्ता' (Oriental pearl) के नाम से व्यवहृत होते हैं।
२	आस्ट्रेलियन मोती	"	रजतवत् श्वेतवर्ण (Silvery white)	"	२.७४	आस्ट्रेलिया में होने वाले मोती को 'आस्ट्रेलियन मोती' कहा जाता है।
३	वेनेजुलियन मोती (Venezuelean pearl)	"	पारभासक श्वेतवर्ण (Semi Transparent white)	"	२.७०	वेनजुला के मोतियों को 'वेनेजुलियन मोती' कहा जाता है।
४	मिष्टजलोद्भव मुक्ता (Fresh watery)	"	आवरहित (Dullness)	"	२.७०	अनेकों स्थानों में मीठे पानी में भी शुक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इन शुक्तियों में कभी-कभी छोटे मोती पाये जाते हैं। इन मोतियों की आभा क्षीण होती है।
५	कृष्णाभ मुक्ता (Black pearl)	"	कांस्यवर्ण (Bronze)	"	२.६५	प्रायः प्रत्येक देश के मोतियों में इस वर्ण के मोती कभी-कभी अनेकों बार मिल जाया करते हैं।
६	नीलाभ मुक्ता (Blue pearl)	"	शीशक वर्ण (Lead-grey)	"	२.६०	"
७	शंखमुक्ता (Conch pearl)	"	पीताभायुक्त (Pink)	"	२.८५	" शंख या घोंघाओं में अनेकों बार मोती मिल जाया करते हैं।
८	स्निग्धमुक्ता (Clamy pearl)	"	किंचित्कृष्णाभायुक्त (Blackish)	"	२.६५	इन मोतियों पर अंगुलि स्पर्श करने से चिपचिपापन अनुभव होता है। ये प्रायः आबरहित होते हैं। थोड़ी काली झाँईंयुक्त होते हैं। समुद्र के किनारों पर जिन शुक्तियों में नमक का टुकड़ा यदि किसी प्रकार सम्प्रवेशित हो जाता है तो प्रायः मोती चिपचिपे और आबरहित हो जाते हैं।

मोती और ज्योतिष शास्त्र

मोती का मैत्री सम्बन्ध चन्द्रमा से है। इस सम्बन्ध का द्योतन दो प्रमुख पर्यायवाची शब्द करते हैं। एक 'शशिरत्न' और दूसरा 'शशिप्रिय'। "रक्तपीत सितशामच्छविर्मुक्ता प्रिया विधोः" अर्थात् चन्द्रमा को जिस मोती में श्वेतवर्ण-छवि के साथ किंचित् अरुणाभा या पीताभा अथवा किंचित् कृष्णाभा होती है, वह मोती प्रिय होता है। अनेकों ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों में उल्लिखित है कि वही मोती चन्द्र को प्रिय होता है जो कि शुद्ध श्वेत वर्णाढ्य होता है। जिस व्यक्ति के लिये केवल चंद्रमा ही कुदृष्टित अवस्था में हो उसे श्वेतवर्णाढ्य मोती का ही प्रयोग कराना चाहिये और यदि साथ ही रवि भी अनुगामी रूप में कुदृष्टित हो तो अरुणाभायुक्त मोती का प्रयोग श्रेयस्कर होता है। यदि बृहस्पति अथवा शनि भी कुदृष्टित हो तो क्रमशः पीताभा या कृष्णाभा युक्त मोती का धारण या भस्म रूप में सेवन कराना चाहिये।

चन्द्रमा की कुदृष्टित अथवा प्रकुपितावस्था में व्यक्ति को अधोलिखित व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

गलगण्डो गण्डमाला ज्वरश्च कफदूषितः।
कासच्छर्दिः क्षयं शूलं श्लीपदश्च जलोदरी॥
आमपीडाऽतिसारश्च हृद्रोगः श्वासकृच्छ्रता।
एते वै चन्द्रजा रोगा मुनिभिः परिकीर्तिताः॥ (प्रश्नकल्पतरु)

अर्थात्—चन्द्रमा की प्रकुपितावस्था में गलगण्ड, गण्डमाला, ज्वर, विशेषतः कफदूषित जन्य ज्वर, कास, वमन, क्षय, कफजशूल, श्लीपद, जलोदर, आमज पीड़ा, आमातिसार, हृद्रोग, श्वासकृच्छ्रता आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों में मोती का धारण एवं मुक्ताभस्म या मुक्तापिष्टी का सेवन अतीव लाभप्रद होता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा भी यह सिद्ध किया जा चुका है कि समुद्र का और चन्द्रमा का परस्पर में आकर्षण होता है। समुद्र से जब क्लोरीन नामक नमक की गैस मिश्रित ऊष्ण वाष्प उद्भावित होती है उस समय चन्द्रमा में विशेष शीतात्मक आह्लाद होने के कारण समुद्र में विशेष प्रकार की लहरें उठने लगती हैं। पूर्णिमा के दिन जब कि चन्द्र पूर्ण चन्द्रत्व में आता है—समुद्र में बहुत बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं। मानो समुद्र की जल लहरियाँ अपने प्रियतम चन्द्र के साथ मिलाप करना चाहती हैं। इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि समुद्र में रहनेवाले समस्त जीव जन्तुओं का भी चन्द्रमा से आकर्षण अथवा मैत्री है। मुक्ता, मुक्ताशुक्ति, शंख या शंखमुक्ता का मैत्री

सम्बन्ध चन्द्रमा के साथ होना हमारे प्राचीन आर्य साहित्य में अनेकों स्थलों पर इसीलिये बताया गया है ।

आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिषी 'किरो' के मतानुसार जिन व्यक्तियों का जन्म ता० २१ दिसम्बर से लेकर २७ जनवरी तक एवं २१ जून से लेकर २७ जुलाई तक तथा २१ अप्रैल से लेकर २७ मई के बीच हुआ हो तो उन्हें मोती अवश्य ही आभूषणों में पहिनना चाहिये ।

प्राच्य ज्योतिष शास्त्रानुसार सोमवार के दिन चन्द्र के होरा में मोती का प्रयोग करना प्रारम्भ करें ।

मोती के दोष एवं उनका कुफल

चत्वारः स्युर्महादोषाः षण्मध्याश्च प्रकीर्तिताः ।
एवं दश समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥
यत्रैकदेशे संलग्नः शुक्तिखण्डो विभाव्यते ।
शुक्तिलग्नः समाख्यातः स दोषः कुष्ठकारकः ॥
मीनलोचनसंकाशो दृश्यते मौक्तिके तु यः ।
मत्स्याक्षः स दोषः स्यात् पुत्रनाशकरो ध्रुवम् ॥
दीप्तिहीनं गतच्छायं जरठं तद्विदुर्बुधाः ।
तस्मिन्संधारिते मृत्युर्जायते नात्र संशयः ॥
मौक्तिकं विद्रुमच्छायमतिरक्तं विदुर्बुधाः ।
दारिद्र्यजनकं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥
उपर्युपरि तिष्ठन्ति वलयो यत्र मौक्तिके ।
त्रिवृत्तं नाम तस्योक्तं सौभाग्य-क्षयकारकम् ॥
अवृत्तं मौक्तिकं यच्च चिपिटं तन्निगद्यते ।
मौक्तिकं ध्रियते येन तस्याकीर्तिर्भवेत् सदा ॥
त्रिकोणं त्र्यासमाख्यातं सौभाग्यक्षयकारकम् ।
दीर्घं यत्तत् कृशं प्रोक्तं प्रज्ञाविध्वंसकारकम् ॥
निर्भग्नमेकतो यच्च कृश-पार्श्वं तदुच्यते ।
सदोषं मौक्तिकं निन्द्यं निरुद्योगकरं हि तत् ॥
अवृत्तं पिडिकोपेतं सर्वसम्पत्तिहारकम् ।

मोतियों में कुल मिलाकर १० दोष होते हैं । जिनमें से ४ दोषों की महादोष संज्ञा दी गई है । शेष ६ दोषों की मध्यदोष । महादोषों के नाम हैं। (१) शुक्तिलग्न (२) मत्स्याक्ष (३) जरठ और (४) अतिरक्त। (१) 'शुक्तिलग्न' दोष उसे कहा जाता है कि जिस मोती में किसी एक स्थान पर शुक्ति के समान अपेक्षा कृत समस्त मोती की आभा से बहुत कम

आभावाला स्पष्ट चिह्न दिखाई देता हो। शुक्तिलग्न वाले मोती को आभूषणादि के रूप में पहिनने से कुष्ठरोग उत्पन्न हो जाता है। दूसरा महादोष है। (२) 'मत्स्याक्ष' जिस मोती में मछली की आँख के समान किसी एक स्थान पर चिह्न होता है उस मोती को 'मत्स्याक्ष' दोषयुक्त मोती कहा जाता है। इस दोष से युक्त मोती को पहिनने से निश्चय से पुत्रनाश होता है। तृतीय महादोष है। (३) 'जरठ' जिस मोती में दीप्ति या आभा का नितान्त अभाव हो एवं हथेली पर रखकर देखने से मोती की प्रतिच्छाया बिलकुल न बनती हो उसे 'जरठ' महादोष युक्त मोती कहा जाता है। ऐसें मोती को धारण करने से अवश्य ही मृत्यु होती है। चतुर्थ महादोष है (४) 'अतिरिक्त'। जिस मोती में प्रवाल या मूँगा के समान छाया बनती हो उस दोष को 'अतिरिक्त' महादोष कहा जाता है। इस दोष से युक्त मोती को पहिनने से दरिद्रता आती है अतएव 'अतिरिक्त' मोती को नहीं पहिनना चाहिये।

इन चार महादोषों के अलावा ६ मध्य दोष और होते हैं। (१) त्रिवृत्त (२) अवृत्त (३) त्रास (४) कृश (५) कृश-पार्श्व और (६) पिडिकोपेत।

(१) 'त्रिवृत्त' दोष उसे कहा जाता है कि जिस मोती के ऊपरी स्तर पर तीन गोल वलियाँ (रेखायें) चिह्नित हों। इस दोष से युक्त मोती को पहिनने से सौभाग्य नष्ट होता है।

(२) 'अवृत्त' दोष उसे कहा जाता है कि जिस मोती में गोलाई न होकर वह चिपटा होता है। ऐसे मोती के धारण करने से अयश प्राप्त होता है।

(३) 'त्रास' दोष युक्त मोती वह कहलाता है जिसमें तीन कोने निकले होते हैं। ऐसे मोती के धारण से सौभाग्य नष्ट होता है।

(४) 'कृश' दोष युक्त होती वह है जो कि गोल न होकर लम्बा होता है। ऐसे मोती के धारण से बुद्धि नष्ट होती है।

(५) 'कृश-पार्श्व' दोष युक्त मोती वह कहलाता है जिसका कोई भाग या किनारा टूट गया हो। ऐसा मोती पहिनने से मनुष्य उद्योगहीन हो जाता है।

(६) 'पिडिकोपेत' दोष युक्त मोती वह कहलाता है जिसमें गोलाई न होकर किसी स्थान पर पिडिका या उत्सेध बना हो। ऐसे मोती के धारण करने से समस्त धन-दौलत नष्ट हो जाती है।

उपर्युक्त १० दोषों के अलावा जयपुर, काशी आदि स्थानों के अनुभवी जौहरी ४ दोष और भी विशेष मानते हैं। इस प्रकार से कुल १४ दोष माने

जाते हैं १. गरज (टूटा हुआ) २. लहर (बारीक रेखा) ३. गिडली (मोती के चारो तरफ गोलाई में गर्त्तमय रेखा) ४. मसा (लाल या काले रंग की मस्सा जैसी आकृति) ५. लव (कृशता या पतलापन) ६. सुन्न (दीप्ति रहित), ७. चोभ (चेचक के दाने के गर्त के समान) ८. तिकोन (तीन कोन युक्त) ९. काग (कौये के पंख या पैर के समान दाग) १०. छाल (फफोले के समान उठा हुआ उत्सेध) ११. चिपटा (पेड़े के समान चिपटा) १२. धवा (धब्बा या दाग) १३. ताम्र (ताँबे जैसी सुर्खी) १४. अतिरिक्त (मूंगे के समान लाल रंग)। इन १४ दोषों से युक्त मोती को धारण करने से अनेकों प्रकार की व्याधियाँ एवं मानसिक कष्ट होते हैं अतएव दोषयुक्त मोती का परित्याग करना चाहिये।

मोती का अचिन्त्य प्रभाव

(१) मोती के विषय में सर्वप्रथम आर्यों के आदि ग्रन्थ अथर्ववेद में इसे धारण करनेके लिये बताया गया है। मोती का पहनना अनिष्ट नाशक और सौभाग्य अभिवर्धक समझा जाता है। भारतवर्ष में अनेक जातियों में यह विश्वास है कि मोतियों की नथ स्त्रियों को पहनाने से उनका सौभाग्य बना रहता है। स्त्रियों की चंचलता गम्भीरता में परिणत हो जाती है। दाक्षिणात्य ब्राह्मण एवं क्षत्रियों तथा राजस्थान की अनेक जातियों में यह एक रूढ़ि चली आ रही है कि वे अपनी बहिन, बेटी या भानजी के विवाह में मोतियों से मण्डित स्वर्ण की नथ दहेज में अवश्य देते हैं।

(२) १४ वीं शताब्दी के पर्यटक मार्कोपोलो ने अपने यात्रावर्णन में लिखा है कि भारतवर्ष और चीन के लोगों का विश्वास है कि वे मृतक के मुख में मोती रखकर उसका दाहकर्म करते हैं।

(३) भारत तथा जापान के बौद्धों का मोती के विषय में यह एक विश्वास है कि मोती की उत्पत्ति देवताओं द्वारा हुई है। मोती वे इसीलिए पहनते हैं ताकि उनकी भी बुद्धि देवताओं के समान पवित्र बनी रहे। मोती को पास में रखने से शरीर में शक्ति का संचार होता है। पौरुष बना रहता है।

(४) फारसी में मोती को 'मर्वारीद' या 'मरवारीद' अथरा 'मर्जन' कहा जाता है। इस शब्द का धात्वर्थ होता है 'शक्तिप्रदाता'। अरब या पारस अधिवासी मोती की उत्पत्ति देवताओं के आँसुओं से मानते हैं अतएव वे इसे आभूषणों एवं औषधि रूप में काम में लाते हैं।

(५) चीनी भाषा में मोती को 'यौंग' कहा जाता है यौंग का भी अर्थ

होता है 'शक्तिप्रदाता'। अतएव इनकी भी धारणा यही है कि मोती को पास में रखने से दीर्घायु प्राप्त होती है।

(६) स्काटलैण्ड के मूल अधिवासी मोती को 'नियामनुईद' कहते हैं। इस शब्द का अर्थ होता है 'स्वर्ग से अवतरित'। इस स्वर्गीय वस्तु को वे इसीलिये प्रयोग में लाते हैं कि उन्हें स्वर्ग के समस्त सुख प्राप्त हों।

(७) अमेरिका के प्राचीन ग्रन्थों में मोती का सम्बन्ध चन्द्रमा से माना गया है। उनका विश्वास है कि चन्द्रमा जब हम पर नाखुश होता है उस समय मोती के पहिनने से उसकी नाराजी कम हो जायगी।

(८) अथर्ववेद में 'मुक्ता' शब्द मिलता है। इसे 'महारत्नों' में माना गया है। 'मुक्ता' का अर्थ होता है—शरीर की आधि व्याधियों के छुटकारा दिलाने वाली वस्तु विशेष। अथवा संसार से मोक्ष प्रदान करनेवाली विशिष्ट वस्तु। भारतवासियों की धारणा है कि मोती को आभूषणों के रूप में अथवा रोग निवारणार्थ उसकी भस्म के सेवन करने से धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थ त्रय की प्राप्ति होकर अन्त में चतुर्थ पुरुषार्थ 'मुक्ति' या मोक्ष की समुपलब्धि होती है।

उत्कृष्ट गुणों से युक्त मोती और उसके फल—

सुतारञ्च सुवृत्तञ्च स्वच्छञ्च निर्मलन्तथा।
घनं स्निग्धञ्च सुच्छायं तथाऽस्फुटितमेव च॥
अष्टौ गुणाः समाख्याता मौक्तिकानामशेषतः।
तारकद्युतिसंकाशं सुतारमिति कथ्यते॥
सर्वतो वर्तुलं यच्च सुवृत्तं तन्निगद्यते।
स्वच्छं दोषविनिर्मुक्तं निर्मलं मलवर्जितम्॥
गुरुत्वं तुलने यस्य तद्घनं मौक्तिकं वरम्।
स्नेहेनैव विलिप्तं यत् तत् स्निग्धमिति गद्यते॥
छायासमन्वितं यच्च सुच्छायं तन्निगद्यते।
व्रणरेखाविहीनं यत् तत्स्यादस्फुटितं शुभम्॥
भ्राजिष्णु कोमलं कान्तं मनोज्ञं स्फुरतीव च।
स्रवतीव च सत्वानि तन्महारत्नसंज्ञितम्॥
श्वेतकाचसमाकारं शुभ्रांशुशतयोजितम्।
शशिराजप्रतिच्छायं मौक्तिकं देवभूषणम्॥
एवं सर्वगुणोपेतं मौक्तिकं येन धार्यते।
तस्यायुर्वर्धते लक्ष्मीः सर्वपापं प्रणश्यति॥

गुणवद्गुरु यद्देहे मौक्तिकैकं हि तिष्ठति ।
चञ्चलाऽपि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति ॥

मोती में आठ विशिष्ट गुण होते हैं । (१) सुतार, (२) सुवृत्त, (३) स्वच्छ, (४) निर्मल, (५) घन, (६) स्निग्ध, (७) सुच्छाय (८) अस्फुटित ।

(१) जिस मोती से तारे के समान दीप्ति एवं रश्मियाँ प्रस्फुटित होती हैं उसे 'सुतार' गुण युक्त मोती कहा जाता है ।

(२) जिस मोती में सब तरफ से पूरी गोलाई होती है उसे 'सुवृत्त' मोती कहा जाता है ।

(३) जो मोती १० या १४ दोषों से रहित होता है उसे 'स्वच्छमुक्ता' कहा जाता है ।

(४) जो मोती किसी भी प्रकार के दाग आदि चिह्नों से रहित होता है उसे 'निर्मल मुक्ता' कहते हैं ।

(५) जो मोती तौल में भारी होता है उसे 'घनमौक्तिक' कहते हैं ।

(६) जिस मोती को हाथ से स्पर्श करने से किसी चिकनी वस्तु से परिलिप्त है—ऐसा मालूम होता है—उसे 'स्निग्ध मुक्ता' कहते हैं ।

(७) जिस मोती को पास से देखने से किसी प्रकार की वर्णयुक्त छाया दिखाई देती है उसे 'सुच्छायमुक्ता' कहा जाता है ।

(८) जो मोती व्रण और रेखाओं से रहित होता है उसे 'अस्फुटित मुक्ता' कहते हैं ।

महारत्न मुक्ता—वह मोती कहलाता है जो कि सुशोभित, कोमल स्निग्ध, आकर्षक, मनोनुकूल, स्फूर्तिदायक एवं देखने से ऐसा मालूम होता है मानो इसमें से प्राणों का स्रवण हो रहा हो। लोक में इस बात को लोग लोकोक्ति के रूप में कहा करते हैं—कि यह मोती तो ऐसा मालूम हो रहा है—मानो यह अभी बोल उठेगा क्या ! अर्थात् अतीव सुन्दर ।

सफेद काच के समान आकार वाला एवं जिसकी श्वेत किरणावली शत-योजन तक पहुँचती है तथा जो चंद्रमा के समान छायायुक्त अर्थात् जिसे समीप से देखने में चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त मालूम होता है—ऐसा मोती देवताओं के भूषण के ही योग्य है । अर्थात् मनुष्यों को प्राप्त नहीं होता ।

उपर्युक्त ८ गुणों से युक्त मोती जो व्यक्ति धारण करता है उसकी आयु एवं लक्ष्मी का अभिवर्धन होता है । समस्त पापों का नाश होता है । जिसके शरीर पर घन गुण युक्त (वज़नदार) मोती आभूषण रूप में रहता है

अर्थात् जो व्यक्ति अच्छा वजनदार बड़ा मोती पहिनता है उसके यहाँ की लक्ष्मी इतनी चञ्चला होते हुये भी स्थिर रूप से निवास करती है।

जयपुर एवं काशी आदि स्थानों के जौहरी मोती के छः गुण मुख्य रूप में मानते हैं। (१) स्निग्ध, (२) निर्मल, (३) गोल (४) शशिकांत, (५) बालवेध (बारीक छेदवाला), (६) सरस।

इन ६ गुणों से युक्त मोती के धारण करने से सात जन्मों के पापों से छुटकारा मिलता है। निर्बलता एवं क्षय रोग नष्ट होता है। बल और बुद्धि में तेजस्विता आती है और वह व्यक्ति राजकीय प्रशासक होता है।

मोती की छाया

चतुर्धा मौक्तिके छाया पीता च मधुरा सिता।
नीला चैव समाख्याता रत्नतत्त्वपरीक्षकैः॥
पीता लक्ष्मीप्रदाच्छाया मधुरा बुद्धिवर्धिनी।
शुक्ला यशस्करीच्छाया नीला सौभाग्यदायिनी॥
सितच्छाया भवेद् विप्रः क्षत्रियश्चार्करश्मिवान्।
पीतच्छाया भवेद्वैश्यः शूद्रः कृष्णरुचिर्मतः॥

जिस रत्न को जरा दूर से देखनेपर जो चमक दिखाई देती है उसे 'दीप्ति' 'आभा' या 'आब' कहा जाता है तथा जरा पास से देखनेपर चमक के साथ-साथ उस रत्न में से किंचित् लाल, पीले, नीले या बिलकुल सफेद रंग 'झाईं' दिखाई देती है उसे 'छाया' कहते हैं।

रत्नशास्त्र के विद्वानों के मत से मोती में चार प्रकार की छाया होती है। पीली, लाल, सफेद एवं नीलवर्ण की। पीत छायायुक्त मोती के धारण से लक्ष्मी प्राप्त होती है।

अरुणवर्ण युक्त छाया वाले मोती से बुद्धि बढ़ती है।

श्वेत छायायुक्त मोती से यश प्राप्त होता है एवं नील छायायुक्त मोती से सौभाग्य मिलता है।

श्वेत छाया वाला मोती 'विप्रमुक्ता' और लाल छाया वाला 'क्षत्रियमुक्ता' पीत छाया वाला 'वैश्यमुक्ता' एवं नील या कृष्ण छाया वाला मोती 'शूद्रमुक्ता' कहलाता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति वाले व्यक्तियों को क्रमशः अपने-अपने वर्ण वाले मोतियों को धारण करना चाहिये।

मोती के गुणधर्म—

मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम्।
(भावप्रकाश)

मौक्तिकं सुमधुरं सुशीतलं दृष्टिरोगशमनं विषापहम् ।
राजयक्ष्मपरिकोपनाशनं क्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्धनम् ॥
कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमान्द्यनुत् ।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥
मुक्तानां हारविधृति-र्दाहपित्तविनाशिनी ।
कान्तिहर्षं नेत्रसुखं ददातीति प्रकीर्तितम् ॥
(निघण्टु रत्नाकर)

मुक्ताभस्म अथवा पिष्टी शीतल (ठण्डक = Cold) वृष्य (शुक्रस्रुतिकरं किंचित्, किंचित् शुक्रविवर्धनम् । स्रुति वृद्धिकरं किंचित् त्रिविधं वृष्य मुच्यते ॥) कुछ द्रव्य वीर्य की स्रुति को बढ़ाते हैं, कुछ द्रव्य वीर्य को बढ़ाते हैं, कुछ द्रव्य स्रुति और वृद्धि दोनों कार्य करते हैं। मुक्ताभस्म स्रुति और वृद्धि दोनों कार्य करने में समर्थ है। मुकव्वी बाह = Aphrodisiac), चक्षुष्य (चक्षुषे हितम् = चक्षुष्यम् = चक्षु के लिये हितकर। मुकव्वी बसर, चक्षुष्य द्रव्य शीतवीर्य और उष्णवीर्य दोनों होते हैं। मुक्ताभस्म शीतवीर्य और उष्ण वीर्य दोनों गुणवाली है) और बल एवं पुष्टिकारक (शरीर में ताकत और परिपुष्टता प्रदान करती है = General Tonic)। आयुष्य—(वयस्थापक = उमर को कायम रखनेवाली है। मधुर रस प्रधान है (मधुर रस प्रधान द्रव्य स्निग्ध, शीतल और गुरु होते हैं। मधुर रस द्रव्यों का कर्मबृंहण, आयुष्य और बल्य होता है।) उत्कृष्ट शिशिर (शीत वीर्य) है। दीपन (भूख बढ़ानेवाली=मुश्त ही Stomachics) है। दाहशामक (शरीर के भीतर की तथा बाहर की दाह = जलन = गर्मी को शान्त। करती है। मुबर्रिद या मुत्फी = Refrigerant) है। वर्ण्य (शरीर की अवभासनी त्वचा में स्थित भ्राजक पित्त की विकृति को दूर करती) है। जीर्ण ज्वर—(पुराने बुखार = Chronic fever) नाशक है। अस्थि और दाँतों की वृद्धि करती है। हृद्य—(हृदय में अवलम्बक कफ और ओज को बढ़ाती है। हृदय की गति में स्थिरता एवं स्थायी शक्ति प्रदायक Cardiac Tonic) है।

मेहहर—(मूत्र में गंदापन और मूत्र की अधिक मात्रा का आना प्रमेह कहा जाता है। अम्‌राज बौल = Anomalies of urinary secretion) को नष्ट करता) है। मेध्य (मेधायै हितं मेध्यम्। मेधा = बुद्धि के लिए हितकर। बुद्धि हितकारी द्रव्य प्रायः शीतवीर्य और मधुर विपाकी होते हैं—अतएव मुक्ता भी मधुर विपाकी है। मुक्ताभस्म मेधा = बुद्धि की संग्राहक शक्ति =

Power of acuisition, धृति शक्ति = Power of retention और स्मृति शक्ति Power of recollection—इन तीनों शक्तियों के लिये हितकारक है। दन्तोद्भेदज्वरापह—(दाँत निकलने की अवस्था = Teething या Dentilion में होने वाले ज्वर को नष्ट करती) है। क्षयापह—(शरीर अथवा शरीर के किसी अंग या प्रत्यंग का दुर्बल या निष्क्रिय = Atrophy होते जाना। धातूनां क्षयः = ह्रासः, अनुलोम गत्या प्रतिलोम गत्या च। लागरी, हुजाल को नष्ट करती)। श्वासकास परिकोप नाशक—(दमा, दमकशी = Asthma और कास = खाँसी—Cough Tussis and Bronchitis रोगों को नष्ट करता) है। अस्थिशोषशामक (हड्डियों का सूखना = Osteo—Porosis नाशक) है। विषापह (मुक्ताभस्म विषनाशक = तिरियाक़ या फ़ाद जहर = Poison's anti dote होती) है। दृष्टिरोगशामक (देखने की शक्ति का ह्रास = जहाव बसर = Ablepsia को शान्त करती) है। राजयक्ष्मा परिकोपनाशक—(शोष, क्षय = दिक्, तपेदिक=Pthisis, Pulmonery Tuberculosis, Consumption Tabes रोग की परिकोपावस्था को नष्ट करती)। इसके अलावा मोती के धारण अथवा मोतियों की माला के धारण करने से पित्त एवं दाह शान्त होता है तथा मुख पर कान्ति, हर्ष उत्पन्न होता है—नेत्रों को सुख प्राप्त होता है।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म

मोती का कुश्ता (भस्म या पिष्टी) सर्द गरम (शीतोष्ण) है कुछ विद्वानों ने इसे सर्द खुश्क (शीत रूक्ष) भी लिखा है। यह दूसरे दर्जे में सर्द (शीत) ओर दूसरे दर्जे में ही उष्ण (गरम) तथा खुश्क भी होती है।

मोती की भस्म के सेवन से फ़रहत (खुशी) और लताफत (उल्लास) पैदा होती है। आज़ा (प्रत्यङ्गों) मुख्यतः आजाये रईसा (शिश्नाङ्ग) पर प्रभाव पड़ता है। इसकी भस्म कवी (पौष्टिक) और रूह (ओज) अभिवर्धक है। मुँह से खून आने में मुफीद है सफरावी व खूनी (पित्तज एवं रक्तज) अतिसार बन्द होता है। हैज (मासिक धर्म) सम्बन्धी बीमारियों में मुफीद है। जिगर (यकृत्) दिल (हृदय) गुर्दे (वृक्क) एवं मेदे की बीमारियों में लाभदायक है। मोती का सुर्मा आँखों से पानी चलना (नेत्रस्राव=Epiphora, Lachrimation), जाला (सिराजाल = Panus = नेत्र के श्वेत पटल में होनेवाला रोग), माँडा (फूला=शुक्ल=कनीनिका का अपारदर्शक श्वेत चिह्न= Opacity of the cornea), नाखूना (शुक्लार्म = Pterygium) आदि रोगों में निहायत ही मुफीद है।

मुक्ता शोधन—

(१) एक शराव (चाइना क्ले = चीनी मिट्टी के प्याले) में मोतियों को रखकर—सुधोदक (चूने का पानी = Lime water) उस प्याले में भर दें। अब इस प्याले को लोह त्रिपादिका (लोहे की तिपाई = Tripod) पर रखकर नीचे सुरा प्रदीप (Spirit lamp) के द्वारा लगातार २-३ घण्टे तक आँच देने से मोती का भली-भाँति शोधन हो जाता है।

(२) मोतियों को एक कपड़े की पोटली में बाँधकर दोला यंत्र में जयन्ती (Sesbania aegyptica, N. O. शिम्बी वर्ग = Leguminosae के अन्तर्गत अपराजितादि उपवर्ग = Papilionaceae) के पत्तों का स्वरस डालकर पोटली को लटकाकर लगातार ३ घण्टे तक स्वेदन करने से मोती का शोधन हो जाता है।

(३) मोतियों को एक कपड़े की पोटली में बाँधकर दोला यंत्र में अगस्त्य (Sesbania Grandifloria, N. O. शिम्बी वर्ग = Leguminosae के अन्तर्गत अपराजितादि उपवर्ग = Popilionaceae) पत्र स्वरस डालकर लोह त्रिपादिका (लोहे की तिपाई = Tripod) पर रखें और लगातार ३ घण्टे की आँच देकर स्वेदन करें। मोती का शोधन हो जाता है।

भस्मीकरण—

(१) पूर्व कथित विधियों द्वारा विशोधित मोतियों को खरल में डालकर इसमें गुलाब का अर्क डालकर मर्दन करें और शराव सम्पुट में रखकर लघु पुट में फूँकें। स्वांगशीत होने पर सम्पुट से बाहर निकाल कर पुनः अर्क गुलाब में मर्दन करके शराव सम्पुट में बन्द करें और लघुपुट में फूँक दें। यह विधि तीन बार करने से मुक्ताभस्म अतीव उत्तम प्रस्तुत हो जाती है।

(२) विशोधित मोतियों को एक खरल में डालकर गोदुग्ध के साथ भली-भाँति मर्दन करें और शराव सम्पुट में बन्द करके लघु पुट में तीन बार फूँक दें। मुक्ता भस्म चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण की प्रस्तुत हो जाती है।

आमयिक प्रयोग—

(१) मुक्तादिचूर्ण—(हिक्काश्वास एवं नेत्र रोगों पर)

मुक्ताप्रवाल-वैडूर्यशङ्खस्फटिकमंजनम् ।
ससारगंधकाचार्क-सूक्ष्मैला लवणद्वयम् ॥
ताम्रायोरजसी रूप्यं सौगन्धिक-कशेरुकम् ।
जातीफलं शणाद्बीजमपामार्गस्य तण्डुलाः ॥
एषां पाणितलं चूर्णं तुल्यानां क्षौद्रसर्पिषा ।

हिक्कां श्वासं च कासं च लीढमाशु नियच्छति ॥
अञ्जनात्तिमिरं काचं नीलिकां पुष्पकं तमः ।
पैल्यं कण्डुमभिष्यन्दमर्मं चैव प्रणाशयेत् ॥

(चरक संहिता-चि० अ० १७, हिक्काश्वास)

मोती, प्रवाल, वैडूर्य्य (लहसनिया = Cat's-eye), शंख, स्फटिक (बिल्लौर = Qwartz), अञ्जन (सुरमा = Black Antimony), चन्दन, काच (Glass = Glesum = A kind of Qwartz = प्राकृतिक काँच), मदार के मूल की छाल, छोटी इलायची, सेंधानमक, कालानमक, ताम्र (Copper) लोह, चाँदी, सौगन्धिक अनेक विद्वान् सौगन्धिक शब्द से कमल का एक भेद ही मानते हैं। परन्तु अग्निपुराण के आधार पर सौगन्धिक' माणिक्य = Ruby का एक प्रकार माना गया है जिसमें आधुनिक वैज्ञानिकों से सम्मत Spinal ruby मान सकते हैं । जब कि चरकसंहिताकार ने इस 'मुक्तादि चूर्ण' में अन्य रत्नों का भी समावेश किया है—तब सौगन्धिक शब्द से कमल का ग्रहण न करके माणिक्य के एक प्रकार का ग्रहण करना प्रकरणानुसार युक्तिसंगत ही होगा। तथा आचार्यों ने माणिक्य को "वातपित्तहरं परम्—एवं—कफ प्रशमनं स्निग्धम्" भी माना है। अर्थात् माणिक्य तीनों दोषों को शान्त करने में कमल की अपेक्षा उत्कृष्ट है। विद्वज्जनों को इस दिशा में विचार करना चाहिये। कसेरु, जायफल, सन के बीज और अपामार्ग के बीज (निष्तुप = छिलके निकाले हुये)—इन २० द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर विधानपूर्वक चूर्ण बना लें। इस मुक्तादि चूर्ण का मधु और घृतके साथ सेवन करने से हिक्का, श्वास-कास रोग नष्ट होते हैं। इस योग का नेत्रों में अञ्जन करने से तिमिर (Amaurosis नामक नेत्र रोग), काच (तिमिर की उत्तरावस्था में एक विशेष लक्षणात्मक राग युक्त प्रकार) नीलिका (लिङ्गनाश= नीलिका काच=तिमिर की दूसरी अवस्था = मोतिया बिन्द=Cataract), पुष्पक (फूला = Opacity of the cornia), पैल्य (अपरिक्लिन्न वर्त्म = पलक का ढीला हो जाना परन्तु अश्रुस्राव न होना = Ptosis, Blepharoptosis का एक भेद), नेत्र कण्डू (आँखों की खाज), नेत्राभिष्यन्द (Conjuctivitis) और अर्म (नाखूना = Pterygium) आदि रोग नष्ट होते हैं।

(२) हिक्का नाशक योग—

कटुकागैरिकाभ्यां च मुक्ताभस्म तथैव च ।
बीजपूरस्य तोयेन ताम्रं तद्वत्समाक्षिकम् ॥

(रसचन्द्रिका, हिक्कारोगाधि०)

कुटकी और गेरु (गैरिक = स्वर्ण गैरिक = Hametite) एवं मुक्ताभस्म

को समान मात्रा में मिलाकर बिजौरे नीबू के रस के साथ अथवा मधु के साथ ४ रत्ती से २ माषा पर्यन्त लेने से हिक्का रोग नष्ट होता है। ताम्रभस्म १ से ३ रत्ती पर्यन्त मधु के साथ सेवन करने से भी हिक्का रोग नष्ट होता है।

(३) रक्तातिसार—

मुक्ताभस्मेति नामेदं दोषं दृष्ट्वा प्रकल्पयेत्।
गुञ्जार्धमेकगुञ्जं वा कर्पूरेण सुवासितम् ॥
जातीफलादि-संयुक्तं रहस्यं परमं मतम्।

(बृहन्निघण्टु रत्नाकर अतिसाराधि०, वैद्यमनोरमा रक्तातिसार)

वातादि दोषों पर पूर्ण ध्यान देते हुये ½ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त मात्रा में मुक्ता भस्म लेकर उसमें थोड़ा कपूर मिलाकर और फिर जायफल का चूर्ण मिला लें, मधु के साथ सेवन करने से सान्निपातिक अतिसार एवं रक्तातिसार रोग नष्ट होते हैं।

(४) दन्तोद्भेदजन्य ज्वर—

मुक्ताभस्म १ रत्ती, रससिन्दूर २ रत्ती = मिश्रित ८ मात्रा को प्रतिदिन प्रातः सायं २ मात्रा मधु के साथ चटाने से बच्चों के दन्तोद्गमन के समय आ जाने वाला ज्वर शीघ्र ही नष्ट होता है।

(५) फुफ्फुस दौर्बल्य—

प्रवाल भस्म ३ रत्ती के साथ मुक्ताभस्म १ रत्ती = मिश्रित = २ मात्रा, प्रातः सायं मधु के साथ सेवन करने से चिरकालिक फुफ्फुस दौर्बल्य (Chronic atrophy of lung's tissues=फुफ्फुस के तन्तुओं का चिरकालिक क्षय) नष्ट होता है।

(६) क्षय रोग—

शु० पारद, शु० गंधक समभाग लेकर कज्जली बनालें और इसमें शु० पारद के बराबर प्रवाल भस्म और इतनी ही मात्रा में मुक्ताभस्म मिलाकर बिजौरे नीबू के रस की भावना देकर लघु पुट में १ बार फूँक दें। २ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन २ मास पर्यन्त सेवन करते रहने से भयंकर क्षय (शरीर के अंग अथवा प्रत्यंगों का दौर्बल्य = Atrophy of the any organ) नष्ट होता है।

(७) मुक्तापञ्चामृतरस—

मुक्ताप्रवालखुरबंगककम्बुशुक्ति-भूतिं वसूदधिदृगिन्दुसुधांशुभागाम्।
इक्षोरसेन सुरभेः पयसा विदारी-कन्यावरीसुरसहंसपदीरसैश्च ॥
सम्मर्द्य यामयुगलं च वनोपलाभिः,
दद्यात् पुटानि मृदुलानि च पञ्च पञ्च।

पञ्चामृतं रसविभुं भिषजा प्रयुज्य,
गुञ्जाचतुष्टयमितं चपलारजश्च ॥
पात्रे निधाय चिरसूतपयस्विनीनाम्,
दुग्धेन च प्रपिबतः खलु चाल्पभोक्तुः ।
जीर्णज्वरः क्षयमियादथ सर्वरोगाः,
स्वीयानुपानकलिताश्च शमं प्रयान्ति ॥

(बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, जीर्ण ज्वराधे)

मुक्ताभस्म ८ भाग, प्रवालभस्म ४ भाग, खुरक वंग भस्म २ भाग, शंख-भस्म १ भाग और शुक्ति भस्म १ भाग—इन पाँचो द्रव्यों को खरल में लेकर ईख के रस में ६ घन्टे तक मर्दन करके गोला बना लें। इस गोले को शराव-सम्पुट में बन्द करके लघु पुट में फूँक दें। ईख के रस के समान ही गोदुग्ध, विदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावरी, तुलसी और हंसपदी (हंसराज=Adiantum Lumilatum, N. O. हंसराजादि वर्ग = Polypodiaceae)—इन द्रव्यों के रस में ५-५ बार क्रमशः भावना देकर ५-५ बार लघु पुट में फूक दें।

इस 'प्रवाल पञ्चामृत रस' को पिप्पली चूर्ण में ४ रत्ती की मात्रा में मिलाकर चिरकालिक प्रसुता गौ के दुग्ध के साथ सेवन करने एवं प्रतिदिन स्वल्पाहार करते रहने से जीर्ण ज्वर पुराना बुखार = Chronic fever) और क्षय (शरीर के अंग प्रत्यंगों का दुर्बल होना = Atrophy) आदि रोग नष्ट होते हैं।

रसतरंगिणीकार ने इस योग का उपर्युक्त विधि से ही उल्लेख किया है। केवल छन्द मात्र बदल दिया है।

(८) चैतन्योदयरसः

हेमाभ्रं मौक्तिकं सूतं गन्धकं जतुकायसी।
तुगाक्षीरं शशाङ्कञ्च भावयित्वा वराम्भसा ॥
रक्तिमात्रा वटीः कृत्वाच्छायायां परिशोषयेत्।
शतावर्य्यम्भसा शान्त्यै तत्त्वोन्मादस्य पाययेत् ॥

(आयुर्वेदप्रकाश)

पारद गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें और इस कज्जली-में स्वर्ण, अभ्रक, मोती, लोह और वंशलोचन भस्म समान मात्रा में मिलाकर शिलाजीत और कपूर समान मात्रा में मिलावें और त्रिफला क्वाथसे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। गोलियों को छाया में सुखा लें। मात्रानुसार शतावरी क्वाथ के साथ इस रस के सेवन से तत्त्वोन्माद नष्ट होता है।

(९) चिन्तामणिरसः

हाटकं रजतं ताम्रं मुक्ता गन्धकपारदौ ।
त्रिकटु कुनटी चैव कस्तूरी च पृथक् पृथक् ॥
जलेन वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
चिन्तामणिरसो ह्येष ज्वराद्यानां निकृन्तनः ॥ (रसेन्द्रसारसंग्रह)

पारद गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली बनालें। इस कज्जली में स्वर्ण, चांदी, ताम्र और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर मिलावें। इसके पश्चात त्रिकुटा, मैनसिल और कस्तूरी भी समान मात्रा में लेकर मिला लें। इन समस्त द्रव्यों को पानी से घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बना लें।

यह रस ८ प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है।

(१०) स्वर्णादिगुटिका

स्वर्णं रूप्यार्कमुक्तार्को वार्धिफेनवरामृताः ।
शङ्खव्योष-निशातुत्थप्रवालं मधुयष्टिका ॥
सर्वं च क्लीतकाम्भोभिः प्रपिष्टं वटिका हरेत् ।
अशेषनयनातङ्कांस्तदुपद्रवदुस्तरान् ॥ (रसकामधेनु)

स्वर्ण, चांदी, ताम्र और मोती भस्म, मदार मूलत्वक् चूर्ण, समुद्रफेन, त्रिफला, गुडूचि, सोंठ, पीपल, हल्दी और मुलेठी का चूर्ण, तुत्थभस्म, शंखभस्म, और प्रवालभस्म–इन समस्त औषधों को समान मात्रा में लेकर मुलेठी के क्वाथ की भावना दें और छोटी २ गोलियां बना लें। इस रस के सेवन से समस्त उपद्रवयुक्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

(११) हिक्कान्तकरसः

(सुवर्णभस्मादि योगः)

हेममुक्तार्ककान्तानां भस्म वल्लमितं वरम् ।
वीजपूररसक्षौद्रसौवर्चलसमन्वितम् ॥
हन्ति हिक्काशतं सत्यमेकमात्राह्ययत्नतः ।
का कथा पञ्चहिक्कानां हरणे सूत उच्यते ॥

(रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका)

स्वर्ण, मोती, ताम्र, और कान्त लोह भस्म १–१ भाग लेकर खरल करें। इस रस को बिजौरे नींबू के रस और काले नमक के साथ सेवन करने से समस्त प्रकार की हिचकी एक ही मात्रा के सेवन से नष्ट हो जाती है।

(१२) महाकल्याणवटी

हेमाभ्रञ्च रसं गन्धमयो मौक्तिकमेव च ।
धात्रीरसेन सम्मर्द्य गुञ्जामात्रां वटीं चरेत् ॥

भक्षयेत्प्रातरुत्थाय तिलक्षोदमधुप्लुताम् ।
सिताक्षौद्रयुतां वापि नवनीतेन वा सह ॥
अयथापानजा रोगा वातजाः कफपित्तजाः ।
गदाः सर्वे विनश्यन्ति ध्रुवमस्य निषेवणात् ॥ (भैषज्यरत्नावली)

पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार करलें। इस कज्जली में स्वर्ण, अभ्रक; लोह और मोतीभस्म समान मात्रा में लेकर मिला लें। अब आंवले के रस में घोट कर १–१ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन–मधु और तिल पिष्टी के साथ अथवा मधु और शर्करा के साथ अथवा मक्खन के साथ इस रस के सेवन करने से वातज, कफज और पित्तज सुरापान जन्य रोग निश्चय ही नष्ट होते हैं।

(१३) मेहकेसरी रसः

(प्रमेहगजकेसरी रसः)

मृतवङ्गं सुवर्णञ्च कान्तलौहञ्च पारदम् ।
मुक्ता गुडत्वचञ्चैव सूक्ष्मैलापत्रकेशरम् ॥
समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत् ।
द्विमाषां वटिकां खादेद् दुग्धान्न प्रपिबेत्ततः ॥
प्रमेहं नाशयत्याशु केशरी करिणं यथा ।
शुक्रप्रवाहं शमयेत् त्रिरात्रान्नात्र संशयः ॥
चिरजातं प्रवाहञ्च मधुमेहञ्च नाशयेत् ॥

(रसराजसुन्दर, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसचन्द्रिका, रसेन्द्रचिन्तामणि, भैषज्यरत्नावली)

वंग, स्वर्ण, कान्तलोह, पारद और मोतीभस्म, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर के चूर्ण, इन सबों को समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस में घोटे और २–२ माशा की गोलियां बना लें।

अनुपान—इस रस के सेवन के बाद दूध भात खाना चाहिये।

उपयोग—यह रस पुराना प्रमेह, मधुमेह और स्वप्नदोषादि तीन दिन में ही शान्त करता है।

(१४) श्वासकास चिन्तामणिरसः

पारदं माक्षिकं स्वर्णसमांशं परिकल्पयेत् ।
पारदार्द्धं मौक्तिकञ्च सूताद द्विगुणगन्धकम् ॥
अभ्रञ्चैव तथा योज्यंव्योम्नो द्विगुणलौहकम् ।
कण्टकारीरसेनैव छागीदुग्धेन च पृथक् ॥

यष्टिमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च ।
भावयेत् सप्तवारञ्च द्विगुञ्जां वटिकां भजेत् ॥
पिप्पली-मधुसंयुक्तां श्वासकासविमर्दिनीम् ।
(रसचन्द्रिका, रसराजसुन्दर, रसेन्द्रसारसंग्रह)

शुद्ध पारद, स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा स्वर्ण भस्म १-१ भाग, मोती भस्म ½ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग, लोह भस्म ४ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली निर्माण कर लें। तत्पश्चात् अन्य औषधियों का सम्मिश्रण करके कटेली स्वरस, बकरी दुग्ध, मुलेठी क्वाथ एवं पान के रस की ७-७ भावना दें। २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—पिप्पली चूर्ण एवं मधु के साथ सेवन करें। श्वास कास की परमोत्कृष्ट औषधि है ।

(१५) श्लेष्मान्तक रसः

अभ्रकं रससिन्दूरं शङ्खभस्म च मौक्तिकम् ।
एकभाग-द्वित्रिभागा ह्यर्धभागं च मौक्तिकम् ॥
कर्चूरं मौक्तिकार्धं स्यात् त्रिफला कर्षसम्मिता ।
सर्वं सुखल्वे सम्मर्द्य दिनं सिंहास्यतोयतः ॥
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा रक्तिकार्धप्रमाणतः ।
आर्द्रकस्य रसेनैव मधुना सह लेहयेत् ॥
श्लेष्मोल्बणं वह्निमान्द्यं शूलं सपरिमाणजम् ।
श्लेष्मान्तको रसो नाम विनिहन्त्यनुपानतः ॥

अभ्रकभस्म १ भाग, रस सिन्दूर २ भाग, शंखभस्म ३ भाग, मोतीभस्म ½ भाग, कचूर चूर्ण ¼ भाग, त्रिफला चूर्ण १ भाग। इन सब को परस्पर मिलाकर अडूसे के रस में खूब घोटें। पश्चात् आधी रत्ती की गोली बनावें और छाया में सुखा लें।

सेवन—अद्रक रस या मधु के साथ सेवन करने से कफज अग्निमांद्य और परिणामशूल विनाश होता है।

(१६) सर्वेश्वर रसः

स्वर्णं रौप्यं मौक्तिकञ्च विशुद्धञ्च शिलाजतु ।
लौहमभ्रं तथा ताप्यं मधुयष्टी च पिप्पली ॥
मरिचं विश्वकञ्चेति सर्वमेकत्र कारयेत् ।
विमर्द्य प्रहरं यत्नात् कज्जलाकृतिसन्निभम् ॥ (भैषज्यरत्नावली)

स्वर्ण, चांदी, मोती, लोह, अभ्रक और स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा मुलेठी, पीपल, काली मिरच और सोंठ का चूर्ण, शिलाजीत समान मात्रा में लेकर घोटें

और श्वेत तथा कृष्ण भृङ्गराज के स्वरस की भावना दें। प्रगाढ़ हो जाने पर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। यह रस वातज, पित्तज एवं कफज प्रमेहों को नष्ट करता है। इसके अलावा कष्टसाध्य मधुमेह तक को नष्ट करता है।

(१७) मृगाङ्करसः
(हेममृगाङ्करसः)

रसभस्म स्वर्णभस्म निष्कं निष्कं प्रकल्पयेत्।
शङ्खगन्धकमुक्तानां द्वौ द्वौ निष्कौ तु चूर्णयेत्॥
मुक्ताभावे वराटी वा रसपादं च टंकणम्।
वह्न्यारनाल-क्वाथेन मर्दयेत् प्रहरद्वयम्॥
तद्गोलकं विशोष्याथ भाण्डे लवणपूरिते।
पचेद्यामचतुष्कञ्च मृगाङ्कोऽयं महारसः॥
रोगराजनिवृत्त्यर्थं चतुर्गुञ्जामितं घृतैः।
दातव्यं मरिचैः सार्धं पिप्पली-मधुनापि वा॥ (रसरत्नाकर)

पारदभस्म और स्वर्णभस्म १-१ निष्क, शंखभस्म, शुद्ध गन्धक और मोतीभस्म २-२ निष्क, सुहागा भस्म ¼ निष्क। इन सबों को मिलाकर चीता-मूल के क्वाथ और कांजी में घोटकर गोला बना लें। इस गोले को लवण से भरी हुई हांडी के मध्य में रखकर पाक करें। स्वांग शीतल होने पर औषधि द्रव्य निकाल कर रख लें।

सेवन—काली मिर्च और घृत के साथ अथवा मधु और पीपल चूर्ण के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा नष्ट होता है।

(१८) मृगाङ्क रसः

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत्।
गन्धकञ्च समं तेन रसतुल्यन्तु टंकणम्॥
तत्सर्वं गोलकं कृत्वा काञ्जिकेन च पेषयेत्।
भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम्॥
मृगांकसंज्ञको ज्ञेयो राजयक्ष्मनिकृन्तनः।
गुञ्जाचतुष्टयञ्चास्य मरिचैः सह भक्षयेत्॥
पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना सह लेहयेत्।
वृन्ताकबिल्वतैलानि कारवेल्लञ्च वर्जयेत्॥
स्त्रियं परिहरेद् दूरं कोपञ्चापि विवर्जयेत्॥

(रससराजसुन्दर, रसकामधेनु, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसचन्द्रिका, बृहद्योगतरंगिणी, योगरत्नाकर, योगतरंगिणी, भैषज्यरत्नावली)

पारद एक भाग, स्वर्णभस्म एक भाग, मोतीभस्म दो भाग, गन्धक दो

भाग, सुहागाभस्म एक भाग, ले लें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य भस्मों को डालें और कांजी से घोटकर एक गोला बना लें। इस गोले को शरावसम्पुट करके नमक से भरी हुई हांडी के मध्य में रखें और ४ प्रहर तक पाक करें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर पीस लें।

सेवन—४ रत्ती की मात्रा में मरिच चूर्ण के साथ लें। अथवा १० पीपल के चूर्ण और मधु के साथ चाटें।

उपयोग—यह रस प्रबल राजयक्ष्मा नाशक है।

सावधान—बैंगन, बेल, तेल, करेला तथा स्त्री सम्भोग का सेवन न करें। इसके आलावा क्रोध भी न करें।

(१६) मृगाङ्करसः

रसवलितपनीयं योजयेत्तुल्यभागं, तदनु युगलभागं मौक्तिकानां शुभानाम् ॥
यवजचरणभागं मर्दयेत्सर्वमेतद् दिनमपि तुषवारा गोलकं लव्वमत्रे ॥
विधाय मुद्रां विदधीत भाण्डे चुल्ल्यां समुद्रे लवणेन पूर्णे ।
दिनं पचेद्वातु मृगाङ्कनामा क्षयाग्निमान्द्यग्रहणीविकारे ॥
योज्यः सदावह्निजसर्पिषा वा कृष्णामधुभ्यां सततं त्रिगुञ्जम् ।
वर्ज्यं सदा पित्तकरं हि वस्तु लोकेशवत्पथ्यविधिर्निरुक्तः ॥

(बृहन्निघण्टु रत्नाकर क्षयाधिकार)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, प्रत्येक १–१ भाग, तदनुसार मोती भस्म २ भाग, यवक्षार ¼ भाग–इन सबों को लेकर घोटें और कांजी से मर्दन कर गोला बना लें। इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द कर दें। अब इस शरावसम्पुट को एक नमक से पूरित हांडी में नमक के मध्य में रखें और एक दिन पर्यन्त चूल्हे पर रख कर पकावें। हांडी के स्वांग शीतल होने पर औषध निकाल लें और सुरक्षित रख दें। इसे मृगांक रस कहते हैं।

सेवन—३ रत्ती की मात्रा में पीपल चूर्ण अथवा घृत या पीपल चूर्ण और मधु के साथ सेवन करें।

उपयोग—क्षय, अग्निमांद्य, एवं संग्रहणी में करें।

निषेध—इस रस के सेवन काल में पित्तवर्द्धक जितने भी आहार विहार हैं वे सब वर्जित हैं।

(२०) वसन्तमालती रस (सुवर्णवसन्तमालतीरस)

स्वर्णं मुक्ता दरदमरिचं भागवृद्धया प्रदिष्टं
खर्परं प्रथममखिलं मर्दयेत् म्रक्षणेन ।
यावत्स्नेहो व्रजति विलयं निम्बुनीरेण तावद्
गुञ्जाद्वन्द्वं मधु-चपलया मालतीप्राग्वसन्तः ॥

सेवितोऽयं हरेत्तूर्णं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ।
व्याधीनन्यांश्च कासादीन् प्रदीप्तं कुरुतेऽनलम् ॥

(योगतरंगिणी, तरंग २७ रसचन्द्रिका, ज्वराधिकार, भैषज्य रत्नावली, राजयक्ष्माधिकार)

स्वर्णभस्म १ भाग, मोतीभस्म २ भाग, शुद्धहिंगुल ३ भाग, इन सबको मिलाकर मक्खन से घोटें । साथ ही साथ नींबू रस से भी घोटते जावें । घोटते २ इतना घोटें कि मक्खन की स्निग्धता नष्ट हो जावे अब इसे सुरक्षित रख दें ।

सेवन—२ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करें ।

उपयोग—यह रस अग्नि को प्रदीप्त करते हुए जीर्ण ज्वर एवं कास का नाश करता है ।

(२१) हंसपोटलीरसः

रसगन्धकमुक्तानां विषस्यैकं पलं भवेत् ।
तीक्ष्णतुत्थकयोश्चैकं पलं तत्सुरसारसैः ॥
विष्णुक्रान्तावह्निवह्निहलीभृङ्गैर्विमर्दयेत् ।
गोलं संस्वेदयेदस्य मन्दाग्नौ चरणांशकम् ।
विषं दग्धकपर्दानां चूर्णं तुल्यं नियोजयेत् ।
आर्द्रजम्बीरनीरेण पिष्टं स्याद्धंसपोटलिः ॥
सोषणो वा समधुको माषोऽस्य ग्रहणीगदम् ।
अतिसारं पाण्डुरोगं गुल्मं कार्श्यं ध्रुवं जयेत् ॥
क्षौद्रेण विजयानिष्कमनुपानेन योजयेत् ।
उत्तमा विदिता चेयं क्रियाज्ञैर्हंसपोटली ॥

रस कामधेनु, ग्रहण्यधिकार

शुद्ध पारद ५ तोला (१ पल), शुद्ध गंधक ५ तोला, मोती भस्म ५ तोला, तीक्ष्ण लौह भस्म ५ तोला, तुत्थ भस्म ५ तोला लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना लें पश्चात इस कज्जली में शेष औषधियाँ मिलाकर तुलसी, कोयल, चित्रक, कलिहारी, भृंगराज (भंगरैया) के स्वरस की भावना दें । (भावना एक वस्तु की एक देना पर्याप्त होगा) और एक गोला बना लें । पश्चात शराव सम्पुट में रखकर मन्दाग्नि में संस्वेदन करें । सर्वांग शीतल होने पर निकाल लें । अब इस समस्त द्रव्य का चतुर्थांश अर्थात् ६। तोला शुद्ध वत्सनाभ (बच्छनाग) चूर्ण और २५ तोले कपर्दिका भस्म मिलाकर अद्रक और जम्भीरी नीबू की क्रमशः भावना देकर सुखा लें ।

सेवन विधि—काली मिरच और मधु के साथ एक माशा की मात्रा में सेवन करने से ग्रहणी, पाण्डु, गुल्म और अतिसार पर निश्चय से विजय होती है।

अनुपान—औषध सेवन करनेके पश्चात (२ माशा से लेकर ६ माशा तक) भांग के चूर्ण में मधु मिलाकर सेवन करना चाहिये।

(२२) महावीररसः

निष्को द्वौ तुत्थभागस्य रसादेकं सुसंस्कृतात्।
निष्कं विषस्य द्वौ तीक्ष्णात् कर्षांशं गन्धमौक्तिकात्।
अग्निपर्णी-हरिलता-भृङ्गार्द्रसुरसारसैः।
मर्दितं लाङ्गलीकन्दप्रलिप्ते सम्पुटे पचेत्॥
अर्धपादं च पोटल्याः काकिन्यौ द्वे विषस्य च।
लिहेन्मरिचचूर्णं च मधुना पोटलीसमम्॥
क्षयग्रहण्यतीसारवह्निदौर्बल्यकासिनाम्।
पाण्डुगुल्मवतामेष महावीरो हितो रसः॥
अतिस्थूलस्य पूयासृक्कफानुद्वमतः क्षये।
न योजयेत् क्षीररसान् विरुद्धक्रमतस्त्वतः॥

(रसराज सुन्दर-राजयक्ष्माधिकार, रसरत्नसमुच्चयः अध्याय १४)

तुत्थ भस्म २ निष्क (१० माशा), शुद्ध पारद १ निष्क (५ माशा), शुद्ध वत्सनाभ (मीठा तेलिया) ५ माशा, लोह भस्म १० माशा, शुद्ध गन्धक और मोती भस्म प्रत्येक ½ कर्ष (१।–१। तोला) ले लें। सर्वप्रथम गन्धक, पारद की कज्जली बनाकर अन्य औषधियां भी कज्जली में मिला लें। अग्निपर्णी, विष्णुक्रान्ता, भृंगराज, अद्रक तथा तुलसी स्वरस की एक एक दिन भावना देकर गोला बना लें। इसके पश्चात लाँगली (कलिहारी) मूल का उस गोले पर प्रलेप करें और शराव सम्पुट में बन्द कर पाक करें। सर्वांग शीतल होनेपर औषध को निकालकर समस्त औषध का अर्धपाद (⅛ भाग) मृगांक पोटली रस और समस्त औषध से द्विगुण शुद्ध वत्सनाभ घोटकर रख लें।

सेवन विधि—काली मिरच के चूर्ण एवं मधु के साथ १ रत्ती से २ रत्ती की मात्रा में सेवन करें।

उपयोग—क्षय, संग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य, कास, पाण्डु और गुल्म में उपयोगी है।

निषेध—क्षय का रोगी यदि अत्यन्त स्थूल हो एवं वमन में रक्त, पूय अथवा कफ आता हो तो माँस रस एवं दुग्ध सेवन इस 'महावीर' औषध के अनुपान रूप में देना निषेध है।

(२३) वङ्गेश्वररसः

सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम् ।
हेम वङ्गश्च मुक्ता च ताप्यमेवं समं समम् ॥
सर्वेषां चूर्णितं कृत्वा कन्यारसविमर्दितम् ।
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः ॥
बृहद्वङ्गेश्वरो ह्येष रक्तमूत्रे प्रशस्यते ।
श्वेतमूत्रं बृहन्मूत्रं कृच्छ्रमूत्रं तथैव च ॥
सर्वप्रकारमेहांस्तु नाशयेदविकल्पतः ।
अग्निवृद्धिं वयोवृद्धिं कान्तिवृद्धिं करोति च ॥
क्षयरोगं निहन्त्याशु कासं पञ्चविधं तथा ।
कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥
शूलं श्वासं ज्वरं हिक्कां मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
क्रमेण शीलितो हन्ति वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥ (भैषज्यरत्नावली)

प्रथम पारद और गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें । इस कज्जली में लोह, अभ्रक, स्वर्ण, बंग और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान मात्रा में लेकर मिला लें और घृतकुमारी के रस की एक दिन भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें ।

उपयोग—यह रस रक्तभेद में बहुत लाभ करता है। इसके अलावा उदकभेद, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, क्षय, कास (पांचो प्रकार का), कुष्ठ (१८ प्रकार का) पाण्डु, हलीमक, शूल, श्वास, ज्वर, हिचकी, अग्निमांद्य, तथा अरुचि को यह रस नष्ट करता है । आयु तथा कान्तिवर्धक है ।

(२४) कुमुदेश्वरो रसः

सूतभस्मसमहेमभस्मकं मौक्तिकं च रसपादटङ्कणम् ।
गन्धमत्र कुरु सर्वतुल्यकं चूर्णितं तुषजलेन गोलकम् ॥
लेपयेन्मृदुमृदा विशोषितं पाचितं सिकतयन्त्रमध्यतः ।
बासरैकमथ शीतलीकृतश्चूर्णितो मरिचमाक्षिकैः प्लुतः ॥
भक्षितो हि कुमुदेश्वरो रसो राजयक्ष्मपरिशान्तिकारक ॥
(रसप्रकाशसुधाकर)

पारद, स्वर्ण और मोती भस्म ४-४ भाग, सुहागा, १ भाग गंधक १२ भाग, इन सबों को कांजी से घोटकर गोला बनालें। इस गोले पर कपड़ा लपेट कर मिट्टी का लेप करके सुखा लें और एक दिन बालुका यन्त्र में पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर पीस लें। मधु और काली मिरच के चूर्ण के साथ इस रस के सेवन से राजयक्ष्मा नष्ट होता है ।

(२५) कुमुदेश्वरी रसः

हेमभस्मरस-भस्मगंधकं मौक्तिकन्तु रसटङ्कणं तथा ।
तारकं गरुडसर्वतुल्यकं काञ्जिकेन परिमर्द्य गोलकम् ॥
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य शोषितं भाण्डके लवणगेऽथ पाचयेत् ।
एकरात्र मृदुसंपुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः ॥
वल्लमस्य मरिचैर्घृतान्वितै राजयक्ष्मपरिशान्तये पिबेत् ॥

(रसराजसुन्दर)

पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें । इस कज्जली में स्वर्ण भस्म, रस सिन्दूर, मोती भस्म, सुहागा भस्म, चांदी भस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में मिलावें और कांजी में घोट कर गोला बना लें । इस गोले पर कपड़मिट्टी करके नमक से भरी हुई हांडी के मध्य में रख कर एक रात्रि पर्यन्त पुटपाक करें । स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर पीस लें ।

इस रस को काली मिर्च के चूर्ण और घृत के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा का शमन होता है ।

(२६) कुमारकल्याणो रसः

सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमायो हेममाक्षिकम् ।
कन्यातोयेन संमर्द्य कुर्य्यान्मुद्गमिता वटीः ॥
वटिका वटिकार्द्धं वा वयोऽवस्थां विविच्य च ।
क्षीरेण सितया सार्द्धं बालेषु विनियोजयेत् ॥
कुमाराणां ज्वरं श्वासं वमनं पारिगर्भिकम् ।
ग्रहदोषांश्च निखिलान् स्तन्यस्याग्रहणं तथा ॥
कामलामतिसारञ्च कृशतां वह्निवैकृतम् ।
रसः कुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः ॥

(भैषज्य रत्नावली)

रस सिन्दूर, मोती, स्वर्ण, अभ्रक, लोह और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस की भावना देकर मूंग के बराबर गोलियां बना लें ।

सेवन—बालक की शरीर सम्पत्ति एवं आयु को ठीक २ ध्यान में रखते हुए १ गोली अथवा आधी गोली की मात्रा में दूध मिश्री के साथ सेवन करावें ।

उपयोग—यह रस ज्वर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक रोग, गुद दोष और

वे समस्त रोग जिनके कारण बालक माता का दूध नहीं पीता, कामला, अतिसार, दौर्बल्य तथा पचन सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है।

(२७) प्लीहान्तको रसः

मृतं शुल्वञ्च तारञ्च गगनायसमौक्तिकाः।
दरदं पुष्करं सूतं गन्धकं नवमं तथा॥
गुग्गलुस्त्रिकटु रास्ना तथा जैपालबीजकम्।
त्रिफला कटुका दन्ती देवदाली तु सैन्धवम्॥
त्रिवृता तु यवक्षारं वातारितैलमर्दितम्।
अष्टोदराणि पाण्डुत्वमानाहं विषमज्वरम्॥
अजीर्णमामञ्च कफं क्षयञ्च सर्वशूलकम्।
कासं श्वासञ्च शोथञ्च सर्वमाशु व्यपोहति॥
प्लीहान्तको रसो नाम प्लीहोदरविनाशनः॥

(भैषज्यरत्नावली)

ताम्र भस्म, चांदी भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, मोतीभस्म, हिंगुल (शुद्ध), पोहकरमूल, पारद, गन्धक, गूगल, सोंठ, मिरच, पीपल, रास्ना, जमालगोटा, त्रिफला, कुटकी, दन्तीमूल, देवदाली, सेंधा नमक, निशोथ और यवक्षार। इन सबों को समान मात्रा में ले लें। सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना लें और इस कज्जलीमें समस्त औषधों को डालकर एरण्ड तैल डालें और खूब घोटें। समस्त द्रव्य एकदिल हो जाने पर सुरक्षित रख दें।

यह रस आठ प्रकार के उदर रोग, पाण्डु, आनाह, विषम ज्वर, अजीर्ण, आम, कफ, क्षय, सब प्रकार के शूल, कास, श्वास, शोथ इन रोगों को नष्ट करता है। विशेषकर यह प्लीहान्तक रस, प्लीहोदर को अवश्य नष्ट करता है।

(२८) त्रैलोक्यमोहनो रसः

शुद्धसूतस्तथा गन्धो वङ्गभस्म शिलाजतुः।
मौक्तिकं च समं सर्वं शुष्कमादौ विमर्दयेत्॥
पाषाणभेदक्काथेन कुमारीस्वरसेन च।
मूर्वागुडूचीत्रिफलाकषायेण पृथक् पृथक्॥
दिनानि पञ्च सम्मर्द्य घर्मे संशोषयेत्ततः।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य मुखं तस्य विमुद्रयेत्॥
माषान्नविषचूर्णानां कल्केन भिषगुत्तमः।
संस्थाप्य वालुकायन्त्रे चतुर्यामं विपाचयेत्॥

चोपचीनीयचूर्णेन माषमानेन योजितः।
त्रैलोक्यमोहनो नाम्ना गुञ्जामात्रो रसोत्तमः।
पर्णखण्डेन दातव्यः प्रमेहमन्थनः परः॥

(रसराजसुन्दर)

पारद, गन्धक, वंग और मोती भस्म तथा शिलाजीत। इन सबों को समान मात्रा में लेकर पाषाण भेद, घृतकुमारी, मूर्वा, गुडूचि और त्रिफला के क्वाथ की अलग ५-५ भावना देकर सुखा लें और आतशी शीशी में भरकर शीशी के मुख को (उड़द का आटा, मीठा तेलिया का चूर्ण और पानीकी पिट्ठी बना कर) बन्द कर दें। अब शीशी को बालुका यंत्र द्वारा ४ पहर की आंच दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर पीस लें।

सेवन—चोपचीनी चूर्ण १ माशा और त्रैलोक्य मोहनरस १ रत्ती, पान के बीड़े के साथ सेवन करने से प्रमेह का नाश होता है।

(२९) त्रिपुरसुन्दरो रसः

सिन्दूरमभ्रन्त्वथ हेममाक्षिकं मुक्ताफलं हेम च तुल्यभागिकम्।
कन्याम्बुना मर्दय सप्तवासरान् गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विधेहि च॥
रसोत्तमस्यास्य निषेवणाद्यो ह्यामाशयोत्थामयरोगसङ्घतः।
गत्वा विमुक्तिं बलवीर्यसंयुतो मेधान्वितः सौख्यवपुश्च जायते॥
अन्नपानादिकं सर्वं सुजरं यच्च पोषणम्। आमाशयगदे सेव्यं दुर्जरञ्च विवर्जयेत्॥

(भैषज्यरत्नावली)

रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मोती भस्म और स्वर्णभस्म समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस में ५ दिन तक घोटें और १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—इस उत्तम रस के सेवन से आमाशय सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं। बल, वीर्य और बुद्धि की वृद्धि होती है और शरीर लावण्यमय हो जाता है।

सावधानी—इस रस के सेवन काल में ऐसे लघु और सुपाची आहार का सेवन करें जो कि शीघ्र पच जावे। दुस्पाची आहार को छोड़ दें।

(३०) रसेन्द्र-चूर्णम्

पलैकं रससिन्दूरमाददीताथ शाणकम्।
प्रत्येकं वंशजा मुक्ता निरुत्थं हेमभस्मनाम्॥
द्रावयेदहिफेनस्य शाणं क्षीरे निमज्जितम्।
वस्त्रपूतेन तेनैव तत्सर्वं मर्दयेद्भृशम्॥

छायायामातपे वऽथ शोषयेच्चूर्णयेत्ततः ।
चतुर्गुञ्जामितं चूर्णं क्षीरेण सह सेवयेत् ॥
सक्षीरमन्नमश्नीयान्नाश्नीयाल्लवणाम्भसी ।
यावज्जीर्येत् तावदाद्यं पक्वमाज्येन मोदकम् ॥
शौचमाचमनं कार्यमग्निपूतेन वारिणा ।
वाससाच्छादयेद् देहं न स्नायादस्य सेवकः ॥
अत्रानुवर्तयेत्सर्वान् नियमान् रससेविनाम् ।
चूर्णं रसेन्द्रनामेदं रसे श्रेष्ठं रसायनम् ॥
नाशयेद् ग्रहणीं कृत्स्नां रक्तातिसारसूतिके ।
अग्निमान्द्यादिकं जित्वा दीपयेज्जठरानलम् ॥
पुष्टं हृष्टं बलिष्ठञ्च नरः कुर्याद्धिताशनः ॥

(भैषज्यरत्नावली ग्रहण्यधिकारः)

रस सिन्दूर १ पल (५ तोले), वंशलोचन, मोतीभस्म, स्वर्णभस्म प्रत्येक १-१ शाण (३॥ माशा ले लें)। इन चारो औषधियों को खरल में घोटें। पश्चात वस्त्रपूत अफीम (३॥ माशा) को भी उपर्युक्त चारो औषधियों में मिला कर घोटें। घोटते समय थोड़ा २ दूध डालते जायं। लगभग १ पाव दूध को घोट लेने के बाद धूप में सुखा लें और चूर्ण बना लें।

सेवन—४ रत्ती की मात्रा में दूध के साथ सेवन करें। अपने अग्निबल को ध्यान में रखते हुए कोई मोदक का भी सेवन अनुपान रूप से किया जा सकता है।

सावधानी—इस प्रयोग के सेवन काल में उष्ण जल का ही प्रत्येक कार्य में उपयोग करना चाहिये जैसे शौच, एवं जलपान में उष्ण जल का ही सेवन करना चाहिये। परन्तु स्नान बिलकुल नहीं करें।

उपयोग—ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रसूतिका रोग, तथा अग्निमांद्यादि रोगों का विनाश करके अग्नि को प्रदीप्त करते हुये शरीर को हृष्टपुष्ट और बलवान करता है।

(३१) हंसपोटली रसः

निष्कैकं मर्दितं सूतं द्विनिष्कं मृततीक्ष्णकम् ।
शिखितुल्यं तीक्ष्णतुल्यं कर्षार्द्धं गन्धमौक्तिकम् ॥
विषं निष्कं चैतत्सर्वं भृङ्गार्द्रसुरसारसैः ।
अग्निपर्णी हरिद्रा च लाङ्गलीकन्दजैर्द्रवैः ॥
मरिचैर्मधुना लेह्या माषैका हंसपोटली ।
हन्ति संग्रहणीं चैव अतिसारं च पाण्डुताम् ॥

दौर्बल्यं गुल्मं श्वासं च कासं हिक्कामरोचकम् ।
क्षौद्रेण विजयानिष्कं लेहयेदनुपानकम् ॥

(रसराजसुन्दर ग्रहण्याधिकारः)

शुद्धपारद १ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म २ भाग, तुत्थभस्म २ भाग, शुद्ध गंधक १॥ भाग, मुक्ताभस्म १॥ भाग, शुद्ध वत्सनाभ १ भाग। सर्वप्रथम पारद-गंधक की कज्जली बना लें। पश्चात् अन्य समस्त औषधियों को मिला लें और खरल करें। भृङ्गराज, अदरक, तुलसी, केवांच, हल्दी, कलिहारी—इन प्रत्येक की जड़ के रस की १-१ दिन भावना देकर १-१ माशे की वटिका बना लें।

सेवन—काली मिर्च के चूर्ण अथवा मधु के साथ सेवन करें।

उपयोग—संग्रहणी, अतिसार, पाण्डु, निर्बलता, गुल्म, श्वासकास, हिक्का और अरुचि रोगों में उपयोग करें।

अनुपान—भांग का चूर्ण (१ माशा से लेकर ६ माशा तक की मात्रा में) मधु के साथ मिलाकर उपरोक्त दवा को लेने के बाद सेवन करें।

(३२) राजमृगाङ्क रसः

पलैकमानं रसभस्मकं हि स्याद्धेमभस्मप्रभवं पलं च ।
शुद्धस्य वङ्गस्य पलं च तद्वत्तथा च मुक्ता द्विपलं प्रदद्यात् ॥
पादांशतट्ङ्कणमेव सम्यक् खल्वे विमर्द्याथ सहाम्लवेतसा ।
तद्भावयेद्वै यवकाञ्जिकेन प्रमर्द्य सर्वं दिनसप्तकेन ॥
गोलं विधायाथ विशोषयित्वा मूषागतं तं खलु पाचयेद्धि ।
शीतं समुद्धृत्य ततो रसेन्द्रं विचूर्ण्य धार्यः स तु हेमपात्रे ॥
हेम्नस्त्वभावे रजतस्य पात्रे नान्यस्य पात्रेषु निवेशनीयः ।
अयं राजमृगाङ्काख्यो रोगराजस्य घातकः ।
पथ्यं पूर्वोक्तविधिना कारयेन्मतिमान् भिषक् ॥

(रसप्रकाश सुधाकर अध्याय ८)

पारदभस्म ५ तोला, स्वर्णभस्म ५ तोला, बंगभस्म ५ तोला, मोतीभस्म १० तोला, सुहागा १। तोला। इन ५ औषधियों को अम्लवेतस के क्वाथ में एक दिन तक घोटें। पश्चात् ७ दिन तक जौ की कांजी में घोटकर गोला बना लें। इस गोले को लघु पुट में पाक करें। स्वांग शीतल होने पर चूर्ण करें और स्वर्ण अथवा चांदी के पात्र में रख दें। अन्य पात्रों में न रखें। यह राजमृगाङ्करस राजयक्ष्मा को नष्ट करने में बहुत ही प्रसिद्ध रस है। इसकी मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक की है।

(३३) सिद्धसूतः

मुक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं रूप्यमेव च ।
यवक्षारञ्च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥
रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत्पत्तलीकृतम् ।
मर्दयेच्च पुनर्दत्वा गन्धकं तदनन्तरम् ॥
क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुध्य त्रियामकम् ।
सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतन्तु भक्षयेत् ॥
रक्तिकैकप्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम् ।
शुक्रवृद्धिं करोत्येप ध्वजभङ्गञ्च नाशयेत् ॥
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ ।
मुद्गगर्भं घृतं क्षीरं शालयो माहिषं हितम् ॥

(नपुंसकामृत, भैषज्य रत्नावली)

मोतीभस्म, स्वर्णपत्र (वरक), चांदीपत्र और यवक्षार १-१ तोला ले लें। अब १ तोला पारद में स्वर्णपत्र और रजतपत्र मिलाकर घोटें और फिर इसमें मोतीभस्म तथा यवक्षार डालकर पुनः घोटें और लाल कमल के स्वरस की एक दिन तक भावना देकर शुद्ध गंधक १ तोला डालकर घोटें और खूब अच्छी तरह से एक दिल कर लें। अब इस द्रव्य को आतिशी शीशी में भरकर शीशी का मुख बन्द कर दें और बालुका यन्त्र में तीन प्रहर तक पाक करें। स्वांगशीत होने पर औषध द्रव्य निकाल कर पीस लें।

सेवन—मुसली का चूर्ण और शर्करा के साथ १ रत्ती की मात्रा में सेवन करें ।

उपयोग—नपुंसकता को नष्ट करते हुए वीर्य को बढ़ाता है तथा निर्बल और कमजोर शरीर में बल को बढ़ाता है।

पथ्य—मूंग की दाल, शाली चावल एवं भैंस का दूध और घी इस रस के सेवन काल में पथ्यकर है ।

(३४) बृहत् वङ्गेश्वर रसः

वङ्गभस्मरसं गन्धं रौप्यं कर्पूरमभ्रकम् ।
कर्षं कर्षं मानमेषां सूतांघ्रिहेममौक्तिकम् ॥
केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुञ्जाफलमानतः ।
प्रमेहान्विंशतिञ्चैव साध्यासाध्यमथापिवा ॥
मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत् ।
हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥
ग्रहणीमामदोषञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।

एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥
बृहद्वङ्गेश्वरो नाम सोमरोगं निहन्त्यलम् ।
बहुमूत्रं बहुविधं मूत्रमेहं सुदारुणम् ॥
मूत्रातिसारं कृच्छ्रञ्च क्षीणानां पुष्टिवर्द्धनः ।
ओजस्तेजस्करो नित्यं स्त्रीषु सम्यगवृषायते ॥
बलवर्णकरो हृद्यः शुक्रसञ्जननः परः ।
छागं वा यदि वा गव्यं पयो वा दधि निर्मलम् ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ।
दद्याच्च बाले प्रौढे च सेवनार्थं रसायनम् ॥

(रसराज सुन्दर, रसेन्द्रचिन्तामण, रसेन्द्रसारसंग्रह, भैषज्यरत्नावली, रसचन्द्रिका)

पारद और गंधक १।-१। तोला लेकर कज्जली बना लें। इस कज्जली में वंगभस्म, चांदीभस्म, कर्पूर और अभ्रकभस्म १।-१। तोला मिलाकर स्वर्ण और मोतीभस्म ३॥-३॥ माशे डालकर भृङ्गराज स्वरस से घोटें और २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

उपयोग—साध्य अथवा असाध्य समस्त (२०) प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्त पित्त, वातज, पित्तज और कफज ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, सोमरोग, बहुमूत्र एवं समस्त प्रकार की मूत्रज व्याधियां, मूत्रातिसारादि रोग नष्ट होते हैं । दुर्बल व्यक्ति हृष्टपुष्ट होता है। यह रस वीर्य की वृद्धि करते हुए बल, वर्ण, तेज, ओज और कामशक्ति को बढ़ाता है। इस रस का सेवन यावत् बाल वृद्ध सभी को मात्रा, काल का विचार करके कराया जाता है ।

अनुपान—गौ या बकरी का दूध दही पीना चाहिये ।

(३५) लक्ष्मीविलासरसः

सुवर्णताराभ्रकताम्रवङ्ग—त्रिलोहनागामृतमौक्तिकानि ।
एतत्समं योज्य रसस्य भस्म खल्वे कृतं स्यात्कृतकज्जलीकम् ॥
सुमर्दयेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं तच्छोषयेद् द्वित्रिदिनं च घर्मे ।
तत्कल्कमूषोदरमध्यगामि यत्नात्कृतं तार्क्ष्यपुटेन पक्वम् ॥
यामाष्टकं पावकमर्दितं च लक्ष्मीविलासो रसराज एषः ।
क्षये त्रिदोषप्रभवे च पाण्डौ सकामले सर्वसमीरणेषु ॥
शोफप्रतिश्यायप्रनष्टवीर्यं मूलामयं चैव सशूलकुष्ठम् ।
हत्वाग्निमान्द्यं क्षयसन्निपातं श्वासं च कासं च हरेत्प्रयुक्तम् ।
तारुण्यलक्ष्मीप्रतिबोधनाय श्रीमद्विलासो रसराज एषः ॥

(रसराजसुन्दर, बृहनिघन्टुरत्नाकर, योग रत्नागर, रसचन्द्रिका)

स्वर्ण, चांदी, अभ्रक, ताम्र, बंग, तीक्ष्णलोह, कान्तलोह, मुण्डलोह, सीसक और मोतीभस्म तथा मीठातेलिया का चूर्ण १-१भाग। इन सब भस्मों के बराबर पारद भस्म लेकर मिला लें और मधु के साथ घोटें। दो तीन दिन धूप में रखें। जब सब द्रव्य प्रगाढ़ हो जावे तब गोला बना लें। अब इस गोले को एक सुदृढ मूषा में रखकर बन्द कर दें और कुक्कुट पुट में पाक करें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर चीता के क्वाथ की भावना देकर सुखा लें।

इस रसके सेवन से क्षय, त्रिदोषज पाण्डु, कामला, वातरोग, शोथ, प्रतिश्याय, शुक्रक्षय, अर्श, शूल, कुष्ठ, अग्निमांद्य, सन्निपात, श्वास, कास का नाश होता है एवं जवानी और लक्ष्मी को बढ़ाता है।

(३६) हिरण्यगर्भपोटली रसः

एकांशो रसराजस्य भागौ द्वौ हाटकस्य च।
मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षड् दीर्घनिःस्वनात् ॥
त्र्यंशं बलेर्वराटयाश्च टङ्कणो रसपादिकः।
पक्वनिम्बूकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥
मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत्।
गर्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेद्विंशद्वनोपलैः ॥
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत्।
ततः खल्वोदरे मद्यं सुधारूपं समुद्धरेत् ॥
एतस्यामृतरूपस्य दद्याद् द्विगुञ्जसन्मितम्।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥
मन्दाग्नौ रोगसंघे च ग्रहण्यां विषमज्वरे।
गुदाङ्कुरे महामूले पीनसे श्वासकासयोः ॥
अतिसारे ग्रहण्याञ्च श्वयथौ पाण्डुके गदे।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहादिकेषु च ॥
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्दजेषु त्रिजेषु च।
दद्यात् सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद्रसायनम् ॥

(रसचन्द्रिका, रसराजसुन्दर, रसेन्द्रसारसंग्रह, भैषज्यरत्नावली)

पारद भस्म १ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, मोतीभस्म ४ भाग, शंखभस्म ६ भाग, शुद्ध गंधक ६ भाग, कौडी भस्म ३ भाग, सुहागा भस्म ¼ भाग। सर्व प्रथम पारद गंधक की कज्जली बना लें। अब इस कज्जली में अन्य समस्त भस्मों को डालकर नीबू के रस की भावना दें और एक सुदृढ मूषा में बन्द

कर दें। इस मूषा को एक गर्त में ३० उपलों के मध्य में रखकर पाक करें। स्वांग शीतल होनेपर औषध द्रव्य को निकाल कर पीस लें।

मात्रानुपान—२ रत्ती की मात्रा में काली मिर्च २९, घृत और मधु के अनुपान से इस रस को सेवन करें।

उपयोग—अग्निमांद्य, ग्रहणी रोग, विषम ज्वर, अर्श, पीनस, श्वास, कास, अतिसार, पाण्डु, शोथ, उदर रोग, यकृतरोग और प्लीहा रोगों को यह रस नष्ट करता है। इनके अलावा समस्त सन्निपातों में तथा समस्त रोगों में इस रसायन को दे सकते हैं।

(३७) योगेन्द्ररसः

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्धं शुद्धहाटकम्।
तत्समं कान्तलोहं च तत्समं चाभ्रमेव च॥
विशुद्धं मौक्तिकं चैव वङ्गं च तत्समं मतम्।
कुमारिकारसैर्भाव्यं धान्यराशौ दिनत्रयम्॥
ततो रक्तिद्वयमितां वटिं कुर्याद्विचक्षणः।
योगवाही रसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः॥
वातपित्तभवान् रोगान् प्रमेहान् बहुमूत्रताम्।
मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदामयम्॥
उन्मादं मूर्च्छां यक्ष्माणं पक्षघातं हतेन्द्रियम्।
शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा॥
त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा।
भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः॥
रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानां च विशेषतः।
योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेयविनिर्मितः॥

(धन्वन्तरि संहिता)

रससिंदूर २ भाग, स्वर्ण, कान्तलोह, अभ्रक, मोतीवंगभस्म १-१ भाग, इन सबों को मिलाकर घृतकुमारी के रस में घोंटकर गोला बना लें। इस गोले को सुखाकर और पत्तों से लपेटकर धान के ढेर में दबा दें और तीन दिन के बाद निकाल कर २ २ रत्ती की गोलियां बना लें। यह रस योगवाही है—अर्थात् अनुपान भेद से समस्त रोगों में दिया जा सकता है। इस रस के सेवन से वातरोग, पित्तरोग, प्रमेह, बहुसूत्र, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, अर्श, उन्माद, मूर्छा, यक्ष्मा, पक्षाघात, शूल, और अम्लपित्त नाश इस प्रकार होता है जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार का नाश हो जाता है। इसके अलावा इस रस को वंशलोचन, मिश्री और त्रिफला क्वाथ के साथ लेने से

रोगी व्यक्ति कामदेव के समान देखने में स्वरूपवान् हो जाता है। इसके सेवनकाल में दुर्बल व्यक्तियों को रात्रि में गौ का दूध पीना चाहिये।

(३८) चिन्तामणिरसः

रसेन्द्रवैक्रान्तकरौप्यताम्रं सलोहमुक्ताफलगन्धहेम।
त्रिर्भावितं चाऽऽर्द्रकभृङ्गवह्नि–रसैरजागोपयसा तथैव ॥
अर्शःक्षयं कासमरोचकञ्च जीर्णज्वरं पाण्डुमपि प्रमेहान्।
गुञ्जाप्रमाणं मधुमागधीभ्याम् लीढं निहन्याद्विषमं च वातम्
चिन्तामणिरिति ख्यातः पार्वत्या निर्मितः स्वयम् ॥

(रसराजसुन्दर, वैद्यक कल्पद्रुम, योगरत्नाकर)

पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें। वैक्रान्त, चांदी, ताम्र, लोह, मोती और स्वर्ण भस्म समान मात्रा में कज्जली में मिलाकर अद्रक, भृंगराज और चीता के रस की ३-३ भावनायें देकर गौ और बकरी के दूध की ३-३ भावना दें। यह चिंतामणि रस पार्वती द्वारा निर्मित है। इसकी १ रत्ती की मात्रा में मधु और पीपल चूर्ण के साथ सेवन करने से अर्श, क्षय, कास, अरुचि, जीर्ण ज्वर, पाण्डु, प्रमेह; विषम ज्वर, और वायु रोग नष्ट होते हैं।

नपुंसकता दूर करने में रामबाण

(३९) मुक्तादि वटी

मोतीभस्म ६ माशा, कुचला चूर्ण २ दाने, सोने के वर्क १ माशा, चांदी के वर्क ३ माशा, केशर १ तोला, जावित्री ६ मासा, जायफल १ तोला, अकरकरा २ तोला, छोटी इलायची बीज १ तोला, भीमसेनी कपूर ३ माशा, कंकोल १ तोला। इन समस्त द्रव्यों को मिलाकर गुलाब जल में तीन दिन तक घोटें और दो दो रत्ती की गोलियां बना लें। दूध के साथ प्रातः सायम् सेवन करें। इसके सेवन करने से कामशक्ति, स्मरणशक्ति एवं स्तम्भनशक्ति प्रबल हो उठती है। इसका सेवन मुख्यतः शीतऋतु में करना चाहिये।

(४०) खमीरामोती

मोती, बंसलोचन, चन्दन सफेद, अबरेशम, बहमन सफेद प्रत्येक दो दो तोला, अम्बर, सोने के बर्क और चांदी के वर्क ५–५ माशे कस्तूरी दो माशा, चीनी सफेद १५ तोला, गुलाब के फूल १५ तोला, अर्क वेदमुश्क १५ तोला, शहद १० तोला। इन सबों को मिलाकर खमीरा तैयार करलें। १ माशे की मात्रा में हर रोज इस्तेमाल करें। दूध व रबडी का खूब सेवन करें। यह उन्माद व कमजोरी को हटा कर काम शक्ति को बढ़ाता है।

(४१) खमीरा मरवारीद

मोतीभस्म ८॥ माशा, ककडी के बीज की मगज १॥ तोला, कद्दू मगज

१०॥ मासा सफेद चन्दन का चूर्ण ५ माशा, गुलाब जल १० तोला, गुलबनफशा, ७ माशा, गावजबां फूल ७ माशा, वंसलोचन ७ माशा, केशर ३॥ माशा, कस्तूरी ७॥ माशा, अम्बर ७॥ माशा, इन सबों को एक दिल कर लें। अब इसमें अनार शर्बत ६ तोला, जरिश्क शर्बत ६ तोला, अर्क वेदमुश्क ३ तोला मिला दें। मात्रा १ माशा। एक महीने तक इस्तेमाल करें। दिल दिमाग व पागलपन को दूर करता है। कामोत्तेजक है।

(४२) अनोशदारुवे लूलवई

वंशलोचन, अवरेशम कतरा हुआ, मस्तगी, केसर सम्बुल, मोतीभस्म, कहरुबा, गुलसुर्ख (गुलाबके फूल) प्रत्येक ३–३ मिस्काल (एक मिस्काल का साढे चार माशा होता है) याकूत (माणिक्य), रेवन्द, नागर मोथा, ऊद हिन्दी, मिचियागन्द, सफेद चन्दन, तुरंज का बक्कल, पत्रज, बुसद (प्रवाल), यशवहरा, तुख्मबादरंज बोया, दरवंज, हील, छोटी इलायची, जरिश्क, बेदाना, अम्बर अशहव, सोने के बर्क, चांदी के बर्क प्रत्येक दो दो दिरम (एक दिरम तीन माशे का होता है), आंवला ९ दिरम, मिश्री जरूरत के मुताबिक दुगनी या तीन गुनी लें।

प्रत्येक दवा को उसकी ठीक २ विधि के अनुसार भस्म एवं चूर्ण बनाकर परस्पर मिला लें। इसका प्रयोग २ रत्ती से ५ रत्ती तक बल और समय को देखकर करना चाहिये।

यह दवा आजाय रईस (हृदय और मस्तिष्क) को पुष्ट बनाती है। समस्त शरीर की दुर्बलता और पाचक संस्थान की गड़बड़ी को दूर करती है। पौरुष शक्ति बढ़ाने में बेनजीर है।



प्रवाल

(Coral)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम—

संस्कृत—प्रवालक, प्रवाल, भौमरत्न, विद्रुम, अब्धिजन्तु आदि पांच नाम प्रवाल के पर्यायवाची हैं। हिन्दी—मूंगा, बंगला—पला, मूंगा, मराठी–पोवळें, पोळा,६ पोंवळे, गुजराती—परवाला, परवाली, कनाडी—अवलेहवत, तैलगु—प्रवालक, पागडालु, पगडमु, पागाडम, फारसी–मिरजाना, मिरगां, मिरजां मिरजान, अरबी—एहेम, खुसुद, बसद, बुसद, करनाटकी—हवलवु, द्राविडी—प्रवलं, अंग्रेजी—रेडकोरल (Red-Coral) लेटिन—कोरेलियम रूब्रम (Coralium Rubrum) वर्मी—टाड़ा (Tada), चीनी—सउ-हो-ची (Sahu-hochi)

उत्पत्ति स्थान—भूमध्य सागर के पार्श्ववर्ती स्थानों और द्वीपों में उत्तम श्रेणी के बहुमूल्य प्रवाल पाये जाते हैं। प्रवाल पाये जाने के स्थान समुद्र किनारे से २ से लेकर १० मील की दूरी तक होते हैं और गहराई ३० फैदम से लेकर १२० फैदम तक होती है। परन्तु अधिकांश में प्रवाल ८० फैदम की गहराई में ही उपलब्ध होने लगते हैं। प्रवाल पकड़ने का व्यवसाय ट्यूनिस, अल्जेरिया और मोरक्को के किनारे अधिक होता है। लाल रंग के अथवा अरुणाभायुक्त प्रवाल नेपल्स के पार्श्ववर्ती स्थानों में, लेघने (Leghone), जिनोआ, सारोडीनिया, कोरसिका (Corcica) काटालोनिया और प्रोवेन्स आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

जिस समुद्र की पेंदी बालुकामय होती है—प्रवाल वहाँ नहीं पाये जाते एवं जिस समुद्र की पेंदी पंकमय होती है वहाँ प्रवाल बहुतायत से पाये जाते हैं।

व्यावसायिक महत्त्व—बहुत प्राचीन काल से ही लोग प्रवाल को आभूषणों में तथा अन्य सजावट के कामों में लाते आ रहे हैं। इसमें कैल्सियम के तत्त्व की प्रधानता होने के कारण भारतीय चिकित्साशास्त्र में अति प्राचीनकाल से उपयोग होता आ रहा है। ईस्वी सन् के प्रारम्भ से ही भूमध्य सागर के निकटवर्ती देशों के साथ और हिन्दुस्तान के साथ प्रवाल का व्यवसाय चला आ रहा है। प्लीनी के कथनानुसार हिन्दुस्तानी लोग प्रवाल को चिकित्सा के लिये बहुत उपयोगी समझते हैं। हिन्दुस्तानियों की मांग

प्रवाल-कीट का अस्थि-पञ्जर सूर्य-रश्मियों के सम्पर्क में आकर शुष्क होता हो? हो सकता है कि कुछ दिनों बाद प्रवालोद्भव में सूर्य-रश्मियाँ प्रधान कारण बन जावें और प्रवाल-कीट गौण ?

प्रवाल की प्रारम्भिक अवस्था

अवस्था के अनुसार प्रवाल के तीन प्रकार हैं।

(१) ज़ुआन थेरिया (Zoontheria)

(२) रूगोसा (Rugosa)

(३) आलसि ओनेरिया (Alcyonaria)

(१) ज़ुआन थेरिया (Zoontheria) प्रकार में अस्थिपञ्जर (Skeleton) नहीं होता। यदि होता भी है तो अविकसित अवस्था में होता है इसमें स्पर्शेन्द्रियाँ ६ होती हैं अथवा ६ का एक समुदाय होता है। इन स्पर्शेन्द्रियों के अभिवर्धित हो जाने पर प्रवाल साधारणतः गोलाकृति में हो जाता है। अस्थिपञ्जर की बनावट के अनुसार ज़ुआनथेरिया के तीन और प्रभेद किये गये हैं।

(क) माला कोडरमेटा (Mala codermeta)

(ख) स्केलेरो बेरिका (Sclero barica)

(ग) स्केलेरोडरमेटा (Sclerodermeta)

प्रथम प्रकार में अस्थिपञ्जर अविकसित होने के कारण प्रवाल कहने लायक वस्तु इनसे उत्पन्न नहीं होती। शेष दो प्रकार में अस्थिपञ्जर होने के कारण प्रवाल में गणना की जाती है।

(२) रूगोसा (Rugosa)—यह प्रकार ज़ुआन थेरिया स्क्लेरोडरमेटा के सदृश होते हैं। यह प्रकार पूर्ण विकसित रूप में पाया जाता है।

(३) आलसि ओनेरिया (Alcyonaria)—इस प्रकार के प्रवाल कीट के अष्ट स्पर्शेन्द्रियाँ होती हैं। यह प्रकार समस्त महासागर में पाये जाते हैं। इस पर उष्णता एवं शीतलता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रवाल पर वातावरण का प्रभाव

प्रवाल वहीं पाये जाते हैं जिस समुद्र का तापमान शरद ऋतु में लगभग ७० अंश तापक्रम से कम नहीं होता। इस सिद्धान्त से यह पता लगाया जा सकता है कि प्रवाल स्तर (Coral reefs) उन्हीं समुद्रों में पाये जायँगे जो कि विषुवत् रेखा के दोनों ओर १८०० मील के अन्दर हों। इस दूरी के अन्दर भी जिस समुद्र में आर्कटिक प्रवाह (Arctic Currents) आते रहते हैं उस स्थान पर प्रवाल स्तर नहीं पाये जायँगे। यही कारण है कि अफ्रीका के पश्चिमी किनारे तथा दक्षिणी अफ्रीका के पश्चिमी किनारे पर प्रवाल-

स्तर नहीं पाये जाते। मध्यप्रशान्त महासागर (Central pacific Ocean) में प्रवालस्तर पर्याप्त पाये जाते हैं। हिन्द महासागर, फारस की खाड़ी (Persian gulf) लाल समुद्र (Red sea) जंजीबार के तट पर, मेडागास्कर, मोरेशस, पनामा की खाड़ी, ब्राजील के तट, वेस्ट इण्डीज के आसपास, फ्लोरिडा के किनारे और बरमुडास के आसपास प्रवाल स्तर पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं।

डार्विन के अनुसार प्रवाल स्तर (Coral reefs) के तीन विभाग हो सकते हैं।

(१) Fringing reefs फ्रिंजिंग रीफ्स
(२) Barrier reefs बैरियर रीफ्स
(३) Atolls एटोल्स

Fringing reef—जमीन के किनारे किनारे या द्वीपों के किनारे किनारे पाये जाते हैं। Barrier reefs जमीन के किनारों से कुछ दूर पर पाये जाते हैं। और Atolls बीच समुद्र में पाये जाते हैं।

वैज्ञानिकों की साधना

प्राचीन वैज्ञानिकों ने भी समुद्र-मंथन तो किया था। समुद्र-मंथन की कथा हमारे भारतवासियों के सुनने से संसार से मुक्ति मिल जाती है। दूसरे देश वाले इन आश्चर्य भरी बातों को पढ़कर स्वयमेव कुछ न कुछ कर गुजरने की कल्पना करने लगते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक समुद्र के तट एवं पृष्ठ भाग से लेकर उसके तल प्रदेश तक पहुँचकर समस्त रहस्योद्‌घाटन में दत्तचित्त होकर जुटे हुये हैं। यों तो समुद्र के तल प्रदेश में न मालूम कितने आश्चर्यकारी प्रकृति नटी के रहस्य छिपे पड़े हैं, परन्तु अद्यावधि जो भी वैज्ञानिकों को विस्मय में डाल देने वाले कार्य ज्ञानगम्य हुये हैं उनमें सबसे बड़ा कार्य प्रवाल कीट का है। ये क्षुद्र प्रवालकीट किस प्रकार अपने रचना कौशल से बड़े-बड़े प्रवाल-स्तर बना डालते हैं? किस प्रकार इन प्रवाल-स्तरों से प्रवाल-गिरि बन जाते हैं? इन बातों का उत्तर आधुनिक वैज्ञानिकों ने वर्षों अनुसन्धान करके दिया है।

सबसे बड़ा प्रवाल-पर्वत आस्ट्रेलिया का ग्रेट बेरियर रीफ' (Great Barrier reef) है। इसकी लम्बाई १२०० मील तक है। डाक्टर वाल्डो माइनर नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने सन् १९२३ से १९३३ तक १० वर्षों तक 'म्यूजियम आफ नेचुरल हिस्ट्री' नामक संस्था की तरफ से वेस्ट इन्डीज़ और बहावा द्वीप पुंजों में प्रवाल-कीट पर अनुसन्धान किये। डाक्टर माइनर के साथ में श्रीमती माइनर भी सहयोग देती रहीं। इन दो व्यक्तियों ने एक बार समुद्र

के तल प्रदेश की यात्रा की। आप लोग एक बार की यात्रा में ७० टन प्रवाल अपने साथ लाये साथ ही प्रवाल कीट की संवर्धन अवस्थाओं के सैकड़ों फिल्म भी तैयार किये। समुद्र तल के दृश्यों एवं प्रवाल कीट की कार्यकुशलता का वर्णन इस प्रकार किया गया है मानो किसी राजमहल के सामने के उद्यान का वर्णन हो। वैसे तो सर्वप्रथम १८१५ ई० में एक जर्मन वैज्ञानिक ने दक्षिण समुद्र की यात्रा की थी और इसी वैज्ञानिक ने समस्त सभ्य संसार को प्रवाल कीट की कुशलता का दिग्दर्शन कराया था। डाक्टर वाल्डो माइनर को विशेष और सुसज्जित यांत्रिक सहायता मिल जाने से उसने प्रवाल कीट का और भी प्रामाणिक एवं प्रणालीबद्ध परिज्ञान कराया है। इसके बाद १९२८–१९२९ई० में डाक्टर स्टेफेन्सन (Dr. Stephenson) ने जो कि ग्रेट बैरियर रीफ एक्स-पेडिशन' नामक संस्था के प्रधान थे, प्रवाल-कीट पर अच्छा अनुसन्धान किया है। १९३१ में डाक्टर स्टेफेन्सन को 'केपटाउन विश्वविद्यालय' ने प्राणि-शास्त्र (Zoology) विभाग का प्रधान नियुक्त किया। डाक्टर स्टेफेन्सन के दर्जनों सह-योगी थे। आप लोगों ने साउथ अफ्रीका के लगभग २००० मील सामुद्रिक तल प्रदेश को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। डाक्टर स्टेफेन्सन ने 'सी शोर लाइफ एण्ड पेटर्न (Sea shore life and pattern) नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया।

जात्यानुसार–रूप रंग लक्षण—

ब्रह्मादिजातिभेदेन तच्चतुर्विधमुच्यते।
अरुणं शशरक्ताख्यं कोमलं स्निग्धमेव च॥
प्रवालं विप्रजातिः स्यात् सुखवेध्यं मनोरमम्।
जवाबन्धूकसिन्दूरं दाडिमी-कुसुम-प्रभम्॥
कठिनं दुर्वेध्यमस्निग्धं क्षत्रजातिस्तदुच्यते।
पलाशकुसुमाभासं तथा पाटलसन्निभम्॥
वैश्यजातिर्भवेत् स्निग्धं वर्णाढ्यं मन्दकान्तिभृत्।
रक्तोत्पलदलाकारं कठिनं च चिरद्युति॥
विद्रुमं शूद्रजातिः स्याद् वायु वेध्यं तथैव च।

प्रवाल की जाति के अनुसार उसके रूप रंग के भेदानुसार चार प्रकार बताये गये हैं।

(१) ब्राह्मण प्रवाल—वह कहलाता है जो कि खरगोश के रक्त के समान अरुण (लाल) वर्ण का हो, कोमल (Soft) स्निग्ध (चिकनापन) देखते ही मन को प्रसन्नता का अनुभव हो, सरलतापूर्वक उसमें छेद किया जा सके।

(२) क्षत्रिय प्रवाल—का वर्ण गुडहल के पुष्प (Shoe-flower) के समान या बन्धूक पुष्प (दुपहरिया के फूल Pentapeter-flower) के समान, अथवा सिन्दूर के रंग के समान अथवा अनार के पुष्प के समान होता है। क्षत्रिय प्रवाल को स्पर्श करने से स्निग्धता (Oily) का अभाव अनुभव होता है। कठिन (कठोर) होता है और छेद करने में कठिनता अनुभव होती है।

वैश्य प्रवाल—वर्ण में पलाश पुष्प के वर्ण (Yellowish-Red) के समान अथवा पाटल (गुलाब Rose-flower) वर्ण, परन्तु गहरा रंग और सुचिक्कणता लिये होता है, तथा उसकी कान्ति में क्षीणता होती है।

शूद्रप्रवाल—लाल कमल के दलों (Carolas) के रंग का, कठिन (कठोर) और स्थायी कान्ति से रहित होता है। सरलता पूर्वक उसमें छेद नहीं किया जा सकता।

उत्तम प्रवाल के लक्षण—

पक्वबिम्बफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम्।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा मतम्॥

अर्थात्—प्रवाल पके हुये कुन्दरु के समान रक्त वर्णाभायुक्त गोल, लम्बे और वक्रता रहित, स्निग्ध, छिद्ररहित मोटे सुदृढ़ उत्तम श्रेणी के होते हैं।

निकृष्ट प्रवाल के लक्षण—

पाण्डुरं धूसरं रूक्षं सव्रणं कोटरान्वितम्।
निर्भारं शुभ्रवर्णं च प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा॥
आरंगं च जलाक्रान्तिं वक्रं सूक्ष्मं सकोटरम्।
रूक्षं कृष्णं लघु श्वेतं प्रवालमशुभं त्यजेत्॥

अर्थात्—जो प्रवाल श्वेतपीत मिश्र वर्णवाला, धूसर—श्वेत कृष्ण मिश्र वर्णवाला, रूखा और सछिद्र, कोटर या खात युक्त, श्वेत, हलका और पतला होता है वह निकृष्ट श्रेणी का होता है। ऐसे प्रवाल को औषध प्रयोग में एवं ग्रह निवृत्ति के कार्य में नहीं लाना चाहिये।

गुणधर्म—

प्रवालमधुरं साम्लं कफपित्तार्तिदोषनुद्।
वीर्यकान्तिकरं स्त्रीणां धृते मंगलदायकम्॥
क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु।
विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगहृत्॥
प्रवालमंजरी साद्रा कामपुष्टिकरी नृणाम्।
सेविता सततं देहे वीर्य्यंस्तम्भं करोति च॥

क्षयपित्तास्त्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु।
विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगनुत् ॥ 'रसरत्नसमुच्चय'
चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च।
मांगल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥ 'भावप्रकाश'

अर्थात्—प्रवाल मधुर, अम्ल एवं कफपित्तज रोगों का नाशक है। वीर्य और कान्ति को बढ़ानेवाला है। स्त्रियों के आभूषणों में धारण करने से मंगल-दायक होता है। क्षय, रक्तपित्त और कास का नाशक है। दीपक, पाचक और लघु है। विषरोगों का भूतपिशाचजन्य रोगों का शामक है। नेत्ररोगों का हारक है। त्रिदोषशामक है। अत्यन्त स्वेद के निकलने को रोकता है। रात्रि-स्वेद को नष्ट करता है एवं वीर्य वर्ण को बढ़ाता है। प्रवाल मंजरी पुरुषों की कामपिपासा को बढ़ाता है। लगातार कुछ दिन सेवन करने से वीर्य का स्तम्भन करता है।

रासायनिक उपादान (Chemical compotion)—प्रवाल में रासायनिक उपादान अधोलिखित हैं।

(१) सुधामृत्तिका (Carbonate of Lime),		८७ प्रतिशत
(२) मैगनेसियम कार्बोनेट (Mognecium Carbonate)		३ ,,
(३) लौह	,,	नगण्य
(४) मैगनेसिया	,,	,,
(५) सिकता (Sand)		२ प्रतिशत

(६) शेष जैव पदार्थ और जल होता है।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म-मूँगा—का स्वाद फीका, तासीर—सर्द व खुश्क है।

सुद्दे खोलता है। मेदे को कुव्वत देता है। जिगर व तिहाल को पाक करता है। पेशाब लाता है। खूनी दस्तों को बन्द करता है। बच्चों के नींद में चौंकने और डर कर रोने को मुफीद है।

मूंगे की जड़ (प्रवाल मूल)—इसे उर्दू में बेख मरजा़न व अरबी में बुसद कहते हैं। तासीर सर्द व खुश्क है। काबिज़ है। दिल को फरहद देती है। खून को बन्द करती है। जऩून व मालिखौलिया व खफ़कात और नेत्ररोग को मुफीद है। मुंह से खून आने को नफा करती है। कलेजे का खून दस्तों की राह आने को मुफीद है। इसका सुरमा बीनाई को कुव्वत देता है। हिल किया हुआ सूखा शहद के साथ जुजाम (कोढ़) को मुज़र्रब है।

ज्योतिष शास्त्रानुसार गुणधर्म—प्रवाल की मंगल ग्रह के साथ मैत्री है।

अतः मंगल ग्रह के कुदृष्टित होने पर जितनी भी बीमारियाँ होती हैं, प्रवाल के सेवन करने से वे समस्त नाश होती हैं।

मंगल ग्रह के कुपित होने पर अधोलिखित व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

रक्तपित्तोद्भवा पीडा दद्रुरोगो भगन्दरः।
रक्तदुष्टिप्रमेहश्च विस्फोटकभयं महत्॥
दुष्टव्रणोऽस्थिभंगश्च रक्तस्रावोऽग्निजं भयम्।
अर्शो रक्तातिसारश्च व्याधयः कुजसम्भवाः॥

अर्थात्—रक्तपित्त, दाद, भगन्दर, रक्तदोष, प्रमेह, फोड़े फुन्सियों का समस्त शरीर में हो जाना, दुष्ट व्रण (कारबंकल), हड्डियों का टूट जाना, बवासीर, रक्तातिसार यानी खूनी दस्तों का आना आदि बीमारियाँ होती हैं। शरीर के किसी भी अंग से रक्त का जाना, अग्निदाह का भय, इन समस्त व्याधियों में प्रवाल का दान, धारण एवं भस्म का उपयोग करने से रोग नष्ट होते हैं।

शोधन—(१) तण्डुलीयद्रवेणेह दोलायंत्रे तु यामकम्।
प्रवालक परिस्विन्नं शुद्धिमायात्यनुत्तमम्॥

अर्थात्—चावल के पानी में दोलायंत्र द्वारा एक याम तक परिस्विन्न करने से प्रवाल की उत्तम शुद्धि हो जाती है।

(२) सज्जीक्षार के पानी के साथ एक याम तक पकाने से भी उत्तम शुद्धि हो जाती है।

(३) जयन्ती के स्वरस में एक याम तक परिस्विन्न दोलायंत्र द्वारा करने से भी प्रवाल की शुद्धि हो जाती है।

भस्मीकरण—(१) विशोधित प्रवाल को गोदुग्ध में पीसकर छोटी-छोटी टिकड़ी बना लें और गजपुट में एक ही बार फूंक देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

(२) विशोधित प्रवाल को केले के रस के साथ पीसकर टिकड़ी बनाकर गजपुट में फूंकने से उत्तम भस्म बन जाती है।

(३) घृत कुमारी के स्वरस में विशोधित प्रवाल को पीसकर टिकड़ी बनावें और तीन बार गजपुट में फूंक दें। बहुत बढ़िया भस्म तैयार हो जायगी।

पिष्टीकरण—बहुत से विद्वानों का, जिनमें मुख्यतः हकीम हैं मत है प्रवाल की भस्म न बनाकर प्रवाल पिष्टी ही उत्तम लाभदायक होती है। इसके लिये विशोधित प्रवाल को गुलाब जल में इस प्रकार पीसे कि प्रवाल की

वारितर भस्म या चूर्ण बन जावे । पिष्टीकरण में प्रवाल को अग्नि सम्पर्क में नहीं लाया जाता ।

मात्रा—प्रत्येक व्यक्ति के बल काल आयु की अपेक्षा रखते हुये आधी रत्ती से लेकर २ रत्ती तक एक बार में प्रवालभस्म दी जा सकती है ।

आमयिक प्रयोग—

(१) प्रदर रोग में—प्रवालभस्म २ रत्ती, यशदभस्म २ रत्ती को मिलाकर २ मात्रा बनायें । प्रातः सायं मधु के साथ लगातार तीन मास तक सेवन करने से असाध्य प्रदर रोग भी नष्ट हो जाता है ।

(२) राजयक्ष्मा की खांसी में—अभ्रक भस्म २ रत्ती, वंशलोचन ४ रत्ती, रजतमाक्षिक ६ रत्ती, प्रवालभस्म ५ रत्ती । ३ मात्रा

इन तीन मात्रा को प्रतिदिन प्रातः ८ बजे, २ बजे एवं ८ बजे रात्रि में मधु के साथ लगातार कुछ दिन सेवन करने से राजयक्ष्माजन्य खाँसी में अवश्य लाभ होता है ।

(३) बच्चों की कुकुर खांसी में—प्रवाल भस्म ४ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, रससिन्दूर १ रत्ती, पीपल चूर्ण १० रत्ती, कण्टकारी चूर्ण १० रत्ती। १० मात्रा ।

इन १० मात्रा को प्रतिदिन २-२ घण्टे के बाद मधु के साथ छोटे बच्चों की कुकुरखांसी में देना चाहिये । अवश्य लाभ होता है ।

(४) बच्चों के निमोनिया रोग में—प्रवाल ४ रत्ती, कायफलचूर्ण १० रत्ती, अभ्रकभस्म २ रत्ती, रससिन्दूर २ रत्ती, । १० मात्रा ।

इन १० मात्रा को प्रतिदिन २-२ घण्टे के बाद मधु के साथ छोटे बच्चों के निमोनिया रोग में दें । बच्चों के निमोनिया को 'डब्बा डब्बा' रोग भी कहते हैं । लाभ अवश्य होता है ।

(५) दमा और खांसी में—प्रवालभस्म ६ रत्ती, रससिन्दूर ४ रत्ती, वंशलोचन ८ रत्ती, शुक्तिभस्म ८ रत्ती । ४ मात्रा ।

इन ४ मात्रा को प्रतिदिन ४-४ घण्टे में मधु के साथ लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से दमा और खांसी अवश्य बन्द हो जाते हैं ।

(६) शोथ रोग में—प्रवाल भस्म ६ रत्ती, रससिन्दूर ४ रत्ती। ४ मात्रा ।

इन ४ मात्रा को प्रतिदिन ४-४ घण्टे में पुनर्नवा एवं गोखरू के २ तोला क्वाथ के साथ सेवन करने से समस्त शरीर की सूजन अवश्य दूर होती है ।

(७) मूत्रावरोध एवं मूत्रकृच्छ्रता में—प्रवालभस्म ६ रत्ती, रससिन्दूर ४ रत्ती । ४ मात्रा ।

इन ४ मात्रा को प्रतिदिन ४-४ घण्टे में गोखरू के १ तोला क्वाथ के साथ सेवन करने से 'पेशाब का रुक जाना' रोग अवश्य दूर होता है। तथा जब पेशाब में जलन होने लगती है तब प्रवालभस्म ६ रत्ती तीन मात्रा में चावल के धोवन के साथ सेवन करने से अवश्य दूर होती है।

(८) अधिक पसीने के आने पर—प्रवालभस्म १० रत्ती की चार मात्रा बनाकर प्रत्येक ४-४ घण्टे में मधु के साथ लेने से किन्हीं भी कारणों से पसीना निकलता हो अवश्य बन्द हो जाता है। विशेष कर रात्रि-स्वेद तो अवश्य दूर होता है।

(९) रक्तार्श और मधुमेह में— मद्रास प्रान्त के तामिल भाषाभाषी वैद्य रक्तार्श में प्रवालपिष्टी, मधु के साथ नागकेशर पीसकर देते हैं। मधुमेह में बिल्व पत्र की पीसी हुई लुगदी १ तोला और प्रवाल पिष्टी ६ रत्ती मिलाकर सुबह शाम देते हैं।

(१०) वटशुङ्गादियोगः

न्यग्रोधशुङ्गासनकं प्रवालचूर्णञ्च सवर्णवत्सायाः।
गोक्षीरं परिपीतं पुत्रं प्रकरोति पुष्यर्क्षे॥ (वंगसेन)

वड वृक्ष के अंकुर, असना वृक्ष का त्वचाचूर्ण, तथा प्रवालभस्म समान मात्रा में मिलाकर (जिस स्त्री को पिलाना है उसके वर्ण वाली बछड़े की माता) गौ के दूध में पकाकर पुष्य नक्षत्र में पिलानेसे पुत्र ही उत्पन्न होता है।

(११) प्रवालप्रयोगः

पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे।
(चरक संहिता-चिकित्सास्थान २६)

प्रवालचूर्ण को चावलों के धोवन के साथ पीनेसे कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

प्रवालशङ्खत्रिफलाचूर्णं मधुघृतप्लुतम्।
पिप्पली गैरिकञ्चेति लेहो हिक्कानिवारणः॥ (भावप्रकाश)

प्रवालभस्म, शंखभस्म, त्रिफला, पीपल और गेरु समान मात्रा में लेकर घोट लें। मधु और घृत के साथ चाटने से हिचकी का नाश होता है।

(१२) दृष्टिप्रसादनाञ्जनम्

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला।
मरिचानि च तद्वर्तीः कारयेच्चापि पूर्ववत्॥
दृष्टिस्थैर्यार्थमेतत्तु विदध्यादञ्जने हितम्॥ (सुश्रुतसंहिता)

स्रोतोंजन, प्रवाल, समुद्रफेन, मैनसिल और कालीमिरच का चूर्ण समान

मात्रा में लेकर बकरी के दूध में घोटें और ताम्रपात्र में ७ दिन रखा रहने दें। पश्चात् वर्तिकायें बनालें।

नेत्रों में प्रतिदिन अंजन करने से नेत्रदृष्टि स्थिर होती है।

(१३) इन्दुशेखरो रसः

शिलाजत्वभ्रसिन्दूर-प्रवालायोरजांसि च ।
माक्षिकञ्च तथा तालं समभागानि मर्दयेत् ॥
भृङ्गराजस्य पार्थस्य निर्गुण्ड्या वासकस्य च ।
स्थलपद्मस्य पद्मस्य कुटजस्य च वारिणा ॥
भावयित्वा वटीः कृत्वा कलायपरिमाणतः ।
यथादोषानुपानेन गर्भिणीषु प्रयोजयेत् ॥
गर्भिणीनां ज्वरं घोरं श्वासं कासं शिरोरुजम् ।
रक्तातिसारं ग्रहणीं वान्ति वह्नेश्च मन्दताम् ॥
आलस्यमपि दौर्बल्यं हन्यादेष न संशयः ।
कलेरादौ ससर्जेमं भगवानिन्दुशेखरः ॥

(भैषज्यरत्नावली स्त्री रोगाधिकार)

शिलाजीत, अभ्रक, रससिन्दूर, प्रवाल, लोह, स्वर्णमाक्षिक और हरतालभस्म समान मात्रा में लेकर भृंगराज, अर्जुन, समालु, अडूसा, कमल और कुडे की छाल के क्वाथ की भावना देकर मटर के बराबर गोलियाँ बना लें। रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से गर्भिणी ज्वर, श्वासकास, शिरःशूल, रक्तातिसार, ग्रहणी, वमन, मन्दाग्नि, आलस्य और दौर्बल्य निश्चय से नष्ट होते हैं। इस रस को सर्वप्रथम भगवान शंकर ने बनाया था।

(१४) भानुचूडामणिरसः

सुवर्णरससिन्दूरं प्रवालं वंगमेव च ।
लोहं ताम्रं तेजपत्रं यमानीं विश्वभेषजम् ॥
सैन्धवं मरिचं कुष्ठं खदिरं द्विहरिद्रकम् ।
रसाञ्जनं माक्षिकं च रसभागञ्च कारयेत् ॥
वारिणा वटिका कार्या रक्तिद्वयप्रमाणतः ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ (रसेन्द्रसारसंग्रह)

रससिन्दूर, स्वर्ण, प्रवाल, वंग, लोह, ताम्र तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, कालीमिरच, कूठ, खैरसार, हल्दी, दारुहल्दी और रसोत का चूर्ण—समान मात्रा में लेकर, जल के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

इन गोलियों को सवेरे उठकर सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

(१५) बहुमूत्रान्तको रसः

बीजबन्धेक्षुरक्षीतवांशी - सिह्लकसालिमम् ।
शुक्तिविद्रुमयोर्भूती मज्जानावक्षपथ्ययोः ॥
शिलाजतु त्रुटिर्वंगः सर्वं सञ्चूर्ण्यं माक्षिकैः ।
वटीर्वंधान सुखदां बहुमूत्रप्रमेहिणाम् ॥

(सिद्धभैषज्यमणिमार्तंण्ड)

बीजबन्द, मखाना, मुलेठी, वंशलोचन, गंधविरोजासत्व, सालममिश्री, शुक्तिभस्म, प्रवालभस्म, हरीतकी और बहेड़े की मज्जा, शिलाजीत छोटी इलायची तथा वंगभस्म—इन सबों को समान मात्रा में लेकर मधु के साथ घोटें और गोलियां बनालें। बहुमूत्र और प्रमेह के रोगियों के लिये यह रस सुखप्रद है।

(१६) पित्तप्रभञ्जनो रसः

प्रवालं माक्षिकं तुल्यं त्रिवारमार्द्रवारिणा ।
मर्दितं दुग्धसितया सेव्यं पित्तनिवारणे ॥
मध्वाज्येन सितायुक्तं सेवितं वातपित्तनुत् ।
पित्तप्रभञ्जनो योगः पित्तं नाशयति क्षणात् ॥ (रसचन्द्रिका)

प्रवाल और स्वर्णमाक्षिक भस्म को समान मात्रा में लेकर अद्रक रस की तीन बार भावना देकर रख लें। इसको दूध मिश्री के साथ सेवन करने से पित्त रोग शान्त होते हैं एवं मधु, घृत और मिश्री के साथ सेवन करने से वात तथा पित्त रोग नष्ट होते हैं।

(१७) हेमनाथरसः

सूतं गन्धं हेमताप्यं प्रत्येकं कोलसम्मितम् ।
अयश्चन्द्रं प्रवालं च वङ्गं चार्धं विनिक्षिपेत् ॥
फणिफेनस्य तोयेन कदलीकुसुमेन च ।
उदुम्बररसेनापि सप्तधा परिमर्दयेत् ॥
वल्लमात्रां वटीं खादेद्यथाव्याध्यनुपानतः ।
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्र सुदारुणम् ॥
सोमरोगक्षयं चैव श्वासं कासमुरःक्षतम् ।
हेमनाथरसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण भाषितः ॥
प्रयोजितो भवेन्नृणां विशेषफलदायकः ॥

(भैषज्यरत्नावली, रसचन्द्रिका)

प्रथम पारद गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार करें और इसमें स्वर्णभस्म, स्वर्ण माक्षिकभस्म, अभ्रकभस्म, चांदीभस्म, प्रवालभस्म और

वंगभस्म प्रत्येक ½-½ मात्रा में डालकर अफीम के पानी, केले के फूलों का रस तथा गूलर के रस की ७-७ भावना दें और ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

रोगानुसार अनुपान की ठीक २ व्यवस्था करने से २० प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, क्षय, श्वासकास और उरक्षत रोग नष्ट होते हैं कृष्णात्रय मुनि का बनाया हुआ यह रस विशेष फलदायक है।

(१८) रसेन्द्रवटी

रसेन्द्रगन्धाश्मजतुप्रवाललौहानि वैद्यः समभागिकानि।
रसेन्द्रपादप्रमितञ्च हेम विभाव्य निम्बाशनवह्नितोयैः॥
ततो वटीर्वल्लमिता विमर्द्य विधाय बुद्ध्या बहुवारवारा।
फलत्रिकक्वाथजलेन वापि प्रातः प्रयुञ्ज्यात् प्रकराम्बुना वा॥
रसेन्द्रवट्यास्यगदान् निहन्ति वातामयान् मेहगणाञ्ज्वरांश्च।
करोति वह्नेर्बलवीर्ययोश्च पुष्टिं विशेषेण रसायनीयम्॥

(भैषज्यरत्नावली)

पारद गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर लें। इसमें शिलाजीत, प्रवालभस्म और लोहभस्म ४-४ भाग तथा स्वर्णभस्म १ भाग मिलावें और नीम त्वक्, असना एवं चीते के क्वाथ की अलग २ भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

उपयोग—मुखरोग, वातरोग, प्रमेह, ज्वर नष्ट होते हैं एवं बलवीर्य की वृद्धि होती है।

अनुपान—इस रस के सेवन करने के बाद सिहसोडा क्वाथ, त्रिफला क्वाथ अगर क्वाथ का पान करें।

(२०) मिहरोदयवटी

लोहमभ्रं सुवर्णञ्च विद्रुमं राजपट्टकम्।
सर्वं समं प्रदातव्यं सिन्दूरञ्च द्विभागिकम्॥
एरण्डमूलजेनैव रसेन परिभावयेत्।
क्वाथैस्तथा जटामांस्या वटी रक्तिद्वयात्मिका॥
पथ्यापयोऽनुपानेन वटीयं मिहिरोदया।
अर्धावभेदकं हन्ति पीता वातमनन्तकम्॥
सूर्यावर्तं तथा शङ्खञ्चैकजञ्च द्विदोषजम्।
त्रिदोषजं शिरोरोगं साध्यासाध्यं न संशयः॥ (आयुर्वेदप्रकाश)

लोह, अभ्रक, स्वर्ण, प्रवाल और कान्तलोह भस्म १—१ भाग, रससिन्दूर २ भाग—इन सबों को मिलाकर एरण्डमूल और जटामांसी के क्वाथ की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—इन गोलियों को हरीतकी के चूर्ण के साथ सेवन करने से, आधासीसी, अनन्तवात, सूर्यावर्तक, शंखक एवं साध्य असाध्य सभी प्रकार के शिरोरोग नष्ट होते हैं।

(२२) सर्षपाद्या गुटिका

सर्षपाः पृश्निपर्णी च तगरं पद्मकेसरम्।
हरितालं विडङ्गानि रोधद्राक्षाप्रियङ्गवः॥
चन्दनं बालकं मांसी विशाला समनःशिला।
श्रीवासको निशा दार्वी पद्मकं ध्याममेव च॥
सुरसप्रसवाः स्पृक्का रोचना गन्धनाकुली।
अम्लकं कुङ्कुमं दारु स्थौणेयं गिरिकर्णिका॥
जात्याः पुष्पं प्रवालं च पिप्पली मरिचानि च।
सूक्ष्मैला सिन्दुवारं च यष्ट्याह्वं रोध्रमेव च॥
एतान्यङ्गानि पट्त्रिंशत्पुष्येण परिपोषिताम्।
गुटिकां कोलमात्रां च छायाशुष्कां हि कारयेत्॥
नस्यपानाञ्जने चैषा सम्यग्लेपे च पूजिता।
पुंसां सर्वविषार्तानां राजद्वारे रणे तथा॥
वणिजां लाभकामानां विवादे च सदा हिता।
सरीसृपा न तिष्ठन्ति यत्र तिष्ठति वेश्मनि॥
अनया संप्रलिप्तस्य चौरवह्निभयं कुतः।
सर्पदष्टभयं चापि जलराशिभयं न च॥

(गदनिग्रह)

सरसो, पृष्णिपर्णी, तगर, कमलकेशर, हरतालभस्म, बायविडंग, लोध, मुनक्का, फूलप्रियंगु, चन्दन, सुगन्धबाला, जटामांसी, इन्द्रायण की जड़, मैनसिल, श्रीवासक, हल्दी, दारुहल्दी, कमल, तुलसी, ब्राह्मी, गोरोचन, रास्ना, लकुच, केसर, देवदारु, थुनेर, कोयल, चमेली के पुष्प, प्रवालभस्म, पीपल, कालीमिर्च, छोटी इलायची, सम्भालु और मुलेठी—इन सबों का (समान मात्रा में) चूर्ण पुष्य नक्षत्र में लेकर जल से पीसकर ५-५ माशे की गोलियां बनाकर छाया में सुखालें। इस गोली के नस्य, पान, आलेपन और अंजन करने से तथा पूजन करने से सब प्रकार के विष नष्ट होते हैं। इस गोली के पास में होने से राजदरबार, युद्ध, व्यापार एवं वाद-विवाद प्रतियोगिता में सदा लाभ ही होता है। जिस घर में ये गोलियां रखी होती हैं उसमें सर्प बिच्छू नहीं आ पाते। अंग में लेप करने से, चोर आदि सर्पदंष्ट और जल का भय नहीं रहता।

(२३) रक्तपित्तकुलकण्डनरसः

(रक्तपित्तकुठारो रसः)

शुद्धपारदबलिप्रवालकं हेममाक्षिकभुजङ्गरङ्गकम् ।
मारितं सकलमेतदुत्तमं भावयेत् पृथक् पृथग् द्रवैस्ततः ॥
चन्दनस्य कमलस्य मालतीकोरकस्य वृषपल्लवस्य च ।
धान्यवारणकणाशतावरी-शाल्मलीवटजटामृतस्य च ॥
रक्तपित्तकुलकण्डनाभिधो जायते रसवरोऽस्रपित्तिनाम् ।
प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं सेवितस्तु वसुकृष्णनिर्मितः ॥
नास्त्यनेन सममत्र भूतले भेषजं किमपि रक्तपित्तिनाम् ॥

(रसराजसुन्दर, रसकामधेनु, रसचन्द्रिका, योगरत्नाकर, योगतरंगिणी, बृहद्योगतरंगिणी, बृहन्निघण्टुरत्नाकर)

पारद गंधक समान मात्रा में मिलाकर कज्जली तैय्यार कर लें। इसमें प्रवाल, स्वर्णमाक्षिक, सीसा और वंगभस्म समान मात्रा में डालकर चन्दन, कमल, मालती की कलियाँ, अडूसा के पत्ते, धनियां, गजपीपल, शतावर, सेमल की छाल, बड़ पेड़ की दाढ़ी—इन सबों के क्वाथ से अलग अलग १—१ भावना देकर पश्चात् घृत से घोट कर सुरक्षित रख दें।

सेवन—मधु और अडूसा के रस के साथ सेवन करने से रक्तपित्त का नाश होता है। संसार में इस रस के समान रक्तपित्त नाशक और दूसरी औषध नहीं है।

(२४) वसन्तमालिनीरसः

(मालिनीवसन्तः)

वैक्रान्तमभ्रं रवितार्प्यरौप्यगन्धप्रवालं रसभस्म लौहम् ।
सटङ्कणं शम्बुकभस्म सर्वं समस्तमेतच्च वरीरजन्योः ॥
द्रवैर्विमर्द्यं मुनिसंख्यया च कस्तूरिका शीतकरेण पश्चात् ।
वल्लप्रमाणो मधुपिप्पलीभ्यां जीर्णज्वरे धातुगते प्रदेयः ॥
छिन्नोद्भवा सत्त्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु च योजनीयः ।
कृच्छ्राश्मरीं निहन्त्याशु मातुलुङ्गार्द्रकैर्द्रवैः ।
रसो वसन्तनामाऽयं मालिनीपदपूर्वकः ॥

(रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका)

वैक्रान्त, अभ्रक, ताम्र, स्वर्णमाक्षिक, रौप्य, गन्धक, प्रवाल, पारद, लोह, सुहागा और शम्बूक भस्म समान मात्रा में लेकर शतावर और हल्दी के क्वाथ की ७-७ भावना देकर सुखा लें। अब कस्तूरी और कपूर द्रव की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—इस रस को पीपल और मधु के साथ सेवन करने से धातुओं में पहुँचा हुआ जीर्ण ज्वर नष्ट होता है। गुडूचिसत्व और मिश्री के साथ लेने से प्रमेह तथा बिजोरा नीबू और अद्रक रस के साथ लेने से अश्मरी का नाश होता है।

मोती और प्रवाल के प्रयोग

प्रवालप्रयोगः

प्रवालमुक्ताञ्जनशंखचूर्णं लिह्यात्तथा काञ्चनगैरिकोत्थम्।

(सुश्रुतसंहिता चि० ४४)

प्रवाल, मोती, अञ्जन, शंख, स्वर्ण और गेरुभस्म समान मात्रा में लेकर खरल करके रख लें। इसे मधु के साथ सेवन करने से पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं।

कन्दर्परसः

रसं गन्धं प्रवालञ्च काञ्चनं गिरिमृत्तिका।
वैक्रान्तं रजतं शंखं मौक्तिकञ्च समं समम्॥
न्यग्रोधस्य कषायेण भावयित्वा च सप्तधा।
वल्लोन्मानां वटीं कृत्वा त्रिफला क्वाथवारिणा॥
सुरप्रियस्यार्जुनस्य क्वाथेनाभाम्भसापि वा।
औपसर्गिकमेहस्य शान्त्यर्थं विनियोजयेत्॥ (भैषज्यरत्नावली)

पारद, गन्धक, प्रवाल, स्वर्ण, गेरू, वैक्रान्त, चांदी, शंख और मोतीभस्म समान मात्रा में लेकर बड़ की कलियों के रस की ७ भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—इस रस को त्रिफला, देवदारु और अर्जुन के क्वाथ के साथ सेवन करने से औपसर्गिक मेह नष्ट होता है।

कामदुघारसः

मौक्तिकस्य प्रवालस्य मुक्ताशुक्तिभवस्य च।
वराटिकायाः शङ्खस्य भस्मानि गैरिकं तथा॥
गुडूच्किोद्भवं सत्वं समभागानि कारयेत्।
अजाजिकासिताभ्याञ्च गृह्णीयाद्रक्तिकाद्वयम्॥
जीर्णज्वरभ्रमोन्मादपित्तरोगेषु शस्यते।
अम्लपित्ते सोमरोगे योज्यः कामदुघारसः॥ (रसयोगसागरः)

मोतीभस्म, प्रवालभस्म, मोतीसीपभस्म, कपर्दिका (कौडी) भस्म,

शंखभस्म, गेरुभस्म, गुडूचिसत्व,—इन समस्त औषधियों को समान मात्रा में लेकर खरल कर लें।

सेवन—जीरे का चूर्ण एवं मिश्री के साथ २ रत्ती की मात्रा में जीर्णज्वर, भ्रम, उन्माद, पित्तरोग, अम्लपित्त, तथा सोमरोग में इस कामदुघारस का सेवन करें।

वातचिन्तामणिरसः (बृहद्)

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं रौप्यमभ्रकम्।
लौहात् पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं त्र्यसम्मितम् ॥
भस्मसूतं सप्तकञ्च कन्यारसविमर्दितम्।
वल्लमात्रा वटी कार्या भिषग्भिः परियत्नतः ॥
यथाव्याध्यनुपानेन नाशयेद्रोगसंकुलम्।
वातरोगं पित्तकृतं निहन्ति नात्र चिन्तनम् ॥
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी कन्दर्पसमविक्रमः।
दृष्टः सिद्धफलश्चायं वातचिन्तामणिस्त्विह ॥ (भैषज्यरत्नावली)

स्वर्णभस्म ३ भाग, चांदी और अभ्रकभस्म २-२ भाग, लोहभस्म ५ भाग, प्रवाल मथा मोतीभस्म ३-३ भाग, पारदभस्म ७ भाग,—इन सबों को मिलाकर घृतकुमारी रस की भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

सेवन—रोगानुसार अनुपान की व्यवस्था ठीक २ करके इस रस के सेवन करनेसे वात और पित्तरोग निश्चय ही नष्ट होते हैं। वृद्ध भी जवानों से होड़ लगाने लगता है और कामदेव के समान पराक्रमी हो जाता है। इस रस के सेवन से प्रत्यक्ष फल की इष्ट सिद्धि होती है।

त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः

भागत्रयं (द्वयम्) स्वर्णभस्म त्रिभागं तारमभ्रकम्।
लौहात्पञ्च प्रवालं च मौक्तिकं त्र्यसम्मितम् ॥
भस्मसूतं सप्तकं च सर्वं मर्द्यं तु कन्यया।
छायाशुष्का वटी कार्या छागीदुग्धानुपानतः ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं गुल्मं चापि प्रमेहनुत्।
जीर्णज्वरहरश्चायमुन्मादस्य निकृन्तनः ॥

(रसायनसारसंग्रह, रसचन्द्रिका)

स्वर्ण भस्म ३ भाग (अथवा २ भाग), चांदी और अभ्रकभस्म २-२ भाग, लोहभस्म ५ भाग, प्रवाल और मोतीभस्म ३-३ भाग, पारदभस्म ७ भाग—इन सबों को मिलाकर (घृतकुमारी के रस की भावना देकर गोलियाँ बना लें और छाया में सुखाकर रख दें।

सेवन—इस रस को बकरी के दूध के साथ सेवन करने से क्षय, कास, गुल्म, प्रमेह, जीर्ण ज्वर, उन्माद, और जलोदर, अण्डकोषवृद्धि आदि रोग नष्ट होते हैं।

सर्वाङ्गसुन्दररसः

हेमाभ्रगन्धरसटङ्कणताप्यताम्रं चन्द्राग्निबाणरसयुग्मगुणाब्धिमानम्।
चूर्णीकृतं सविषमौक्तिकविद्रुमांशं जम्बीरनीरफलसत्त्वपुटेन पक्वम्॥
सिद्धो भवेद्रससिताहविषावलीढः सर्वाङ्गसुन्दर इति प्रथितो गदारिः।
जीर्णज्वरारुचिबलक्षयसर्वमेह—हृद्रुग्भयभ्रमगुदोदररोगहन्ता॥

(रसकामधेनु)

पारद ६ भाग, गंधक ५ भाग—दोनों को मिलाकर कज्जली तैयार कर लें और इसमें स्वर्णभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म ३ भाग, सुहागाभस्म २ भाग, स्वर्ण माक्षिकभस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, मीठातेलिया चूर्ण, मोती और प्रवालभस्म १-१ भाग मिलाकर (जम्बीरी नीबू के रस और त्रिफला क्वाथ की १-१ भावना देकर गोला बनावें और शरावसम्पुट में बन्द करके पुटपाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल लें और पीसकर सुरक्षित रख दें।

सेवन—मिश्री और घृत के साथ इस रसके सेवन करने से जीर्ण ज्वर, अरुचि, बलक्षय, प्रमेह, हृदयरोग, मानसिकभय, भ्रम, गुदारोग और उदर रोग नष्ट होते हैं।

बृहज्ज्वरचूडामणिरसः

सुवर्णसिन्दूरं स्वर्णं लोहं तारं मृगाङ्कजम्।
जातीफलं जातिकोषं लवङ्गञ्च त्रिकण्टकम्॥
कर्पूरं गगनञ्चैव चोचं मुसलि-तालकम्।
प्रत्येकं कर्षमानन्तु तुरङ्गञ्च द्विकार्षिकम्॥
विद्रुमं भस्मसूतञ्च मौक्तिकं माक्षिकं तथा।
राजपट्टं शिखिग्रीवं सर्वं सञ्चूर्ण्य यत्नतः॥
खल्ले तु चूर्णमादाय भावयेत् परिकीर्तितैः।
निर्गुण्डीफञ्जिकावासारविमूल-त्रिकण्टकैः॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, ज्वराधिकार)

स्वर्णसिन्दूर, स्वर्णभस्म, लोहभस्म, चांदीभस्म, कस्तूरी, जावित्री, जायफल, लौंग, गोखरु, कपूर, अभ्रकभस्म, दालचीनी और शुद्ध हरताल १।-१। तोला लें। शुद्ध गंधक, पारदभस्म, प्रवालभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, राजपट्ट

(चुम्बक) भस्म एवं तुत्थकभस्म—२॥-२॥ तोला लें और समस्त वस्तुओं को परस्पर मिला लें। संभालु, भारंगी, अडूसा, मदार (अर्क) जड़, गोखरु—इन सबों की अलग २ एक एक भावना दें और वटी बना लें।

इस रस के सेवन से साध्य असाध्य सभी (आठ) प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

हेमगर्भरसः

रसस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धं कनकस्य च।
तदर्धं ताम्रकं चैव मौक्तिकं विद्रुमं समम् ॥
तत्समानेन बलिना सर्वं खल्वे विमर्दयेत्।
कृत्वा तु गोलकं पश्चात् पचेद् भूधरयन्त्रके ॥
मृदुना वह्निना चैव स्वांगशीतं समुद्धरेत्।
बलिमेव च सम्यग् वै षड्गुणं जारयेत्सुधीः ॥
हेमगर्भरसो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
कासश्वासेषु सर्वेषु शूलेषु च हितस्तथा ॥
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वान् रोगाञ्जयेत् परम् ॥

(बृहन्निघण्टुरत्नाकर)

पारद ४ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, ताम्र, मोती और प्रवालभस्म १-१ भाग, गंधक सबके बराबर ले लें और खरल में घोटकर गोला बना लें। इसके बाद भूधर यंत्र में मन्द २ अग्नि पर पाक करें स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर पुनः समस्त द्रव्य के बराबर गंधक मिलाकर भूधरयंत्र में पाक करें। इसी प्रकार ६ बार गंधक मिलाकर गंधक का जारण करें।

सेवन—इस रस के सेवन करने से श्वास, कास, शूल तथा रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हैं।

वसन्ततिलकरसः

लौहं वङ्गं माक्षिकञ्च सुवर्णञ्चाभ्रकस्तथा।
प्रवालतारं मुक्ता च जातिकोषफलं तथा ॥
एतेषां समभागेन चातुर्जातञ्च मिश्रितम्।
मर्दयेत् त्रिफलाक्वाथे वटिकां कुरु यत्नतः ॥
रोगांश्च भिषजो ज्ञात्वा अनुपानं यथायथम्।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातकम् ॥
वायुं नानाविधं हन्ति ह्यपस्मारं विशेषतः।
विसूचिकाक्षयोन्मादशरीरस्तब्धमेव च ॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव नानारोगं विशेषतः ॥

(भैषज्यरत्नावली)

लोह, वंग, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्ण, अभ्रक, प्रवाल, चांदी और मोतीभस्म तथा जायफल, जावित्री, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर चूर्ण—समान मात्रा में लेकर त्रिफला क्वाथ की भावना दें और गोलियां बना लें।

सेवन—इस रस को रोगानुसार अनुपान व्यवस्था करके सेवन करने से वात, पित्त, कफ और सान्निपातिक रोग एवं विशेषकर अनेक वायुरोग, अपस्मार, विषूचिका, क्षय, उन्माद, शरीर स्तब्धता और प्रमेह रोग नष्ट होते हैं।

वसन्ततिलकरसः

हेम्नो भस्मकतोलकं घनयुगं लौहास्त्रयः पारदा-
श्चत्वारो नियतन्तु वङ्गयुगलं चैकीकृतं मर्दयेत्।
मुक्ताविद्रुमयो रसेन समता गोक्षूरवासेक्षुणा
सर्वं वन्यकरीषकेण सुदृढं तप्तं पचेत् सप्तधा॥
कस्तूरीघनसारमर्दितरसः पश्चात् सुसिद्धो भवेत्
कासश्वाससपित्तवातकफजित् पाण्डुक्षयादीन् हरेत्।
शूलादिग्रहणीविषादिहरणो मेहाश्मरीविंशतिं
हृद्रोगापहरो ज्वरादिशमनो वृष्यो वयोवर्द्धनः॥
श्रेष्ठः पुष्टिकरो वसन्ततिलको मृत्युञ्जयेनोदितः॥

(रसराजसुन्दर, रसरत्नाकर, रसेन्द्रसारसंग्रह, भैषज्यरत्नावली)

स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, लोहभस्म ३ तोला, पारदभस्म और गन्धक ४-४ तोला, वंगभस्म २ तोला, मोती और प्रवालभस्म ४-४ तोला—इन सबों को मिलाकर गोखरू के क्वाथ, अडूसा तथा ईख के रस की १-१ भावना देकर गोला बना लें और शरावसम्पुट में बन्द करें और लघु पुट में पाक करें। यह विधि ७ बार करें और कस्तूरी तथा कर्पूर जल की १-१ भावना दें। बस यह रस तैयार समझें।

सेवन—इस रस के सेवन करने से श्वास, कास, वात, पित्त, कफ, पाण्डु, क्षय, शूल, संग्रहणी, विषरोग, प्रमेह, अश्मरी, हृद्रोग, ज्वरादि नष्ट होते हैं। एवं यह तिलक रस श्रेष्ठ पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक और आयुवर्धक है और यहां तक कि मृत्यु तक पर विजय प्राप्त करता है।

सर्वेश्वररसः

ताप्यष्टङ्कणहेमताररसकं गन्धं यथाभागिकं
ताम्रं विद्रुमशुक्तिजं शिखरिजं द्विघ्नं तथा भागतः।
वङ्गायोऽहिरसेन्द्रभूतिगगनं वैक्रान्तकान्तं त्रिशः
तत्सम्मर्द्य विभावयेत् त्रिदिवसं यष्टित्रिजाताम्बुभिः॥

मुस्तोशीरवरावृषामृतशटीकन्या-विदारीवरी-
नीरैर्गोपयसेक्षुरैश्च मुसलीगोलं पचेद् यामकम् ।
मन्दाग्नौ च मृगाङ्कवत् पुनरसौ भाव्यस्ततो भावने
द्वे कस्तूरिमृगाङ्कयोर्मधुकणायुक्तोऽस्य वल्लो जयेत् ॥
मेहार्शोग्रहणीज्वरोदरमरुद्व्याधिं रुजं कामलां
पाण्डुं कुष्ठभगन्दरं ज्वरगणं कृच्छ्रं च शुक्रक्षयम् ॥

(रसराजसुन्दर, बृहद्योगतरंगिणी)

स्वर्णमाक्षिक, सुहागा, स्वर्ण, चांदी, खपरिया और शुद्ध गन्धक भस्म १-१ भाग, ताम्र, प्रवाल, मोती और अपामार्गक्षार २-२ भाग, वंग, लोह, नाग, पारद, अभ्रक, वैक्रान्त और कान्तलोहभस्म—३-३ भाग, इन सबों को मिलाकर मुलेठी, त्रिजात, नागरमोथा, खस, त्रिफला, अडूसा, मीठातेलिया, कचूर, घृतकुमारी, विदारी कन्द, शतावर, गौ का दूध, ईख का रस, मूसली—इन प्रत्येक के क्वाथ, रस की ३-३ दिन तक भावना देकर गोला बना लें और एक वस्त्र से लपेटकर शरावसम्पुट में बन्द करें और नमक से भरी हुई हांडी के मध्य में रखकर हांडी के मुख को शराव से बन्द करके १ प्रहर तक मन्द-मन्द अग्नि की आंच दें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर पीस लें और कस्तूरी तथा कपूर-जल की २-२ भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—पीपल चूर्ण और मधु के साथ इस रस को सेवन करने से प्रमेह, अर्श, संग्रहणी, ज्वर, उदररोग, वातव्याधि, कामला, पाण्डु, कुष्ठ, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र और शुक्रक्षय नष्ट होता है।

बृहत्काञ्चनाभ्ररसः

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम् ।
विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रञ्च वङ्गकम् ॥
कस्तूरिका लवङ्गञ्च जातीकोषैलवालुकम् ।
प्रत्येकं बिन्दुमात्रञ्च सर्वं मर्द्यं प्रयत्नतः ॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य केशराजरसेन च ।
अजाक्षीरेण सम्भाव्यं प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद् भिषक् ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च ।
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव दोषत्रयसमुद्भवान् ॥
सर्वरोगान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥

(रसराजसुन्दर, रसरत्नाकर, रसेन्द्रसारसंग्रह, भैषज्यरत्नावली)

स्वर्ण, रससिन्दूर, मोती, लोह, अभ्रक, प्रवाल, वैक्रान्त, चांदी, ताम्र और बंगभस्म, करतूरी, लौंग, जावित्री और एलुवा समान मात्रा में लेकर मिला लें और घृतकुमारी तथा काले भृङ्गराज के रस एवं बकरी के दूध की ३-३ दिन तक भावना देकर ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—रोगानुसार ठीक २ अनुपान की व्यवस्था करके इस रस के सेवन करने से क्षय, श्वास-कास तथा २० प्रकार के प्रमेह इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट होता है।

चूडामणिरसः

मृतं सूतं प्रवालञ्च स्वर्णं तारं च वङ्गकम् ।
शुल्वं मुक्तां तीक्ष्णमभ्रं सर्वमेकत्र योजयेत् ॥
जलेन पिष्ट्वा वटिका कार्या वल्लप्रमाणतः ।
धातुस्थं सन्निपातोत्थं ज्वरं विषमसम्भवम् ॥
कामशोकसमुद्भूतं त्रिदोषजनितं तथा ।
कासं श्वासञ्च विविधं शूलं सर्वाङ्गसम्भवम् ॥
शिरोरोगं कर्णशूलं दन्तशूलं गलग्रहम् ।
वातपित्तसमुद्भूतं ग्रहणीं सर्वसम्भवाम् ॥
आमवातं कटीशूलमग्निमान्द्यं विषूचिकाम् ।
अर्शांसि कामलां मेहं मूत्रकृच्छ्रादिकञ्च यत् ॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिकीर्तितः ॥

(रसचन्द्रिका, रसेन्द्रसारसंग्रह (ज्वराधिकार))

पारदभस्म, प्रवालभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, बंगभस्म, ताम्रभस्म, मोतीभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म तथा अभ्रकभस्म समान भाग ले लें और जल के सहयोग से घोटकर बल कालानुसार वटी बना लें।

उपयोग—धातुस्थज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, कामज तथा शोकज-ज्वर, श्वास, कास, समस्त शरीर में उत्पन्न किसी भी प्रकार का शूल (वेदना), शिरोरोग, कर्णशूल, दन्तशूल, गले का रुकना (स्वरभंगादि) वात, पित्त, एवं सन्निपातज, संग्रहणी, आमवात, कटिवेदना, अग्निमांद्य, विशूचिका (कॉलरा) अर्श, कामला, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों को विष्णु भगवान् का सुदर्शन चक्र जिस प्रकार रा क्षसों को नाश करने में समर्थ है उसी प्रकार उपरोक्त रोगों को नाश कर मे यह चूडामणि रस भी समर्थ है। यह रस शिवजी का कथित है।

बृहच्चिन्तामणिरसः

रसगन्धकलोहानि ताम्रं तारं हिरण्यकम् ।
हरितालं खर्परञ्च कांस्यं वङ्गञ्च विद्रुमम् ॥
मुक्तामाक्षिककाशीशं शिलाटङ्कणकं समम् ।
कर्पूरञ्च समं दत्वा भावना सप्तसप्तकम् ॥
भार्ङ्गी वासा च निर्गुण्डी नागवल्ली जयन्तिका ।
कारवेल्लं पटोलञ्च शक्राशनं पुनर्नवा ॥
आर्द्रकञ्च ततो दद्यात् प्रत्येकं वारसप्तकम् ।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरविनाशनः ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
द्वन्द्वजं विषमारब्धं धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत् ॥
कासं श्वासं तथा शोथं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च विनाशयेत् ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, ज्वराधिकार)

शुद्धपारद, शुद्धगंधक लेकर कज्जली बनालें और इस कज्जली में लोहभस्म, ताम्रभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, हरताल सत्व, खर्परभस्म, कांस्यभस्म, वंगभस्म, प्रवालभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्धकासीस, शुद्ध मनःशिला, टंकण (सुहागा) भस्म और कपूर समान मात्रा में लेकर मिला लें। अब भारङ्गी, अडूसा, संभालु, पान, जयन्ती, करेला, परवल, भांग, पुनर्नवा तथा अदरक के रस की अलग २ सात-सात बार प्रत्येक की भावना दें और सुरक्षित रखें। यह रस समस्त ज्वरों का नाशकारक है। वात, पित्त, कफ एवं सन्निपातज ज्वरों को व द्वन्द्वज, विषमज्वर, धातुगतज्वरों को भी नष्ट करता है। श्वास कास, शोथ, पाण्डु, हलीमक, प्लीहा, अग्रमांस और यकृद्-रोगों को नष्ट करता है।

विषमज्वरान्तकलौहम् (बृहद्)

शुद्धसूतं तथा गन्धं कारयेत् कज्जलीं शुभाम् ।
मृतसूतं हेमतारं लौहमभ्रञ्च ताम्रकम् ॥
तालसत्वं वङ्गभस्म मौक्तिकं सप्रवालकम् ।
सुवर्णमाक्षिकञ्चापि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥
निर्गुण्डी नागवल्ली च काकमाची स पर्पटी ।
त्रिफला कारवेल्लञ्च दशमूली पुनर्नवा ॥
गुडूची वृषकश्चापि सभृङ्गकेशराजकैः ।
एतेषाञ्च रसेनैव भावयेत् त्रिदिनं पृथक् ॥

गुञ्जामानां वटीं कुर्याच्छास्त्रविन्कुशलो भिषक्।
पिप्पली गुडकेनैव लिहेच्च वटिकां शुभाम्॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
अभिघाताभिचारोत्थं जीर्णज्वरं विशेषतः॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, (ज्वराधिकार))

शुद्धपारद, शुद्धगंधक की उत्तम कज्जली बनालें। पारदभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, हरतालसत्त्व, वंगभस्म, मोतीभस्म, प्रवालभस्म, स्वर्ण माक्षिकभस्म—इन सब भस्मों को समान मात्रा में लेकर कजली में मिलाकर संभालु, पान, मकोय, पित्तपापड़ा, त्रिफला, करेला, दशमूल, पुनर्नवा, गिलोय, अडूसा (वासा), भृङ्गराज इन प्रत्येक की अलग-अलग तीन-तीन बार भावना देकर एक रत्ती की मात्रा में वटी वना लें।

सेवन—पिप्पली चूर्ण एवं गुड के साथ सेवन करावें। यह रस साध्य असाध्य ८ प्रकार के ज्वरों को नाश करता है परन्तु किन्हीं चोट लगने से जायमान ज्वर अथवा जीवाणुओं के संक्रमण से जायमान ज्वर में विशेषकर लाभप्रद है।

मुक्तापञ्चामृतरसः

मुक्ताप्रवालखुरवङ्गकम्बुशुक्ति-भूतिं वसूदधिहगिन्दुसुधांशुभागाम्।
इक्षो रसेन सुरभेः पयसः विदारीकन्यावरीसुरसहंसपदीरसैश्च॥
सम्मर्द्य यामयुगलं च वनोपलाभिर्दद्यात्पुटानि मृदुलानि च पञ्च पञ्च।
पञ्चामृतं रसविभुं भिषजा प्रयुज्य गुञ्जाचतुष्टयमितं चपलारजश्च॥
पात्रे निधाय चिरसूतपयस्विनीनां दुग्धेन च प्रपिबतः खलु चाल्पभोक्तुः।
जीर्णज्वरः क्षयमियादथ सर्वरोगाः स्वीयानुपानकलिताश्च शमं प्रयान्ति॥

(योगरत्नाकर, बृहन्निघण्टुरत्नाकर)

मोतीभस्म ८ भाग, प्रवालभस्म ४ भाग, वंगभस्म २ भाग, शंख और शुक्तिभस्म १—१ भाग, इन सबों को मिलाकर ईख के रस की २ प्रहर तक भावना देकर गोला बनालें। गोले को सुखाकर शरावसम्पुट में बन्द करके लघु पुट में पाक करें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर पुनः ईखरस में घोटें और गोला बनाकर शरावसम्पुट में बन्द करके लघु पुट में पाक करें। इसी विधि के अनुसार गोदुग्ध, विदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावर, तुलसी और हंसपदी के रस की भावना दे देकर ५-५ बार पुट दें।

सेवन—४ रत्ती की मात्रा में इस रस को पीपल चूर्ण और चिर प्रसूत गोदुग्ध के साथ सेवन करने से जीर्णज्वर और क्षयादि समस्त रोग नष्ट होते हैं। भोजन स्वल्प करते रहना चाहिये।

वैक्रान्तस्य च भागैकं द्विभागं हेमभस्मनः ।
अभ्रकस्य च भागौ द्वौ मुक्ताविद्रुमयोस्तथा ॥
वङ्गभस्म त्रिभागं स्याद् रसस्य भस्मनस्तथा ।
चत्वारोऽस्य च भागाश्च सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥
जम्बीराद्भिश्च गोदुग्धैरुशीरोद्भववारिभिः ।
वृषद्रवैरिक्षुनीरैः सप्तधा भावयेत्पृथक् ॥
भावितो रसराजः स्याद् वसन्तकुसुमाकरः ।
वल्लोऽस्य मधुना लीढः सोमरोगं क्षयं नयेत् ॥
मूत्रातिसारं मेहांश्च मूत्राघाताश्मरीरुजम् ।
तृष्णां दाहं तालुशोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥
बल्यः पुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिवर्हणः ।
हन्त्यजीर्णं ज्वरं श्वासं क्षयरोगं कृशाङ्गताम् ॥
नातः परतरं किंचिद्रसायनमिहेष्यते ॥

(भैषज्यरत्नावली, बहुमूत्राधिकार)

वैक्रान्तभस्म १ भाग, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, मोतीभस्म, प्रवालभस्म प्रत्येक २ भाग, वंगभस्म ३ भाग, पारदभस्म ४ भाग, इन सबों को लेकर खरल करें और जम्बीररस, गौ का दूध, खस और अडूसाक्काथ एवं ईखुरस— प्रत्येक की ७–७ भावना दें और सुखाकर चूर्ण कर लें। यही वसन्तकुसुमाकर नामक रस है।

सेवन—मधु के साथ २ रत्ती की मात्रा में लें।

उपयोग—सोम रोग, मूत्रातिसार, प्रमेह, मूत्राघात, पथरीरोग, तृष्णा दाह, तालुशोष रोग को तो निश्चय ही नाश करता है। बल पुष्टिकर एवं वीर्य वर्धक है। प्रायः समस्त रोगों का नाश करते हुये अजीर्ण, ज्वर, श्वास, क्षय रोग, शारीरिक दौर्बल्य इन समस्त रोगों का नाश करता है।

काञ्चनाभ्ररसः

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम् ।
विद्रुममभया तारं कस्तूरी च मनःशिला ॥
प्रत्येकं बिन्दुमात्रं च सर्वं मर्द्यं प्रयत्नतः ।
वारिणा वटिका कार्या द्विगुंजाफलमानतः ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं तथा दोषानुसारतः ।
नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्मपित्तहरं तथा ।
प्रमेहान्विंशतिं चैव दोषत्रयसमुत्थितान् ॥

अशीतिं वातजान्रोगान्नाशयेत्सद्य एव हि।
बलवृद्धिं वीर्य्यवृद्धिं लिंगजाड्यं करोति च॥
रसोऽयं सुश्रुतप्रोक्तो वाजीकरणमुत्तमम्।
काञ्चनस्य समा कान्तिर्मदनस्य समं वपुः॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय रसोऽयं काञ्चनाभ्रकम्॥ (रसरत्नाकर)

स्वर्ण, रससिन्दूर, मोती, लोह, अभ्रक, प्रवाल, चांदी और मैनसिलभस्म, हरीतकी और कस्तूरी चूर्ण १।—१। तोला लेकर पानी के संयोग से घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—रोगानुसार अनुपान व्यवस्था ठीक २ करके इस रस को सेवन करने से क्षय, कास, कफरोग, पित्तरोग २० प्रकार के प्रमेह, ८० प्रकार के वातरोग नष्ट होते हैं। बलवीर्य की वृद्धि होकर शिश्नेन्द्रिय में ताकत आ जाती है। स्वर्ण के समान कान्ति और कामदेव के समान सुन्दरता आ जाती है। इस रस को सुश्रुत ने श्रेष्ठ वाजीकर बतलाया है। इस रस का सेवन प्रातःकाल उठकर करना चाहिए।

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररसः

मूर्च्छितं रसकर्षैकं तदर्धं जारिताभ्रकम्।
तारं ताप्यञ्च रसजं रसकं ताम्रकं तथा॥
मौक्तिकं विद्रुमं लौहं गिरिजं गैरिकं शिला।
गन्धकं हेमसारञ्च पलार्द्धञ्च पृथक् पृथक्॥
क्षीरिणी सुरवल्ली च शोथघ्नी गणिकारिका।
झिण्टीमल्ली ज्योत्स्निका च सतिक्ता तु सुदर्शना॥
अग्निजिह्वा पूतितैला शूर्पपर्णी प्रसारिणी।
प्रत्येकस्वरसं दत्वा मर्दयेत्त्रिदिनावधि॥
भक्षयेत्पर्णखण्डेन चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः।
महाग्निकारको रोगसङ्करघ्नः प्रयोगराट्॥
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान्।
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥
कासं श्वासं प्रमेहञ्च सशोथं पाण्डुकामले।
ग्रहणीं क्षयरोगञ्च सर्वोपद्रवसंयुतम्॥
(रसराजसुन्दर, भैषज्यरत्नावली)

रससिन्दूर १। तोला, अभ्रकभस्म ७॥ माशा, चांदी, स्वर्णमाक्षिक, खर्पर, ताम्र, मोती, प्रवाल, लोह, गेरू, मैनसिल, गन्धक और तुत्थभस्म २॥-२॥ तोला, रसौंत और शिलाजीत २॥-२॥ तोला—इन सबों को मिलाकर स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी), गुडूचि, पुनर्नवा, अरणी, कटसरैया, कुडे की छाल, पटोल,

कुटकी, सुदर्शना, कलिहारी, करंज, मालकांगनी, शालिपर्णी और गंध प्रसारणी के क्वाथ एवं रस की पृथक् २ तीन-तीन दिन तक भावना देकर सुखाकर सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को ४ रत्ती की मात्रा में पान के वीड़े के साथ सेवन करने से मन्दाग्नि, एक रोग के साथ में और भी उपद्रवरूप में होनेवाले रोग, सन्तत, सतत, अन्येद्यु तृतीयक, चतुर्थक (समस्त विषमज्वर) कास-श्वास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और सोपद्रव क्षयरोग नष्ट होते हैं।

सर्वाङ्गसुन्दररसः

रसं गन्धञ्च तुल्यांशं द्वौ भागौ टङ्कणस्य च।
मौक्तिकं विद्रुमं शङ्खभस्म देयं समांशिकम् ॥
हेमभस्मार्द्धभागञ्च सर्वं खल्ले विमर्दयेत्।
निम्बूद्रवेण सम्पिष्य पिण्डिकां कारयेत्ततः ॥
पश्चाल्लघुपुटं दत्त्वा सुशीतञ्च समुद्धरेत्।
हेमभस्मसमं तीक्ष्णं तीक्ष्णार्द्धं दरदं मतम् ॥
एकीकृत्य समस्तानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
ततः पूजां प्रकुर्वीत रसस्य दिवसे शुभे ॥
सर्वाङ्गसुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिकृन्तनः।
वातपित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषे मेहे गुल्मे भगन्दरे।
निहन्ति वातजान् रोगाञ् श्लैष्मिकांश्च विशेषतः ॥
पिप्पली - मधुसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि वा।
भक्षयेत् पर्णखण्डेन सितया चार्द्रकेण वा ॥ (भैषज्यरत्नावली)

प्रथम पारद गन्धक १-१ भाग लेकर कज्जली बना लें और इसमें सुहागा-भस्म २ भाग, मोती, प्रवाल और शंखभस्म १–१ भाग, स्वर्णभस्म ½ भाग डालकर नीबू के रस की भावना देकर गोला बना लें। इस गोले को शराव-सम्पुट में बन्द करके लघुपुट में पाक करें। स्वांगशीतल होनेपर औषध द्रव्य निकालकर इसमें तीक्ष्ण लौहभस्म ½ भाग, हिंगुल ¼ भाग मिलाकर एक दिल करके सुरक्षित रख दें। इस रस के प्रयोग करने के पूर्व किसी शुभ दिन में शिवजी का पूजन करें। यह रस राजयक्ष्मा, वातपित्तज्वर, घोर सन्निपात, अर्श, ग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर तथा विशेषकर वातज और कफज रोगों को नष्ट करता है।

अनुपान—पिप्पली चूर्ण, मधु, घृत, पान, मिश्री तथा अद्रक का रस औषध सेवन के पश्चात् ले लिया करें।

क्षयकुलान्तकरसः

गुडूचिकासत्त्वरसेन्द्रभस्म कृष्णाभ्रकं माक्षिकलोहवङ्गम् ।
प्रवालमुक्ताफलहेमपत्रं सर्वैः समानं त्रिफलारसेन ॥
सम्मर्दयेत्सप्तदिनं भिषग्भिर्वल्लैकमात्रं मधुना समेतम् ।
भक्षेद्द्विकालं सकलामयघ्नं सर्वक्षये जीर्णज्वरे च मेहे ॥
पाण्ड्वामये पित्तमये च कासे सरक्तपित्ते तमके तथैव ।
यथाऽनुपानं खलु योजनीयं पण्ढत्वनाशं प्रकरोति सम्यक् ॥
वाजीकरं पुष्टिबलं ददाति रसायनं सर्वक्षयापहारि ॥

(रसचन्द्रिका)

गुडूचिसत्व, पारद, कृष्णाभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, लोह, वंग, प्रवाल, मोती, और स्वर्णभस्म समान मात्रा में लेकर त्रिफला के क्वाथ की ७ दिन तक भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें।

सेवन—मधु के साथ इस रस के सेवन करने से सब प्रकार के क्षय रोग, जीर्णज्वर, प्रमेह, पाण्डु, पित्तज कास, रक्तपित्त, तमकश्वास और नपुंसकता का नाश होता है। यह रस वाजीकारक, पुष्टिकारक, बलदायक और रसायन है।

व्रजेश्वररसः
(व्रजरसः)

कर्षं खर्परसत्त्वस्य षण्माषे हेम्नि विद्रुते ।
षण्निष्कसूतं गन्धाश्मन्यष्टनिष्के प्रवेशितम् ॥
प्रवालमुक्ताफलयोश्चूर्णं हेमसमांशयोः ।
क्रमाद्द्वित्रिचतुर्निष्कं मृतायःसीसभास्करम् ॥
चाङ्गेर्यम्लेन यामांस्त्रीन्मर्दितं चूर्णितं पृथक् ।
द्वौ निष्कौ नीलकटुकीव्योमायस्कान्ततालकात् ॥
अङ्कोलकङ्गुणीबीजतुत्थेभ्यश्चतुरः पृथक् ।
अष्टौ च टङ्कणक्षाराद्वराटानां च विंशतिः ॥
महाजम्बीरनीरस्य प्रस्थद्वन्द्वेन पेषयेत् ।
एतदष्टशरावस्थं शुद्धं क्षार्यास्तुपस्य च ॥
करीषभारे च पचेद् मरिचाद्भावितादपि ।
मधुनाऽऽलोडितं लिह्यात्ताम्बूलीपत्रलेपितम् ॥
गतेऽस्य घटिकामात्रे प्रतियामं च पथ्यभुक् ।
नो चेदुद्दीपितो वह्निः क्षणाद्धातून्पचत्यतः ॥
दिनमेकं निषेव्यैनं त्याज्यान्यामण्डलं त्यजेत् ।

ततः परं यथेष्टाशी द्वादशाब्दं सुखी भवेत् ॥
एकमेकं दिनं भुक्त्वा वर्षे वर्षे महारसम् ।
वर्षादौ च त्यजेत्याज्यं द्वादशाब्दाज्जरां जयेत् ॥
एष वज्ररसो नाम क्षयपर्वतभेदनः ॥

(रसराजसुन्दर, रसरत्नाकर, रसचन्द्रिका, रसरत्नसमुच्चय,)

द्रव रूप ६ माशा स्वर्ण में १। तोला खर्पर सत्व मिला लें तथा ३० माशे पारद में ४० माशा गन्धक डालकर कज्जली बना लें। अब इन समस्त द्रव्य को परस्पर मिलाकर इसमें ६-६ माशा मोती और प्रवाल भस्म भी मिला दें और अलग रख दें।

१० माशा लोहभस्म, १५ माशा शीशकभस्म, २० माशा ताम्रभस्म इन तीनों भस्मों को मिलाकर तीन दिन तक चांगेरी के रस की भावना दें और उपर्युक्त स्वर्णादि योग को भी इसी में मिला लें। अब इस औषध द्रव्य में अभ्रक, लोह, कान्तलोह, और हरतालभस्म, नील की जड़ और कुटकी १०–१० माशे, अंकोल के बीज, कंगनी के बीज तथा तुत्थभस्म २०–२० माशे, सुहागा तथा कपर्दिकाभस्म ४०–४० माशे—इन सबों को मिलाकर जम्बीरी नीबू के २ सेर रस की भावना देकर सुखा लें और गोला बना लें। इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके ६४ सेर तुषाग्नि में पाक करें। स्वांगशीतल होनेपर औषध द्रव्य सुरक्षित रख दें।

सेवन—२ माशा की मात्रा में इस रस के साथ ½ माशा गन्धक, काली मिर्च और मधु को मिलाकर पान के बीड़े में रख कर सेवन करें।

सावधानी—इस रस की १ मात्रा लेने के घड़ी भर बाद ही भूख लगने पर पथ्याहार का सेवन करें और १–१ प्रहर के बाद दुग्ध पान करते रहें। भोजन न करने से धातुओं का पचन हो जाता है अतएव भोजन दुग्धाहार अवश्य करें। एक दिन औषध सेवन के पश्चात् ४० दिन तक औषध न लेकर केवल पथ्याहार लेते रहें। इसी एकबार के औषध सेवन से मनुष्य १२ वर्ष तक स्वस्थ रह सकता है एवं यदि प्रतिवर्ष १–१ बार औषध सेवन करके १२ वर्ष में १२ बार सेवन कर ले तो मनुष्य की वृद्धावस्था ही आ नहीं पाती। क्षय रोग को तो यह रस ऐसे नष्ट करता है जैसे बिजली से पर्वत नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

महाकनकसिन्दूररसः

रसगन्धकनागाश्च रसको माक्षिकाभ्रके ।
कान्तविद्रुममुक्तानां बंगभस्म च तारकम् ॥
भस्म कृत्वा प्रयत्नेन प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।

सर्वतुल्यं शुद्धहेमभस्म कृत्वा प्रयोजयेत् ॥
मर्दयेत्त्रिदिनं सर्वं हंसपादीरसैर्भिषक् ।
ततो वै गोलकान्कृत्वा काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥
रुद्ध्वा तत्काचकूपीं च सप्तवस्त्रेण वेष्टिताम् ।
ततो वै सिकतायन्त्रे त्रिदिनं चोक्तवह्निना ॥
पश्चात्तं स्वाङ्गशीतं च पूर्वोक्तरसमर्दितम् ।
विनिक्षिप्य करण्डेऽथ सम्पूज्य रसराजकम् ॥
महाकनकसिन्दूरो राजयक्ष्महरः परः ।
पाण्डुरोगं श्वासकास-कामलाग्रहणीगदान् ॥
क्रिमिशोफोदरावर्तगुल्ममेहगुदाङ्कुरान् ।
मन्दाग्निं छर्दिमरुचिमामशूलहलीमकान् ॥
ज्वरान्द्वन्द्वादिकान्सर्वान् सन्निपातांस्त्रयोदश ।
पैत्तरोगमपस्मारं वातरोगान्विशेषतः ॥
रक्तपित्तप्रमेहांश्च स्त्रीणां रक्तस्रवांस्तथा ।
विंशतिश्लेष्मरोगांश्च मूत्ररोगान्निहन्त्यसौ ॥
हेमवर्ण्यश्च बल्यश्च आयुःशुक्रविवर्धनः ।
महाकनकसिन्दूरः काश्यपेन विनिर्मितः ॥

(रसराजसुन्दर, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, (क्षयाधिकार ।)

पारद, गंधक, सीसाभस्म, खर्परभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, प्रवालभस्म, मोतीभस्म, वंगभस्म, चांदीभस्म—१।,१। तोला एवं स्वर्णभस्म इन समस्त औषधियों के समान (अर्थात् १३॥। तोला)। सर्वप्रथम पारद गंधक की कज्जली बना लें और उसमें अन्य समस्त औषधियाँ डालकर तीन दिन तक हंसपादी के रस से घोटें और टिकिया में बना लें। अब बालुका यंत्र में आतशी शीशी में रखकर मृदु, मध्यम और तीव्राग्नि तीन दिन तक दें। स्वांगशीतल होनेपर औषध निकालकर हंसपादी के स्वरस में पुनः १ दिन घोटें और करण्ड में सुरक्षित रख दें।

उपयोग—राजयक्ष्मा, पाण्डु, श्वास-कास, कामला, संग्रहणी, कृमि, शोथ, उदररोग, गुल्म, प्रमेह, अर्श, मन्दाग्नि वमन, अरुचि, आमशूल, हलीमक, द्वन्दज्वर, १३ प्रकार के सन्निपात, विशेषकर वातरोग, रक्तपित्त, स्त्रियों का रजाधिक्य, २० कफरोग, एवं समस्त मूत्ररोगों का नाशकारक है। बलवर्ण, आयु और शुक्रवर्धक है। इस रस का काश्यप ऋषि ने वर्णन किया है।

प्रवालपञ्चामृतरसः

प्रवालमुक्ताफलशङ्खशुक्तिकपर्दिकानां च समांशभागम् ।

प्रवालमत्र द्विगुणं प्रयोज्यं सर्वैः समांशं रविदुग्धमेव ॥
एकीकृतं तत्खलु भाण्डमध्ये क्षिप्त्वा मुखे बन्धनमत्र योज्यम् ।
पुटं च दद्यादतिशीतलं च उद्धृत्य तद्भस्म क्षिपेत् करण्डे ॥
नित्यं द्विवारं प्रतिपाकयुक्तं बलप्रमाणं हि नरेण सेव्यम् ।
आनाहगुल्मोदरप्लीहकास-श्वासाग्निमान्द्यान्कफमारुतोत्थान् ॥
अजीर्णमुद्गारहृदामयघ्नं ग्रहण्यतीसारविकारनाशनम् ॥
मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाश्मरीम् ।
नाशयेन्नात्र सन्देहो सत्यं गुरुवचो यथा ॥
पथ्याश्रितं भोजनमादरेण समाचरेन्निर्मलचित्तवृत्त्या ।
प्रवालपंचामृतनामधेयो योगोत्तमः सर्वगदापहारी ॥

(रसचन्द्रिका, योगरत्नाकर, बृहन्निघण्टुरत्नाकर)

मोती, शंख, शुक्ति और कपर्दिकाभस्म १-१ भाग, प्रवालभस्म २ भाग—इन सबों को मिलाकर (समस्त औषध द्रव्य के बराबर) मदार-दूध की एक दिन तक भावना दें और गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में आंच दें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर पीस लें और सुरक्षित रख दें।

सेवन—३ रत्ती की मात्रा में प्रातः सायम् सेवन करने से आनाह, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, कासश्वास, अग्निमांद्य, कफ और वात के रोग, अजीर्ण, उद्गार (डकार), हृदय के रोग, ग्रहणी, अतिसार प्रमेह, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे गुरु के वचन कभी असत्य नहीं होते।

पथ्य—भोजन बहुत ही आदर प्रेम से करें। चित्तवृत्ति को ठीक बनाये रखें। यह रस समस्त रोगों को नष्ट करता है।

लक्ष्मीविलासरसः

सुवर्णमुक्ताफलमभ्रकञ्च रसेन्द्रभस्मायसविद्रुमं च ।
कस्तूरिकाकुङ्कुमजातिपत्रीलवङ्ग एला त्वक् तुल्यभागिकम् ॥
सम्मर्दयेत्ताम्बुलिकारसेन घृष्ट्वा त्र्यहं वल्लसितं च दद्यात् ।
सितामधुभ्यां सह सेवनीयः सर्वामयं हन्ति न संशयोऽत्र ॥
कामस्य वृद्धिं प्रकरोति सम्यग्नारीशतं गच्छति नित्यमेव ।
षण्ढोऽल्पवीर्यो बहुमूत्रमेही यथानुपानेन च सेवयेत ।
क्षयापहं धातुविवर्द्धनं च लक्ष्मीविलासो रसराज एषः ॥

(रसचन्द्रिका)

स्वर्ण, मोती, अभ्रक, पारद, लोह और प्रवालभस्म, कस्तूरी, केशर, जावित्री,

लौंग, इलायची और दालचीनी—इन सबों को समान मात्रा में लेकर पान के रस में ३ दिन तक घोटें और सुखाकर सुरक्षित रख दें।

सेवन—३ रत्ती की मात्रा में मिश्री और मधु के साथ सेवन करने से पुंस्त्व शक्ति बढ़कर प्रतिदिन सौ-सौ स्त्रियों के साथ समागम करने का सामर्थ्य आ जाता है। नपुंसक, अल्पवीर्य और बहुमूत्र के रोगियों को रोगानुसार अनुपान के साथ लेना चाहिये। यह एक धातुवर्धक और क्षयनाशक रसायन है।

सूतेन्द्ररसः

मुक्ताफलं प्रवालं च सुवर्णं रौप्यमेव च।
रसो गन्धश्च तत्सर्वं तोलैकैकं प्रकल्पयेत्॥
रक्तोत्पलैः पत्ररसैर्मर्दयेत्पत्तलीकृते।
मर्दयेत्तत्पुनर्दत्वा गन्धं माषचतुष्टयम्॥
तन्मध्ये गन्धकं दत्वा मर्दयेत्तदनन्तरम्।
क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुध्य मुखं ततः॥
वालुकायन्त्रमध्यस्थां कृत्वा काचघटीं ततः।
पाकस्तत्र तथा कार्यो भवेद्यामत्रयं यथा॥
काचपात्रे समाकर्षेत् सिद्धं सूतं ततः परम्।
भक्षयेद्रक्तिकाः पञ्च रोगैराक्रान्तमानवः॥
पथ्यादि पूर्वरोगोक्तं यत्नतः कारयेद्भिषक्।
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ॥
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गं च नाशयेत्।
मासेनैकेन सूतेन्द्रो रोगनाशाय कल्पते॥
शालयो मुद्गयुक्ताश्च गोधूमा भोजने हिताः।
घृतं गव्यं तथा क्षीरं स्निग्धं पथ्यं प्रयोजयेत्॥

(रसरत्नसमुच्चय, रसचन्द्रिका)

पारद गंधक १-१ तोला लेकर कज्जली तैय्यार कर लें। इस कज्जली में मोती, प्रवाल, स्वर्ण और चांदीभस्म १-१ तोला डालकर लाल कमल के पत्तों के रस की भावना देकर ४ माशा गंधक मिलाकर पुनः अच्छी तरह से घोट लें। अब इस औषध द्रव्य को आतशी शीशी में भरकर शीशी का मुख बन्द करके वालुका यंत्र में पाक करें। स्वांगशीतल होनेपर औषध द्रव्य को निकाल कर कांच की बोतल में सुरक्षित रख दें।

सेवन—५ रत्ती की मात्रा में इस रस के एक मास तक सेवन करने से

दुर्बल व्यक्ति बलवान् हो जाता है तथा ध्वजभंग नष्ट होकर वीर्य-वृद्धि होती है।

बृहच्चूडामणिरसः

कस्तूरिका विद्रुमरौप्यलौहं तालं हिरण्यं रसभस्म दद्यात्।
सुवर्णसिन्दूरलवङ्गमुक्ता चोचं घनं माक्षिकराजपट्टम् ॥
गोक्षूरजातीफलजातिकोषं मरीचकर्पूरकतुत्थकञ्च।
प्रगृह्य सर्वं हि समं प्रयत्नादथाश्वगन्धां द्विगुणं हि वैद्यः ॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं मुनिसंख्यया।
निर्गुण्डीफञ्जिकावासारविमूलत्रिकण्टकैः ॥
तद्वीर्यं कथयिष्यामि वातिकं पैत्तिकं ज्वरम्।
कफोद्भवं द्विदोषोत्थं त्रिदोषजनितन्तथा ॥
सन्ततं सततं हन्ति तृतीयकचतुर्थकौ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च विषमं भूतसम्भवम् ॥
नाशयेदचिरादेव वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिभाषितः ॥
(रसेन्द्रसारसंग्रह (ज्वराधिकार)

कस्तूरी, प्रवाल, चांदी, लोह, हरताल, स्वर्ण, पारद, मोती, अभ्रक, स्वर्ण माक्षिक, राजपट्ट—इन सबों की भस्म समान भाग और लौंग, दालचीनी, गोखरु, जायफल, जावित्री, कालीमिर्च, तुत्थ (शुद्ध)—ये भी समान भाग लेकर एवं असगंध चूर्ण २ भाग लें और परस्पर मिला लें। सम्भालु, भृङ्गराज, अडूसा, आक और गोखरु—इनकी जड़ के रस की पृथक् २ प्रत्येक की ७-७ भावना देकर सुरक्षित रख दें।

उपयोग—वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज एवं सन्निपातज, सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, चतुर्थक, विषमज्वर, एक भूतज्वर को शीघ्र नष्ट करता है।

विषमज्वरान्तकलौहम्

हिङ्गूलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलीम्।
पर्पटीरसवत्पाच्यं सूताङ्घ्रिहेमभस्मकम् ॥
लौहं ताम्रमभ्रकञ्च रसस्य द्विगुणं तथा।
वङ्गकं गैरिकञ्चैव प्रवालञ्च रसर्द्धिकम् ॥
मुक्ताशङ्खशुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम्।
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः।

अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणाहिङ्गुससैन्धवम् ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम् ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्यमथापि वा ।
सन्ततं सतताख्यञ्च विषमज्वरनाशनम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मेहमरोचकम् ॥
ग्रहणीमामदोषञ्च कासं श्वासं च तत्र तत् ।
मूत्रकृच्छ्रातिसारञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णप्रसादनम् ।
विषमज्वरान्तकं नाम्ना धन्वन्तरिप्रकाशितम् ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, रसराजसुन्दर, भैषज्यरत्नावली,)

प्रथम हिंगुलोत्थपारद और गंधक १-१ तोला लेकर कज्जली तैयार कर लें और इस कज्जली को पर्पटी के समान पाक करें तथा इसमें स्वर्णभस्म $\frac{1}{4}$ तोला, लोह, ताम्र, अभ्रकभस्म २-२ तोला, वंग, गेरु और प्रवालभस्म $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ तोला, मोती, शंख और शुक्तिभस्म $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{4}$ तोला—इन सबको मिलाकर जल से घोटकर गोला बना लें और इस गोले को दो बड़ी सीपों के मध्य में सम्पुट करके कपड़मिट्टी कर दें और लघु पुट में पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को २ रत्ती की मात्रा में सेवन करने से आठ प्रकार के ज्वर, प्लीहा, यकृत् गुल्म, सन्तत, सतत, विषम ज्वर, कामला, पाण्डु, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहण, आमदोष, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र और अतिसार नष्ट होता है। अग्निदीपन और बलवर्ण की अभिवृद्धि होती है।

अनुपान—पीपल, हींग और सेंधानमक के चूर्ण।

वज्रेश्वररसः

मृतसूताद् द्वादशांशं मृतं वज्रं प्रकल्पयेत् ।
द्वाभ्यां तुल्यं मृतं कान्तं कान्ततुल्यं मृताभ्रकम् ॥
तत्सर्वं भृङ्गजैर्द्रावैर्मर्दितं भावयेत्त्र्यहम् ।
त्र्यहं गोक्षुरकद्रावैः क्षौद्रैर्माषं ततो लिहेत् ॥
रसो वज्रेश्वरो नाम वज्रकायकरो नृणाम् ।
चतुर्मासैर्जरां हन्ति जीवेद् ब्रह्मदिनं किल ॥
भृङ्गराजस्य पञ्चाङ्गं चूर्णयेत् त्रिफलासमम् ।
पलैकं मधुना लेह्यं कार्मकं परमं रसे ॥

(रसरत्नाकर रसायनखण्ड)

पारदभस्म १२ भाग, हीराभस्म १ भाग और इन दोनों के बराबर अर्थात्

१३–१३ भाग कान्तलोहभस्म और अभ्रकभस्म लेकर भृंगराज और गोखुरू के क्वाथ में ३–३ दिन तक घोटें।

सेवन—मधु के साथ एक माशाकी मात्रा में सेवन करें इसके सेवन से शरीर वज्र के समान मजबूत हो जाता है। यदि चार मास तक सेवन किया जाय तो बुढ़ापा न आकर आयु बढ़ जाती है अर्थात् बुढ़ापा जल्दी नहीं आता।

त्रिफला और भृंगराज का चूर्ण (इस उपरोक्त रस के सेवन करने के बाद) अनुपान रूप से सेवन करना चाहिये। इन चूर्ण की मात्रा ५ तोला है।

बृहत्क्षयकेशरीरसः

मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहञ्च ताम्रकम्।
मृतं नागञ्च कांस्यञ्च मण्डूरं विमलं तथा॥
वङ्गं खर्परकं तालं शङ्खटङ्कणमाक्षिकम्।
वैक्रान्तं कान्तलौहञ्च स्वर्णं विद्रुममौक्तिकम्॥
वराटं मणिरागञ्च राजपट्टञ्च गन्धकम्।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्यं खल्लमध्ये विनिक्षिपेत्॥
मर्दयेत्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेत्त्रिदिनं लघु।
भावयेत्पुटयेदेभिर्वारांस्त्रींश्च पृथक् पृथक्॥
मातुलुङ्गवरावह्निस्वम्लवेतसमार्कवम्।
हयमारार्द्रकरसैः पाचितो लघुर्वह्निना॥
वातपित्तकफोत्क्लेशाञ्ज्वरान् सम्मर्दितानपि।
सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान्॥
सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसा पुनः।
मधुकार्द्रकसंयुक्तस्तद्व्याधिहरणौषधैः॥
सेवितो हन्ति रोगान् हि व्याधिवारणकेशरी।
क्षयमेकादशविधं शोषं पाण्डुं क्रिमिं जयेत्॥
कासं पञ्चविध श्वासं मेहमेदोमहोदरम्॥
अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं हलीमकम्।
सर्वव्याधिहरो बल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः॥ (भैषज्यरत्नावली)

अभ्रक, पारद, लौह, ताम्र, सीसा, कांस्य, मण्डूर, रौप्यमाक्षिक, बंग, खर्पर, हरताल, शंख, सुहागा, स्वर्णमाक्षिक, वैक्रान्त, कान्तलोह, स्वर्ण, प्रवाल, मोती, कपर्दिका, हिंगुल और चुम्बकभस्म तथा गन्धक समान मात्रा में लेकर चीता के क्वाथ एवं मदार के दूध की १–१ भावना देकर शरावसम्पुट में बन्द करके तीन दिन तक लघुपुट में पाक करें। यह विधि तीन बार करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल लें और बिजौरे नीबू के रस की भावना देकर सुखा लें। अब त्रिफला, चीता, अम्लवेतस, भृङ्गराज, कनेर और अद्रक के क्वाथ एवं रस

की पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर मन्द २ अग्नि पर सुखा लें और सुरक्षित रख छोड़ें।

सेवन—इस रस के सेवन करने से वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज ज्वर नष्ट होता है। सर्वांगवात, एकांगवात, ११ प्रकार का क्षय, शोष, पाण्डु, क्रिमि, कासश्वास, प्रमेह, मेद, उदरवृद्धि, अश्मरी, शर्करा, शूल, प्लीहा, गुल्म और हलीमक नष्ट होता है। यह बल, वीर्य और बुद्धिवर्धक रसायन है।

अनुपान—पीपल, मिश्री, मधु और अद्रक का रस।

क्षयकेसरी रसः

मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहञ्च ताम्रकम्।
मृतं नागञ्च कांस्यञ्च मण्डूरं विमलं मृतम्॥
वङ्गं खर्परकं तालं शङ्खटङ्कणमाक्षिकम्।
मृतं स्वर्णं मृतं कान्तं वैक्रान्तं विद्रुमौक्तिकम्॥
वराटं मणिरागञ्च राजपट्टञ्च गन्धकम्।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनिःक्षिपेत्॥
मर्दयेत्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेस्त्रिदिनं लघु।
भावयेत्पुटयेदेभिर्वारांस्त्रींश्च पृथक् पृथक्॥
मातुलुङ्गवरावह्निस्वम्लवेतसमार्कवम्।
हयमारार्द्रकरसैः पाचितो लघुवह्निना॥
वातपित्तकफोत्कलेशाञ्ज्वरान्सम्मर्दितानपि।
सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान्॥
सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसा युतः।
मधुकार्द्रकसंयुक्तस्तद्वद्व्याधिहरणौषधैः॥
सेवितो हन्ति रोगान् हि व्याधिवारणकेशरी।
क्षयमेकादशविधं शोषं पाण्डुं क्रिमिं जयेत्॥
कासं पञ्चविधं श्वासं मेहमेदोमहोदरम्।
अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्महलीमकम्॥
सर्वव्याधिहरो बल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः॥

(रसराजसुन्दर, रसेन्द्रसारसंग्रहः)

अभ्रक, पारद, लोह, ताम्र, सीसा, कांस्य, मण्डूर, रजतमाक्षिक, वंग, खर्पर, हरताल, शंख, सुहागा, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्ण, कान्तलौह, वैक्रान्त, प्रवाल, मोती, कपर्दिका, हिंगुल और चुम्बकभस्म तथा गन्धक समान मात्रा में लेकर चीता की जड़, मदार की जड़ के क्वाथ की १-१ भावना दें और एक गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द करके लघु पुट में तीन दिन तक पाक करें। यही

विधि तीन बार होनी चाहिये। इसके अलावा त्रिफला, चीतामूल, अम्लवेतस, भृङ्गराज, कनेर और अद्रक के क्वाथ तथा रस की १-१ दिन भावना देकर प्रत्येक बार लघु पुट में पाक करें। स्वांगशीतल होनेपर औषध द्रव्य सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस के सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, एकांगगत और सर्वांगगत वायु, ११ प्रकार के क्षय, शोष, पाण्डु, कृमि, ५ प्रकार की खांसी, श्वास, प्रमेह, मेद, उदर वृद्धि, अश्मरी, शर्करामेह, शूल, प्लीहा, गुल्म, हलीमक—इन रोगों को नष्ट करते हुये वीर्य, बल, मेधावर्धक एवं रसायन है।

अनुपान—मिश्री, पीपल, अद्रक और मधु।



माणिक्य

(Ruby)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—माणिक्य, शोणरत्न, पद्मराग, रंगमाणिक्य, लोहितरत्न, कुरुविन्द रविरत्न,—ये सात नाम संस्कृत में माणिक्य के हैं। इन नामों के अलावा और भी अन्यान्य संस्कृत ग्रन्थों में—रत्ननायक, लक्ष्मीपुष्प आदि नाम भी पाये जाते हैं। हिन्दी—मानिक, चुन्नी, लाल और लालमानिक। बंगला—माणिक। गुजराती—मानिक, चुन्नी। मराठी—माणिक। तेलगु—माणिक्यम्। फारसी—याकूत। अरबी—लाल बदख्शाँ, लाल बदपशमनि। अंग्रेजी—रूबी (Ruby)। लेटिन—रूबीनस (Rubinus)। बर्मी—चीनी—

उत्पत्ति स्थान—

(१) बर्मा—सर्वोत्कृष्ट माणिक्य ब्रह्मदेशीय मोगोक (Mogok) नामक खानि का होता है। यहाँ का माणिक्य गुलाबी रंग का होता है यह अतीव सुन्दर, आबदार और कीमती होता है।

(२) अफगानिस्तान—अफगान सरकार का इन खानियों के विषय में उतनी तत्परता से ध्यान नहीं है परन्तु फिर अफगानी या काबुली माणिक्य बाजार में कभी-कभी दिखाई देते हैं। काबुली माणिक्य उतना आबदार नहीं होता जितना कि ब्रह्मदेशीय माणिक्य होता है। काबुली माणिक्य में अरुणाभा प्रगाढ़ होती है।

(३) श्याम—(हिन्द-चीन) (Indo-china)—यहाँ की खानियों से उद्भव माणिक्य का रूप रंग किञ्चित् कृष्णाभा निश्चित अरुणाभामय धूम्रवत् होता है। श्यामदेशस्थ माणिक्य के मणिभ (Crystals) विशेष कठोर और सघनावस्था में होते हैं अतएव उसमें सद्यः भंगुरत्व नहीं पाया जाता। चिकट-पन विशेष पाया जाता है। यहाँ के माणिक्य में रुख (Spot) अवश्य पाया जाता है। निर्माणकर्ता को इस रुख का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। रुख के बेरुख होते ही मूल्य की नितान्त कमी हो जाती है।

(४) लंका (Cylone)—यहाँ के माणिक्य में किंचित् नीलाभा प्रस्फुटित होती है। इसी नीलाभा को भारतीय जौहरी 'बिन्नोसीपन' कहते

हैं। 'बिन्नोसीपन' माणिक्य का एक प्रकार का 'दोष' कहलाता है। सीलोनी माणिक्य का व्यावसायिक महत्त्व उतना नहीं जितना कि अन्य माणिक्य का होता है।

इस प्रकार माणिक्य बर्मा, अफगानिस्तान, श्याम एवं लंका में मुख्यतः प्रधान रूप से पाया जाता है। इसके अलावा उत्तरी कारिलोना, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया आदि स्थानों में भी माणिक्य उपलब्ध होते हैं परन्तु इनका व्यावसायिक महत्त्व नगण्य-सा है।

रूप रंग और लक्षण—आधुनिक रत्न वैज्ञानिकों ने दो प्रकार के खनिज पदार्थों का नाम माणिक्य (Ruby) रखा है। एक प्रकार अत्यन्त कठोर जिसे Ruby रूबी कहा है और दूसरा कम कठोर जिसे Spinal ruby स्पिनल रूबी कहा जाता है। यूनानियों ने माणिक्य को 'याकूत' कहकर उसके कई प्रकार गिना डाले हैं। संस्कृत ग्रन्थों में देश भेद के अनुसार मुख्यतः चार प्रकार के माणिक्य बताये हैं जो कि अधोलिखित हैं।

सिंहले तु भवेद्रक्तं पद्मरागमनुत्तमम्।
पीतवर्णपुरोद्भूतं कुरुविन्दमिति स्मृतम्॥
अशोकपल्लवच्छायमिदं सौगन्धिकं विदुः।
तुम्बुरुच्छायमानीलं नीलगन्धि प्रकीर्तितम्॥
उत्तमं सिंहलोद्भूतं निकृष्टं तुम्बुरूद्भवम्।
मध्यमं मध्यमं ज्ञेयं माणिक्यं चेत्रभेदतः॥

लालरंग का 'पद्मराग' नामक माणिक्य सिंहल (श्याम) या इन्डोचायना में पाया जाता है। भीतर से पीतवर्ण की आभा या छाई और लालवर्णवाला माणिक्य 'कुरुविन्द' माणिक्य कहलाता है। अशोक वृक्ष के नवीन पल्लव के समान अरुण-पीत वर्णवाला माणिक्य 'सौगन्धिक माणिक्य' कहलाता है। नीलवर्णाभा या झाँई देनेवाला 'नीलगन्धि माणिक्य' कहलाता है। नीलगन्धि माणिक्य तुम्बुरु देश ? (सीलोन ?) का होता है। सब से उत्तम माणिक्य श्याम देश में होनेवाला 'पद्मराग माणिक' होता है। सबसे निकृष्ट श्रेणी का माणिक्य तुम्बुरु देश में होनेवाला 'नीलगन्धि-माणिक्य' होता है। शेष सौगन्धिक और कुरुविन्द नामक माणिक्य मध्यम श्रेणी के होते हैं।

उत्कृष्ट श्रेणी का माणिक्य—

(१) बालार्ककरसंस्पर्शाद्यः शिखां लोहितां वमेत्।
रञ्जभेदाश्रयं वापि स महागुण उच्यते॥

(२) दुग्धे शतगुणे क्षिप्तो रञ्जयेद्यः समन्ततः ।
वमेत् शिखां लोहितां वा पद्मरागः स उच्यते ॥

(३) अप्रणश्यति सन्देहे शिलायां परिघर्षयेत् ।
घृष्टो योऽत्यन्त शोभावान् परिमाणं न मुञ्चति ॥

(४) रक्तोत्पलदलच्छायं रम्यं दीप्तप्रभं परम् ।
वृत्तायतं समांगञ्च माणिक्यं जात्यमुच्यते ॥

(१) जिस माणिक्य को प्रातःकालीन सूर्य के सामने रखने से उसमें से अरुणवर्ण रश्मियाँ चतुर्दिक् प्रसरित होने लगती हों वह उत्कृष्ट गुणोंवाला माणिक्य समझा जाता है।

(२) सौगुने जल में माणिक्य को डालते ही दूध किञ्चित् अरुण वर्ण का दिखाई देने लगे वह उत्तम माणिक्य होता है।

(३) जिस माणिक्य को शिला पर घर्षण करने से माणिक्य सुन्दर और दीप्तिमान् होता जाता हो एवं उसका वजन भी न घटे वह उत्तम प्रकार का माणिक्य है—ऐसा समझना चाहिये।

(४) लाल वर्ण के कमल की पंखुड़ियों के समान वर्णवाला, भारी, साफ, पानीदार और दीप्तियुक्त सुचिक्कण गोल एवं समान अंगावयववाला माणिक्य श्रेष्ठ होता है।

निकृष्ट श्रेणी का माणिक्य—

(१) नीलं गंगाम्बुसम्भूतं नीलगर्भारुणच्छवि ।
पूर्वमाणिक्यवच्छ्रेष्ठं माणिक्यं नीलगन्धितम् ॥

(२) रन्ध्र-कार्कश्य-मालिन्य-रौक्ष्यावैशद्य-संयुतम् ।
चिपिटं लघु वक्रञ्च माणिक्यं दुष्टमष्टधा ॥ (र. र. स.)

(३) विच्छायं लघु धूमाभं विरूपं कर्कशपरम् ।
मलिनं चिपिटं वक्रं माणिक्यं त्याज्यमुच्यते ॥

(१) नीलगन्धि माणिक्य ऊपर से तो अरुण वर्ण दिखाई देता है। परन्तु भीतर से नीलवर्ण की आभा झलकती है। जिस प्रकार गंगा का प्रवाहित जल ऊपर श्वेत मालूम होता है परन्तु भीतर से नीलवर्ण का दिखाई देता है। वैसे तो यह माणिक्य भी श्रेष्ठ ही है परन्तु पद्मराग इत्यादि माणिक्य प्रकारों के सामने निकृष्ट है।

(२) जो माणिक्य छिद्रयुक्त, खरदरा, मलिन, दीप्तिरहित, चिपटा

हल्का, टेढ़ामेढ़ा, धूम्रवत् आभा देनेवाला होता है वह नितान्त निकृष्ट श्रेणी का होता है अतएव त्याज्य है।

रासायनिक-संयोजन-(Chemical composition)

माणिक्य एवं नीलम में समान तत्त्व होते हैं। इन दोनों रत्नों का समावेश आधुनिक वैज्ञानिकों ने एक ही वर्ग में किया है। इस वर्ग का नाम कोरुण्डम (Corundum) रखा गया है। भारतीय संस्कृत ग्रन्थों में 'कुरुविन्दम्' शब्द माणिक्य के एक प्रकार भेदानुसार पाया जाता है। 'भाषा विज्ञान' के आधार पर यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि 'कोरुण्डम' शब्द हमारे 'कुरुविन्दम्' शब्द का ही अपभ्रंश मात्र है। भारतीय प्राचीन विचारकों की एवं आधुनिक वैज्ञानिकों की विचार एवं लाक्षणिक साम्यता का इन शब्दों द्वारा तो मेल नहीं खाता है परन्तु यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि भारतीयों का ज्ञान बिना किन्हीं यांत्रिक सहायताओं के भी बहुत उच्च निर्णयात्मक श्रेणी तक पहुंच चुका था। अस्तु माणिक्य में अधोलिखित तत्त्व पाये जाते हैं।

सूत्र-$AL_2 {}^{\circ}_3$

(१) मणिभीय एल्युमिना (Crystalized alumina) तथा प्राणवायु (Oxigen) का एक यौगिक पदार्थ माणिक्य (Ruby) है।

(२) क्रोमियम आक्साइड (Cromic oxide)—इसी क्रोमियम तत्त्व के कारण कुरुविन्द वर्ग के रत्नों में रंग पाया जाता है। माणिक्य में अरुणाभा एवं नीलम में नीलाभा क्रोमियम के ही कारण होती है। इस तत्त्व की कमी अथवा अभाव या नितान्त अभाव में माणिक्य या नीलम का रंग-रंग रहित अथवा नितान्त श्वेतरंग का ही रह जाता है।

(३) लौह आक्साइड (Iron oxide) माणिक्य में प्रायः लौहांश नहीं पाया जाता परन्तु सीलोनी माणिक्य में कभी-कभी लौहांश पाया गया है। जिस माणिक्य में लौहांश पाया गया है उसका रंग अरुणाभा युक्त न होकर किंचित् कृष्णाभा युक्त लोहित वर्ण का होता है। व्यावसायिक दृष्टि से सीलोनी माणिक्य की अपेक्षा ब्रह्मदेशोद्भव माणिक्य का महत्त्व इसीलिये अधिक होता है कि उसमें लौहांश का नितान्त अभाव है।

कठोरता (Hardness)	९
आपेक्षिकगुरुत्व (Specific gravity)	४.०
आवर्तनांक (Retractive indices)	१.७६०
द्वि० वर्तन (Doubie refraction)	.००८
द्विवर्णत्व (Di croism)	सुदृढ़ (Quite strong) (विशेषतः वर्मा माणिक्य में)

अरुण वर्ण रत्नों का आपेक्षिक निदर्शन

रत्न नाम	कठोरता (H)	आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	आवर्तनांक (R. I)	द्विवर्तनांक (D. R.)	द्वि० वर्णत्व (D. C.)
माणिक्य	९	४·०	१·७६०	·००८	सुदृढ़
नरम माणिक्य (Spinal-ruby) लालडी	८	३·६०	१·७२	नितान्त अभाव	नितान्त अभाव
पुखराज	८	३·५३	१·६३	·००८	स्पष्ट पृथक् (Distinat)
वैक्रान्त (तुरमली)	७	३·०४	१·६२	·०१८	सुदृढ़
गोमेदक (ज़िरकान)	७½	४·६९	१·९२ से १·९८ तक	·०५९	न्यून दृढ़ता
एलमेन डाइन	,,	३·९९ से ४·२ तक	१·७६ से १·८१ तक	नितान्त अभाव	नितान्त अभाव
पाइरोप	७¼	३·७ से ३·९ तक	१·७४ से १·७६ तक	,,	,,

नोट—इनके अलावा भारतीय पद्धति के अनुसार १—पिनूरिया, २—रतवा, ३—तामडा (Garnet) एवं ४—टोपस आदि रत्नों से भी आपेक्षिक निदर्शन करना चाहिये। माणिक्य के साथ कभी-कभी इन रत्नों का भी साम्य हो जाने या भ्रम हो जाने की सम्भावना रहती है। अतएव सावधानी के साथ उनके भौतिक लक्षणों के आधार पर तथा वैज्ञानिक यांत्रिक सहायता से सम्यक् निदर्शन करना चाहिये।

प्रकार—आधुनिक रत्न व्यवसायियों ने दो प्रकार के खनिज पदार्थों का नाम माणिक्य या Ruby रखा है। एक प्रकार अत्यन्त कठोर है और दूसरा कम कठोर। यूनानियों ने तो इस माणिक्य को 'याकूत' कहकर कई प्रकार गिना डाले हैं। संस्कृत ग्रन्थों में रंग भेद के अनुसार चार प्रकार के माणिक्य बताये हैं जो कि अधोलिखित हैं।

सिंहले तु भवेद्रक्तं पद्मरागमनुत्तमम्।
पीतं वर्णपुरोद्भूतं कुरुविन्दमिति स्मृतम्॥
अशोकपल्लवच्छायमिदं सौगन्धिकं विदुः।
तुम्बरुच्छायमानीलं नीलगन्धि प्रकीर्तितम्॥

उत्तमं सिंहलोद्भूतं निकृष्टं तुम्बुरूद्भवम् ।
शेषं तु मध्यमं ज्ञेयं माणिक्यं क्षेत्रभेदतः ॥

लाल रंग का पद्मराग नामक माणिक सिंहल देश (श्याम) में होता है। भीतर से कुछ पीलापन और ऊपर से लालवर्ण कुरुविन्द नामक माणिक होता है। भीतर से नीली आभा देने वाला माणिक नीलगन्धि होता है। यह नील गन्धि तुम्बुरु देश में पाया जाता है। ललाई से किंचित् न्यून अशोक वृक्ष की शाखाओं के अग्रभाग के पत्तों के रंग के समान सौगन्धिक नामक माणिक होता है।

सबसे उत्तम सिंहलदेश में पाया जानेवाला पद्मराग नामक माणिक होता है और सबसे घटिया तुम्बुरुदेश में होनेवाला नीलगन्धि नामक माणिक होता है तथा बाकी के सौगन्धिक और कुरुविन्द मध्यम श्रेणी के होते हैं।

परीक्षा—बालार्ककरसंस्पर्शाद्यः शिखां लोहितां वमेत् ।
रञ्जयेदाश्रयं वापि स महागुण उच्यते ॥
दुग्धे शतगुणे क्षिप्तो रञ्जयेद्यः समन्ततः ।
वमेच्छिखां लोहितां वा पद्मरागः स उत्तमः ॥
अन्धकारे महाघोरे यो न्यस्तः सन्महामणिः ।
प्रकाशयति सूर्याभः सश्रेष्ठः पद्मरागकः ॥
पद्मकोशेषु यो न्यस्तः प्रकाशयति तत्क्षणात् ।
पद्मरागवरो ह्येष देवानामपि दुर्लभः ॥
सर्वारिष्टप्रशमनं सर्वसम्पत्तिदायकः ।
बालार्काभिमुखं कृत्वा दर्पणे धारयेन्मणिम् ॥
तत्र कान्तिविभागेन छायाभागं विनिर्दिशेत् ।
अप्रणश्यति सन्देहे शिलायां परिघर्षयेत् ॥
घृष्टो योऽत्यन्तशोभावान् परिमाणं न मुञ्चति ।
स ज्ञेयः शुद्धजातीयो ज्ञेयश्चान्ये विजातयः ॥
अत्यन्तलोहितो यश्च पद्मरागः स उच्यते ।

(१) जिस माणिक को प्रातःकाल के सूर्य के सामने रखते ही उसमें से लाल रंग की किरणें चारों तरफ बिखरने लगती हों वह माणिक महान् उत्तम गुणोंवाला समझा जाता है।

(२) सौ गुने दूध में माणिक को डालते ही दूध लाल दिखाई देने लगा जाता हो अथवा लाल-लाल किरणें दिखाई देने लगती हों तो वह उत्तम माणिक है।

(३) महाघोर अन्धकार में माणिक को रखते ही यदि सूर्य की आभा के समान प्रकाशित होता हो तो उसे श्रेष्ठ माणिक समझना चाहिये।

(४) कमल की पंखड़ियों में रखने से यदि माणिक उसी समय प्रकाशित हो उठे तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। ऐसा माणिक देवताओं को भी दुर्लभ है। ऐसा माणिक सम्पूर्ण कष्टों को दूर करता है और सम्पूर्ण सम्पत्ति को देनेवाला होता है।

(५) प्रातःकाल के सूर्य के सामने एक दर्पण पर माणिक को रखें यदि दर्पण के नीचे के तरफ छाया भाग में भी किरणें दिखाई दें तो वह उत्तम माणिक है।

(६) यदि माणिक को पत्थर पर घिसने से पत्थर घिस जाय परन्तु माणिक न घिसे और उसका वजन भी न घटे एवं घिसने से उसकी शोभा और भी बढ़ जाय तो उस माणिक को शुद्ध जातिवाला समझना चाहिये।

कुशेशय दलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं गुरु स्फुटम्।
वृत्तायतं समगात्रं माणिक्यं श्रेष्ठमुच्यते॥ (रसरत्नसमुच्चय)
रक्तोत्पलदलच्छायं रम्यं दीप्तप्रभं परम्।
वृत्तायतं समांगञ्च माणिक्यं जात्यमुच्यते॥

(७) लाल कमल की पंखड़ियों के समान लाल रंग का हो, साफ चिकना और भारी हो, देखने में सुन्दर दीप्तिमान हो, गोल और समान अङ्गावयववाला हो तो वह माणिक्य श्रेष्ठ है।

नवीन परीक्षा—फिलेडेल्फिया नामक स्थान में एक प्राकृतिक विज्ञान विषय की एक संस्था है। इसके प्रधान मिस्टर सेम्यूल जी. गडिन महाशय हैं। इन्होंने माणिक की परीक्षा के लिये एक नवीन परन्तु बहुत ही सरल तरीका खोज निकाला है। आपका यह है कि यदि किसी भी मणि में खरे खोटे का जरा भी सन्देह होता हो तो उसे बरफ के टुकड़े के सामने रखते ही जोरों की आवाज होगी। यदि असली मणि होगा तो आवाज अवश्य होगी अन्यथा नकली होगा तो कुछ भी आवाज नहीं होगी।

घटिया माणिक्य—

नीलगन्धि माणिक—नीलं गंगाम्बुसम्भूतं नीलगर्भारुणच्छवि।
पूर्वं माणिक्य वच्छ्रेष्ठं माणिक्यं नीलगन्धि तत्॥

नीलगन्धि माणिक्य बाहर से तो नीलवर्ण का दिखाई देता है परन्तु भीतर से लालवर्ण की किरणें प्रस्फुटित होती हैं। वैसे तो यह भी श्रेष्ठ होता है परन्तु पद्मराग मणि से घटिया ही होता है।

निकृष्ट माणिक्य—

रन्ध्रकार्कश्य-मालिन्य-रौक्ष्यावैशद्य-संयुतम् ।
चिपिटं लघु वक्रं च माणिक्यं दुष्टमष्टधा ॥
(रसरत्नसमुच्चय)

छिद्रयुक्त, खरदरा, मलिन, दीप्तिरहित, चिपटा, टेढ़ा-मेढ़ा और हल्का माणिक्य एकदम निकृष्ट होता है ।

माणिक्य और ज्यौतिष शास्त्र—ज्यौतिष शास्त्रानुसार माणिक का सूर्य ग्रह से सम्बन्ध है । माणिक्य का एक पर्यायवाची शब्द 'रविरत्न' भी है । जब किसी व्यक्ति को सूर्यग्रह पापग्रह के रूप में आकर किसी प्रकार का कष्टदायक सिद्ध होता है तब उस समय इस रत्न के धारण करने अथवा किसी व्याधि विशेष में औषध—रूपेण सेवन करने से सूर्यग्रह शान्त होता है । प्रत्येक व्यक्ति में सूर्य के कारण ही तेजस्विता होती है । जब सूर्यग्रह पापग्रह से सम्बन्धित होता है तब उस व्यक्ति का तेज एवं प्रतिभा नष्ट होने लगती है, बहुत से विद्वान् ज्योतिषियों का कथन है कि ऐसे समय में सूर्य नमस्कार, सूर्यार्घ एवं रविवार के दिन उपवास करने से तथा माणिक्य धारण एवं माणिक्य भस्म के सेवन से पुनः तेजस्विता आने लगती है ।

(१) रवि :—रवेः प्रियं रक्तवर्णं माणिक्यं त्विन्द्रगोपरुक् । सूर्य का प्रिय रत्न—रक्तवर्ण वाला माणिक्य (Ruby) है । सम्पूर्ण नवग्रहों के प्रशमनार्थ यदि नवरत्नों की एक ही अँगूठी पहनना हो तो सूर्य रत्न—माणिक्य को अँगूठी के मध्य में मढ़वाना चाहिये । माणिक्य से सूर्य ग्रह का बल बढ़ता है । और यदि कुदृष्टित हो तो उसका प्रशमन होता है । सूर्य कुदृष्टि जन्य व्याधियां नष्ट होती हैं ।

अँगूठी में कम से कम सवा रत्ती का माणिक्य होना चाहिये । यदि सवा रत्ती से ऊपर का हो तो और भी उत्तम है । माणिक्य की कट गोल षट् पहलू अथवा १२ पहलू होनी चाहिये ।

माणिक्य का धारण चैत्र मास के रविवार पुष्य नक्षत्र रवि के होरा में करना चाहिये । माणिक्य के धारण से शरीर कान्तिमान होते हुए सूर्यनारायण की सदा कृपादृष्टि बनी रहती है ।

सूर्य ग्रह के प्रकुपित होने पर अधोलिखित व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं ।

शिरःपीडा प्रमेहश्च सततः सन्ततो ज्वरः ।
पित्तरोगोऽस्लशूलश्च हृद्रोगश्च विसूचिका ॥

शिरोव्रणादिकं चैव विषजो दाहकज्वरः ।
यमारयोगाद्धिक्का च रवौ व्याधिविनिर्णयः ॥

अर्थात्—शिर पीड़ा, प्रमेह, सतत और सन्तत (टाइफाइड) ज्वर, पित्त-रोग, अम्लशूल, हृदयरोग, हैजा, शिरोव्रण, विषज व्याधियाँ, दाहकज्वर, रवि-ग्रह के कारण होते हैं, यमार योग (सूर्य, शनि और मंगल के योग) से हिचकी नामक रोग उत्पन्न होता है।

इन रोगों के प्रशमनार्थ माणिक्य भस्म का सेवन बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

(२) समस्त संसार का प्राणदाता रवि है। यह रवि प्रत्येक मास में प्रत्येक राशि पर १-१ बार प्रदक्षिणा करता है। इस प्रकार १२ राशी पर १२ बार प्रदक्षिणा करता है। जिस मास में जिस राशि पर रवि अपनी प्रदक्षिणा करता है उसके अनुसार अलग २ रत्न निर्धारित किये गये हैं। वह अधो-लिखित हैं।

(१) मेष राशि पर रवि ता. २१ मार्च से २० अप्रैल पर्यन्त रहता है। इस अवस्था में माणिक्य धारण करना चाहिये।

(२) वृषभ राशि पर रवि २१ अप्रैल से २० मई तक पन्ना एवं वैडूर्य (Catis eye) धारण करें।

(३) मिथुन राशि पर २१ मई से २० जून तक नीलम

(४) कर्क राशि पर रवि २१ जून से २० जुलाई तक मोती, हीरा, स्फटिक, चन्द्रकान्त।

(५) सिंह राशि पर रवि २१ जुलाई से २० अगस्त तक—अम्बर, माणिक्य, पुखराज।

(६) कन्या राशि पर रवि २१ अगस्त से २० सितम्बर तक रहता है। इस अवस्था में हीरा, मोती और पन्ना पहनें।

(७) तुला राशि पर रवि २१ सितम्बर से २० अक्टूबर तक रहता है इस अवस्था में नीलम, माणिक्य पहने।

(८) वृश्चिक राशि पर रवि २१ अक्टूबर से २० नवम्बर तक रहता है। इस अवस्था में माणिक्य पहनें।

(९) धन राशि पर रवि २१ नवम्बर से २० दिसम्बर तक रहता है। इस अवस्था में याकूत माणिक्य पहनें।

(१०) मकर राशि पर रवि २१ दिसम्बर से २० जनवरी तक रहता है। इस अवस्था में माणिक्य-याकूत पहनें।

(११) कुम्भराशि पर रवि २१ जनवरी से २० फरवरी तक रहता है। इस अवस्था में नीलम पहनें।

(१२) मीन राशि पर रवि २१ फरवरी से २० मार्च तक रहता है। इस अवस्था में पन्ना और नीलम पहनें।

माणिक्य के 'दोष' और उनका 'कुपरिणाम'

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में मुख्यतः ८ आठ दोष माने हैं—

माणिक्यस्य समाख्याता अष्टौ दोषा मुनीश्वरैः।
विच्छायश्च विरूपश्च सम्भेदः कर्करन्तथा॥
अशोभनं कोकिलं च जालं धूम्राभिधश्च वै।

(युक्तिकल्पतरु-भोजकृत)

अर्थात् माणिक्य में प्रसिद्ध आठ दोष होते हैं। १ विच्छाय, २ विरूप, ३ सम्भेद, ४ कर्कर, ५ अशोभन, ६ कोकिल, ७ जाल और ८ वाँ धूम्र दोष हैं।

(१) विच्छाय दोष—उस दोष को कहा जाता है जिसमें माणिक्य दीप्ति या चमक रहित होता है। चमक रहित माणिक्य के धारण करने से बन्धु (भाइयों) को क्षति पहुँचती[1] है। जयपुर आदि के जौहरी इसी 'विच्छाय दोष' को हिन्दी में 'सुन्न दोष' कहा करते हैं।

(२) विरूप दोष—उस दोष को कहा जाता है जिसमें माणिक्य में हाथी दाँत के समान सफेदी और बहुत ही कम ललाई तथा कभी-कभी बीच में अथवा इधर-उधर लम्बाई में काला या मटमैलापन होता है। विरूप दोष युक्त माणिक्य के धारण करने से व्यक्ति की अपने अभिलषित कार्य में हार या पराभव होता है।[2] जौहरी इसी विरूप दोष को 'दूधक दोष' कहा करते हैं।

(३) सम्भेद दोष—उस दोष को कहते हैं जिसमें माणिक्य में बीच से ऐसा आभास होता है मानो यह रत्न टूटा हुआ या चिपकाया हुआ हो। सम्भेद दोष युक्त माणिक्य के धारण करने से किसी शस्त्र द्वारा आघात लगने का डर बना रहता है। इसी सम्भेद दोष को जौहरी 'चीर दोष' कहते हैं।[3]

(४) कर्कर दोष—उस दोष को कहा जाता है जिसमें माणिक्य को अँगुलियों से स्पर्श करने पर सुचिक्कणता का अनुभव न होकर खरदरापन

---

१. विच्छायं बन्धुनाशनम्।
२. विरूपं द्विपदन्तेन माणिक्येन पराभवः।
३. सम्भेदो भिन्नमित्युक्तं शस्त्रघातविधायकः।

अनुभव होता है। जौहरी इसी दोष को 'चुरचुरी' दोष कहते हैं। इसके धारण करने से पशुधन और बन्धु-बान्धव का नाश होता है।[1]

(५) अशोभन दोष—अशोभन दोषयुक्त माणिक्य में कोई खास दोष दिखाई तो नहीं देता परन्तु उसे हाथ में लेने पर या धारण करने पर मन-बुद्धि और हृदय को प्रसन्नता अनुभव न होकर तथा जिस अंग में धारण किया है वह सुन्दर प्रतीत न होकर अशोभनता युक्त प्रतीत होता है। इसी दोष को जौहरी सम्भवतः जठर दोष कहते हैं। इसके धारण करने से अनेकों प्रकार के दुःख पैदा होते हैं।[2]

(६) कोकिल दोष—माणिक्य में जब शहद की बूंद के समान छाया दिखाई देती है तब उसे कोकिल दोष कहा जाता है। शहद की बूंद किसी अरुण वर्ण कठोर द्रव्य पर डाली जाती है तो वह बूंद सफेद और काली आभा-युक्त दिखाई देती है। इसी प्रकार माणिक्य में से सफेद काली छाया युक्त बूंद दिखाई दे तो वह माणिक्य कोकिल दोष युक्त समझा जाता है। इसी कोकिल दोष को जौहरी 'खगपैल' दोष कहा करते हैं। कोकिल दोष युक्त माणिक्य के धारण करने से आयु, लक्ष्मी और यश की हानि होती है।[3]

(७) जालदोष—माणिक्य में जब दो तीन या इससे अधिक रेखायें आडी और इतनी ही रेखायें या इससे कम रेखायें तिरछी या सीधी निकल कर जालवत् रचना दिखाई देती है। इसी दोष को 'जालदोष' कहा जाता है। जौहरी भी इसे हिन्दी में 'जालदोष' कहते हैं। इस दोष से युक्त माणिक्य के धारण करने से धन-धान्य की हानि और अपवाद होता है।[4]

(८) धूम्रदोष—जिस माणिक्य में धुवें के समान सफेद काली छाई दिखाई देती हो उसे धूम्रदोष कहते हैं। जौहरी भी हिन्दी में इसे धूम्रदोष ही कहते हैं। धूम्रदोष युक्त माणिक्य के धारण करने से अपने स्वयं पर अथवा अपने मकान आदि पर बिजली गिरने का डर रहता है।[5]

विशेष—इन आठ दोषों के अलावा भी बम्बई, जयपुर, कलकत्ता तथा बनारस आदि के जौहरी कुछ अधिक दोषों का परिगणन करते हैं।

---

१. कर्करं कर्करायुक्तं पशुबन्धुविनाशकृत्।

२. अशोभनं समुद्दिष्टं माणिक्यं बहुदुःखकृत्।

३. मधुबिन्दुसमच्छायं कोकिलं परिकीर्तितम्।
आयुर्लक्ष्मीं यशो हन्ति सदोषं तनुधारणात्॥ (युक्तिकल्पतरु)

४. जालयुक्तं जालमुक्तं धनधान्यापवादकृत्। (बृहत्संहिता)

५. धूम्रं धूम्रसमाकारं वैद्युतं भयमावहेत्। (अग्निपुराण)

मुख्यतः अधोलिखित दोषों की गणना की जाती है। १ सुन्न, २ दूधक, ३ दुरंग, ४ जठर, ५ धूम्र, ६ चीर, ७ मैटमैला, ८ मधछिटका, ९ गड्डा, १० जाल, ११ खरपैल। इस प्रकार संस्कृत ग्रन्थों की अपेक्षा तीन दोष विशेष माने गये हैं। परन्तु ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो ये समस्त ११ दोष उपर्युक्त आठ दोषों के अन्तर्गत ही समाविष्ट किये जा सकते हैं।

माणिक्य के प्रतिनिधि रत्न

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार माणिक्य की मैत्री सूर्य से सम्बन्धित है। अर्थात् सूर्य ग्रह का प्रतिनिधित्व करनेवाला इस पृथ्वी लोक में माणिक्य है। माणिक्य का सर्वसाधारण जनता को प्राप्त हो जाना उसके मूल्याधिक्य की दृष्टि से प्रायः कठिन होता है अतएव भारतीय ज्योतिषियों ने एवं भारतीय जौहरियों ने माणिक्य से कुछ कम गुण धर्मवाले एवं कम मूल्य या सस्ते दामों में प्राप्त हो जाने वाले रत्नों का भी उल्लेख किया है। मूल्यवान् रत्न के स्थानापन्न प्रतिनिधित्व करनेवाले कम गुणधर्म एवं मूल्यवाले रत्न को 'उपरत्न' कहा जाता है। साधारण हिन्दी भाषा में जौहरी उपरत्न शब्द के स्थान पर 'खोटा' शब्द व्यवहार में लाते हैं। इन उपरत्न या खोटा रत्न से भी कम मूल्य के रत्न को 'उपोपरत्न' या 'उपखोटा' कहा जाता है।

माणिक्य का उपरत्न 'लालड़ी' है। लालड़ी शब्द के स्थान में 'नरम माणिक' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है। इसी लालड़ी या नरम नामक उपरत्न को अंग्रेजी में स्पिनल रूबी (Spinal Ruby) कहा जाता है।

लालड़ी नाम उपरत्न या खोटे के भी उपखोटे या उपोपरत्न तीन गिनाये गये हैं। उपखोटे शब्द के स्थान पर जौहरी प्रायः संग शब्द का भी प्रयोग करते हैं। (१) संग सिंगली (२) संग तामडा और (३) संगमानिक।

(१) संग सिंगली—इसको संस्कृत में 'सिंहलोद्भवमाणिक्य' कहा जाना चाहिये। इसको कोई कोई जौहरी स्यामी माणिक भी कहते हैं। यह स्याम और चीन के पर्वताञ्चलों से प्राप्त होता है। यह अरुण कृष्णाभ मिश्रित होता है। कभी-कभी श्वेतारुण कृष्ण वर्णों का संमिश्रण भी उपलब्ध होता है। ऐसे वर्णवाले को जौहरी 'दूधक सिंगली मानिक' कहा करते हैं।

(२) संगतामड़ा—इस प्रकार का वर्णन पृथक् तामड़ा (Garnet) के प्रकरण में किया गया है।

(३) संग मानिक No—Useless—जौहरी प्रायः उस प्रकार को कहा करते हैं जो कि काली झाँई मारता है। यह प्रकार भी 'शूद्रमाणिक्य' के

लक्षणों से मिलता जुलता है। इसमें लौहांश भी रहता है और इसी कारण इसमें से काली झाँई आती है। इसका प्रमुख उद्भवस्थान सीलोन है।

व्यवसायिक महत्त्व—अन्यान्य रत्नों की अपेक्षा माणिक्य रत्न एक लाल रंग का रत्न होता है। इसकी सुन्दरता एक नयनाभिराम सुन्दरता होती है। इसकी आभा और चमक एक निराली शान रखती है। प्रत्येक स्त्री पुरुष जितना माणिक्य को पसन्द करते हैं उतना हीरे को भी पसन्द नहीं करते। संसार के असंख्य वैभवशाली पुरुष अपनी अंगुलियों को एवं स्त्रियाँ अपने नाक और कान की इसके द्वारा शोभा बढ़ाती हैं। स्वास्थ्य सुधार के लिये इसका तना उपयोग नहीं होता जितना कि शरीर की शोभा बढ़ाने के लिये होता है। हीरा माणिक से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हुये भी लोग अपने आभूषणों में माणिक को अधिक चाव के साथ जड़वाते हैं। सैकड़ों व्यक्ति केवल माणिक की दलाली करके कुछ वर्षों में ही लखपति बन जाते हैं। बड़े २ जौहरियों का कथन है कि 'एक माणिक की दलाली में हीरा खरीदा जा सकता है अर्थात् माणिक की दलाली करने से ही इतनी आमदनी हो सकती है कि उतने मूल्य से एक हीरा खरीद लिया जा सकता है।' यह मान लिया जा सकता है कि यह उक्ति कुछ अतिरंजना युक्त है परन्तु यह तो अवश्य मानना चाहिये कि माणिक का मूल्य और व्यावसायिक महत्त्व अधिक है। पुराने ग्रन्थों में इसका मूल्य निम्नलिखित है।

षड्विंशतिसहस्राण्येकमणेः पलप्रमाणस्य।
कर्षत्रयस्य विंशतिरुपरिष्टात् पद्मरागस्य॥
अर्धपलस्य द्वादश, कर्षस्यैव षट्सहस्राणि।
यच्चाष्टकमाषकमिदं तस्य सहस्रत्रयं मौल्यम्॥
माषचतुष्टयं यत् स्यात्तस्य दश शतं मौल्यम्।
माषद्वयमितो यस्तु पद्मरागः सुनिर्मलः॥
तस्य पंचशतं मौल्यं रौप्यं कर्षस्य चेरितम्।
माषकैकमितो यस्तु पद्मरागो गुणान्वितः॥
शतैकसम्मितं वाच्यं मौल्यं तस्य विचक्षणैः।
अतो न्यूनप्रमाणास्तु पद्मरागा गुणोत्तराः॥
स्वर्णाद् द्विगुणमौल्येन मूल्यं तेषां प्रकल्पयेत्।
व्रणे तु मूल्यं चार्धं तेजोहीनस्य मूल्यमष्टांशः॥
अल्पगुणो बहुदोषो मूल्यं प्राप्नोति विंशांशम्।

एक पल (५ तोला) वाले माणिक्य का मूल्य २६०००) रुपया। ३ कर्ष (३॥ तोला) वाले माणिक्य का मूल्य २००००) रूपया से ऊपर। आधा

पल (२॥ तोला) वाले माणिक्य का मूल्य १२०००) रूपया। एक कर्ष (१। तोला) वाले माणिक्य का मूल्य ६०००) रूपया। आठ माषा वाले माणिक्य का मूल्य ३०००) रूपया। ४ माषा वाले माणिक्य का मूल्य १०००) रूपया। २ माषा वाले माणिक्य का मूल्य ५००) रूपया। १ माषा वाले माणिक्य का मूल्य १००) रूपया। १ माषा से कम तौल वाले माणिक्य का मूल्य उससे दूने तोल के स्वर्ण से बदला किया जा सकता है—अर्थात् यदि २ रत्ती माणिक्य को खरीदना है तो ४ रत्ती सोना देकर खरीद किया जा सकता है। यदि किसी माणिक्य में गढ़े या छेद हों तो उसके तोल से आधा स्वर्ण देकर खरीद किया जा सकता है। यदि माणिक्य तेजहीन हो तो उसके तोल से आठवाँ भाग स्वर्ण देकर खरीद लें। यदि बहुत ही कम गुण वाला एवं बहुत से दोषों वाला हो तो मूल्य का बीसवाँ भाग भी देना नहीं चाहिये।

माणिक्यं लेखनं शीतं कषायं मधुरं सरम् ।
चक्षुष्यं मंगलं दाह-दुष्टग्रहविषापहम् ॥ (भावप्रकाश)
माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत् ।
भूतवेतालपापघ्नं कर्मजं व्याधिनाशनम् ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

माणिक्य कषाय और मधुर रस प्रधान द्रव्य है। यह शीतलतादायक एवं लेखन कार्य करता है। नेत्र ज्योति को बढ़ानेवाला, दाह और विषघ्न है। नीच ग्रहों को नष्ट कर मंगल-प्रदायक है। अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, कफ, वायु तथा पित्त को शमन करता है। क्षयरोग का नाशक एवं रसायन है। आयु एवं बुद्धिवर्धक है। नपुंसकता को नष्ट करके वाजीकारक है। भूत-प्रेत बाधा को नष्ट करता है और कर्मजव्याधि—अर्थात् कुष्ठादि रोगों का नाश करता है।

गुंजाफल प्रमाणस्तु दशसप्तकगुंजकात् ।
पद्मरागस्तुलयति यथापूर्वं महागुणः ॥
बिम्बीफल-समाकारः षडष्टदशतोलकः ।
पद्मरागस्तुलयति यथोत्तरमहागुणः ॥

एक रत्ती से लेकर ७० रत्ती तक के माणिक्य में यथोत्तर क्रमशः गुणधर्म विशेष ही होते हैं। अर्थात् जो गुण धर्म एक रत्ती वाले माणिक्य में होते हैं वह उससे अधिक वजन वाले माणिक्य में अधिक ही गुण धर्म होंगे। बिम्बीफल की आकृति से लेकर २४ तोला वजनवाले माणिक्य में क्रमशः गुणधर्म-विशेष ही होते हैं।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म—लालबदख्शाँ का स्वाद फीका स्वभाव में मौतदिल व हरारत मायल, मात्रा १ जौ से २ जौ तक, गुण में रूह को फरहत

देता है। दिल व दिमाग व कवाये नवई व नफसानी को और पट्टों व बीनाई को कुव्वत देता है। याकूत अहमर से गुण में अधिक है। बहते हुये खून व बवासीर के खून को बन्द करता है। कुल सौदावी बीमारियों को फायदेमन्द है। अक्सर जहरों को मारने वाला है।

कृत्रिम माणिक्य—

यह प्रत्यक्ष है कि बहुमूल्य अन्यान्य रत्नों में जो अधिक मूल्य के हैं, उन्हीं को कृत्रिम उपाय से यदि बनाया जाय तो उचित मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। अर्ध बहुमूल्य रत्न (Semipricious Stone) जो कि कारखानों में बनाये जाते हैं। रंग तथा कठोरता में प्राकृतिक या असली रत्नों से कम पाये जाने के कारण उचित मूल्य प्राप्त नहीं करते। यदि सबको यह विदित भी हो जाय कि रत्न कृत्रिम उपायों से बनाये जाते हैं तो उनकी मांग कम ही नहीं बल्कि रुक भी जा सकती है। केवल वे ही रत्न बनाये जाने योग्य हैं जो कोरेण्डम (Corundum) अथवा नीलम (Sapphirc) श्रेणी के हैं जो कि कभी-कभी हीरे के बराबर तथा कभी-कभी हीरे से भी अत्यधिक मूल्य प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ पर एक बात लिख देनी आवश्यक प्रतीत होती है—हीरा, नीलम के अलावा पन्ना (Emerald) पुखराज (Popag) और नीलमणि (Amethyst) बनाये जाने पर अपने प्राकृतिक स्वरूप से अधिक अच्छी, अधिक कठोरता और चमक आदि में अत्यधिक बढ़ जाती है। माणिक्य भी इसी श्रेणी में लाये जा सकते हैं।

जौहरियों की दूकानों में पाये जाने वाले माणिक्य शुद्ध माणिक्य नहीं होते। वे स्पाइनल माणिक्य (Spinal ruby) या बैलेस माणिक्य (Bales ruby) होते हैं। जो कि रंग में बहुत ही सुन्दर दीखते हैं। परन्तु कठोरता में (Oriental ruby) से कम कठोर होते हैं। उनमें प्राकृतिक माणिक्य के सदृश रासायनिक गुण नहीं पाये जाते। कृत्रिम माणिक्य में केवल एलुमिना, सिलिका एवं क्रोमियम होता है।

प्राच्य बहुमूल्य रत्नों में जो रंग विलीन होते हैं उन्हें 'क्रिस्टलाइज्ड एलुमिना' (Crystallizd alumina) या श्वेत नीलम (White Sapphire) कहते हैं। जब रंग लाल हो तो उन्हें माणिक्य (Ruby) कहते हैं। जब रंग नीला हो तो उन्हें शुद्ध नीलम (Sapphire) कहते हैं। यदि रंग हरा हो तो उन्हें प्राच्य पन्ना (Oriental emerald) कहते हैं। जब नारंगी और पीतवर्ण मिश्रित हो तो उसे प्राच्य पुखराज (Oriental Papeze) कहते हैं और जब रंग बैंगनी हो तो उसे प्राच्य नीलमणि (Oriental Amethyst)

कहते हैं। श्वेत रंग विहीन क्रिस्टाइल को श्वेत नीलम (White sapphire) कहते हैं। यह श्वेत नीलम बहुत ही मूल्यवान् होता है। इससे यह विदित होता है कि जो कोई भी जब श्वेत क्रिस्टल पर जैसा भी रंग चढ़ा दे और उसमें यदि सफलता हो तो बड़ी सरलता से (Oriental ruby, sapphire. emrlad Papeze amethyst) इत्यादि रत्न बनाये जा सकते हैं। इस तरह के सभी रत्न चाहे कितने ही छोटे क्यों न हों, बहुमूल्य होते हैं। बड़े क्रिस्टलों की कीमत तो अत्यधिक हो जाती है। एक अच्छे रंग का माणिक्य जो जितने कैरेट के वजन का होगा उतने ही कैरेट के वजन के हीरे से अधिक दाम प्राप्त कर सकेगा।

इसीलिये एलुमिना में क्रिस्टलता (Crystallization) लाने के लिये बहुत से प्रयत्न किये गये हैं। सन् १८३६ ई० में ग्यूडिन (Gaudin) महाशय ने कार्बन में फिटकिरी (Alum) को अत्यधिक गरम करके और उसे अच्छी प्रकार से पिघला करके उसमें क्रोमियम डालकर के एक सुन्दर छोटा माणिक्य बनाया था। तत्पश्चात् उसने इस तरह के बहुत से माणिक्य के टुकड़े बनाये। सन् १८४७ ई० में ईबलमैन (Ebelman) महाशय ने कार्बन में फिटकिरी को बोरेसिक अम्ल (Boracic acid) में पिघलाकर उत्तम श्रेणी का श्वेत नीलम (White sapphire) और गुलाबी रंग का स्पाइनल (Spinal) बनाया था। उसके बाद तुरत ही उसने टंकण या सुहागा (Borax) डालकर शुद्ध माणिक्य बना लिया। टंकणाम्ल या सुहागे के तेजाब (Boracic acid) से एलुमिना में क्रिस्टलता (Crystallization) लाने का एक अच्छा साधक है।

सन् १८७७ ई० में एम. एम. फ्रिमी (Im. Im. Fremy) साहेब ने और फील (Feil) महाशय ने एलुमिना को क्रिस्टलाइज्ड करने का एक दूसरा ही उपाय खोज निकाला जिससे छोटे-छोटे पत्थर काटे भी जा सकते थे।

सर्व प्रथम इन दोनों महाशय ने एलुमिना और लेड (यशद) आक्साइड (Lead oxide) को 'लेड एल्यूमिनेट' (Lead aluminate) के रूप में परिणत किया। तब इसे प्रज्वलित अग्नि में डाल दिया गया है जिससे कि इसमें अधिक से अधिक सिलिका समा सके। अत्यधिक उष्णता के कारण यह विलयन (Solution) पदार्थ 'लेड सिलिकेट' (Lead siilicate) के रूप में परिणत हुआ। एलुमिना के क्रिस्टल पृथक् होने के पूर्व ही तरलावस्था में क्रोमियम २ से ३ प्रतिशत परिमाण में डाला गया और इसे सहसा शीतोदक में डालने से माणिक्य (Ruby) के क्रिस्टल पृथक् पृथक् हो गये।

अभी कुछ वर्ष पूर्व ही एम, एम. फ्रिमी तथा वरनिडल (Verniul) महाशयों ने एलुमिना और क्रोमियम के घोल में 'वेरियम क्लोराइड' का प्रभाव डालकर कृत्रिम माणिक्य प्राप्त किया था। इस प्रकार के जो माणिक्य प्रस्तुत हुये थे उनके विषय में उपर्युक्त महाशयों ने इस प्रकार लिखा है।

इन माणिक्यों की क्रिस्टलता नितान्त सुन्दर है। इनकी चमक अपूर्व है। ये शुद्ध माणिक्य की भाँति चमक प्रदान करते हैं। ये पूर्णरूपेण प्रति-बिम्बतापूर्ण हैं। इनमें शुद्ध माणिक्य की भाँति कठोरता है और जब ये गर्म किये जाते हैं तो ये काले हो जाते हैं। और ठण्डे होने पर पुनः अपने गुलाबी रंग में आ जाते हैं।

डेस क्लोजो (Des cloizoau) ने उनके विषय में यों लिखा है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र (microscope) से देखने पर उन माणिक्यों के कतिपय क्रिस्टल बुलबुले के सदृश दीख पड़ते हैं। अन्यान्य अनुसन्धानकर्ता महाशयों ने भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन किया है। उपर्युक्त महाशयों के अलावा 'एलसनर' (Elsner), डी सेनारमण्ट (De Sanarmant), डेवाइल (Devile), 'केरन' (Caron) और 'डिब्रे' (Debray) आदि महाशयों ने भी माणिक्य प्रस्तुति में सफलता प्राप्त की है। इन लोगों के अनुसन्धान में उष्णता द्वारा नमक और एलुमिना को पिघलाकर दिखाया गया है। एलुमिना पिघले हुये नमक में तब तक डाला जाता है जब तक इसमें समा सके अर्थात् आत्मसात् हो सके और इस घोल के द्रव को कई सप्ताह तक चूल्हे पर ही रखे रहते हैं। इस प्रणाली से नमक तरल वाष्प में परिणत हो जाता है। तथा एलुमिना क्रिस्टल का रूप धारण कर लेता है। नमक और एलुमिना के घोल अथवा द्रवावस्थामें ही क्रोमियम का इच्छित रंग डाल दिया जाता है। एक प्रकार का प्रस्तर जिसे 'स्पाइनल' या 'वैलेस' कहा जाता है माणिक्य के बदले में प्रयोग करने के विषय में दूसरे प्रकरणों में कही गई है। 'स्पाइनल' और माणिक्य प्रकृति की गोद में एक साथ पले होते हैं। वर्मा के कितने ही प्रकार के 'स्पाइनल' माणिक्य ही समझे जाते हैं। माणिक्य की प्रस्तुति के समय प्रायः यह देखा जाता है कि जब तक माणिक्य के क्रिस्टल बनने की आशा की जाती है तब तक अथवा उससे भी पूर्व 'स्पाइनल' के क्रिस्टल बन जाते हैं। वह विलयन या घोल द्रव इस प्रकार से रखा जाता है कि लाल रंग के एलु-मिना (जिसमें कि 'क्रोमियम' मिश्रण होता है) में ही क्रिस्टल बनते हैं। प्राकृतिक एलुमिना में 'सिलिका' और 'मेगनेसिया' भी सम्मिश्रित होते हैं परन्तु कृत्रिम माणिक्य निर्माण में सिलिका का कुछ ही अंश सम्मिश्रित हो पाता है

और 'मेगनेसिया' तो बिल्कुल ही सम्मिश्रित नहीं हो पाता। वैज्ञानिक लोग एलुमिना का यह एक दुर्गुण बतलाते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है कि यूरोप में कतिपय गुप्त उपायों द्वारा बनाये गये माणिक्य के बड़े-बड़े टुकड़े लन्दन में प्रदर्शित किये गये थे। इस तरह के माणिक्यों में और प्राकृतिक माणिक्य में कोई विशेष अन्तर देखने में नहीं आया।

अभी हाल में ही सर डब्ल्यू राबर्ट्स आष्टीन (Sir W, Robert's, Austien) ने मेटालिक क्रोमियम के साथ-साथ माणिक्य भी बनाया है। क्रोमियम आक्साइड और एलुमिनीयम पाउडर एक साथ मिला दिये जाते हैं और इस तरह के मिश्रण के ऊपर के भाग में उष्णता प्रदान की जाती है। इस उष्णता से क्रोमियम पिघल जाता है और इसके पिघलने से एलुमिना भी पूर्णरूप से पिघल जाता है और क्रोमियम के ऊपर स्तररूप में छा जाता है। कभी-कभी एलुमिना क्रोमियम को उचित मात्रा में अपने अन्दर आत्मसात् नहीं कर पाता अतएव माणिक्य का उत्तम आकर्षक रंग नहीं आ पाता। एलुमिना, क्रोमियम आदि का घोल जब ठण्डा होता है तब वह माणिक्य के रूप में आ जाता है।

शोधन—

सर्वप्रथम रत्न खनिज से निकलता है। इस अवस्था में कभी २ वह एक साफ सुथरा और सुन्दर दिखाई देता है। परन्तु कभी २ लाखों की सम्पत्ति आंखों के सामने सैकड़ों की जंचती है। संस्कार और परिसंस्कारों से यथार्थ और सच्ची वस्तु सच्चे रूप में निखर आती है।

औषध प्रयोग में तो हमेशा सच्ची वस्तु ही ली जानी चाहिए। असली वस्तु का ही शोधन करना चाहिये। माणिक्य रत्न के शोधन के लिये दोला यंत्र की सहायता द्वारा शोधन करना पुरानी और सुगम विधि है।

नीबू के रस में दोलायन्त्र की सहायता से एक याम तक स्वेदित करने से माणिक्य की शुद्धि हो जाती है। अथवा—

बीजपूर (बिजोरा नीबू), Citrus Acida (साइट्रस एसिडा),

जम्बीरी नीबू, कागजी नीबू (Lemon), मीठा नीबू (Sweet lemon),

कमरख (Carambola) इमली (Tama rind tree),

अमलवेतस, विषाम्बिल (Kokambutter tree)

इन अम्लवर्ग के स्वरस के साथ दोलायंत्र की सहायता से माणिक्य का विपाचन करें। उत्तम शुद्धि हो जायगी।

नवीन विधि—

नीबू का सत (Citric acid) कुछ पानी के साथ पोर्सलेन के कटोरे में रखें। इस कटोरे को सुरा प्रदीप (Spirit lamp) पर गरम करें। इसी हालत में कटोरे में माणिक भी डाल दें। तब तक गरम करें जब तक द्रवांश उड़ न जाय। बाद में जल में धो डालें। उत्तम शुद्धि हो जाती है।

मारण भस्मीकरण—

बहुत ही अच्छी प्रकार से शोधन किये हुये माणिक्य को खूब बारीक चूर्ण करलें। माणिक्य की समान मात्रा में ही मनःशिला, हरिताल और गंधक प्रत्येक को अलग २ लेकर मिलालें और इन चारों वस्तुओं को नीबू के रस से ७ दिन तक घोटें। पश्चात् चक्रिकायें बनाकर घाम में सुखावें। इन चक्रिकाओं को वारणपुट नामक विधि से आठ वार पुट दें। पीली प्रभा रहित भस्म तैयार हो जायगी।

विशुद्ध माणिक्य, शुद्ध गंधक, शुद्ध मनःशिला और शुद्ध हिंगुल—इन चारों को समान मात्रा में लेकर नीबू के रस में ७ दिन तक घोटें। चन्द्रिकायें बनावें और वारण पुट नामक प्रसिद्ध पुट की विधि से आठ बार पुट दें। माणिक्य की शीघ्र ही बहुत बढ़िया भस्म बन जायगी। मात्रा $\frac{1}{4}$ रत्ती से लेकर $\frac{1}{2}$ रत्ती तक। इसे बल काल को देखकर देनी चाहिये।

माणिक्यभस्म,
स्वर्णभस्म,
चांदीभस्म,
पुखराजभस्म,

उपर्युक्त चारों भस्में समान भाग लेकर इन सबों से आधा भाग कस्तूरी मिलाकर घृतकुमारी के रस की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। इस रस के सेवन करने से वीर्यवर्धन, बलवर्धन, अग्निदीपन नपुंसकताहरण और विशेषकर ध्वजभंग रोग दूर होता है।

माणिक्य का एक दूसरा प्रकार

स्पिनल (Spinal)

स्पीनल (Spinal) माणिक्य का ही एक प्रकार है। जौहरी लोग इसे प्रायः माणिक्य कहकर ही बेचते हैं। परन्तु माणिक्य में जो आभा, चमक और

आकर्षण होता है वह स्पीनल में नहीं होता। स्पीनल कई रंगों का होता है। लाल, अरुण, नारङ्गी के समान अरुण-पीत मिश्रित, पीत-नीलाभा युक्त, हरित-नीलाभायुक्त, नील-लोहित मिश्रित एवं मुख्यतः अरुणाभा युक्त, इस प्रकार कई रंगों का होता है।

प्राप्तिस्थान—स्पीनल पेगु से अधिक आता है। नीलवर्ण प्रधानता लिये हुये स्पीनल एशिया माइनर के अल्बन डिन इन केरिया (Albandin in Caria) से आता है। अतएव इसका नाम अल्बनडिन माणिक्य (Albandin Ruby) पड़ गया है। परन्तु वैज्ञानिक शोधों के बाद इसका समावेश स्पीनल वर्ग में किया गया है। स्पीनल—सीलोन (लंका) आवा (Ava) और स्याम (Siam) में भी पाया जाता है। एक प्रकार और भी स्पीनल होता है जिसका कि रङ्ग नीलम के रङ्ग के समान नीलिमा प्रधानता लिये हुये अरुणाभा मिश्रित होता है—इसे 'सेफायरिनस्पीनल (Sapphirine-Spinal) कहते हैं। यह स्वीडेन (Sweden) के अकर (Aker) नामक स्थान से आता है तथा ग्रीनलैण्ड और उत्तरी अमेरिका से भी आता है। नील अथवा हरित्-लोहित वर्ण मिश्रित स्पीनल-सीलोन (लंका) के कैण्डी नामक स्थान से आता है। सीलोन से आनेवाले स्पीनल का नाम 'सीलोनाइट' (Ceylonite) कहा जाता है। दूर्वा-दल सदृश हरित् एवं किंचित् पीताभायुक्त स्पीनल जलाटुस्ट (Zalatoust) नामक स्थान से आता है। एक प्रकार का स्पिनल सर्पों (Snapes) के मस्तिष्क से भी प्राप्त होता है—इसे 'सर्पमणि' (Picotite Spinal) कहते हैं।

रूप रङ्ग और लक्षण—(लालड़ी) जो अधिक लालवर्ण की स्पीनल होती है उसे (१) Spinel Ruby कहते हैं।

जो कुछ गुलाबी मायल रंग की होती है उसे (२) Balas Ruby कहते हैं।

जो लोहितवर्ण और अपारदर्शक होती है उसे (३) Ceylonite Spinal कहते हैं।

इसमें लौहांश होने के कारण लोहितवर्ण होता है। यह सीलोन से आती है।

रासायनिक संयोजन (Chemical-composition)

(१) स्पीनल—मुख्यतः मैगनेसियम, अल्युम्यूनियम तथा किंचित् लौह और क्रोमियम का यौगिक रत्न है।

सूत्र—$Ingal_2 O_4$ विशेषतः सीलोन-स्पीनल में लौह का अंश अधिक होता है।

मैगनेसिया	२८ प्रतिशत
अल्युम्यूनियम	७२ प्रतिशत
लौह और क्रोमियम एवं अन्य पदार्थ	१० प्रतिशत
कठोरता (Hardness)	८
आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	३.६ से० ३. ७
आवर्तनांक (R. I.)	१.७२ से १.७५

माणिक्य और स्पीनल में प्रभेद—

माणिक्य और स्पीनल में कभी-कभी अच्छे-अच्छे अनुभवी जौहरियों को भी प्रभेद करने में मुश्किल पड़ जाती है। परन्तु अधोलिखित सारिणी से स्पष्टतः प्रभेद किया जा सकता है। इसके अलावा माणिक्य से स्पीनल पर खरोंच पड़ जाती है। स्पीनल से माणिक्य पर नहीं।

रत्न	कठोरता (Ho)	आपेक्षिक गुरुत्व	आवर्तनांक
माणिक्य	९	४.०	१.७६० से १.७६८
स्पीनल	८	३.६	१.७२० से १.७५०

बलास-स्पीनल-माणिक्य
(Balas-spinel-Ruby)

बलास-स्पीनल माणिक्य पीतारुणाभा युक्त एक निम्न श्रेणी का माणिक्य-प्रकार है।

स्पीनल जो कि अरुणाभा युक्त अथवा प्रगाढ़ अरुणाभा युक्त होता है।

इसका परिज्ञान तो प्राचीन समय से ही था जिसे भारतीयों ने जात्यानुसार 'क्षत्रिय माणिक्य' कहकर विवेचन किया है।

परन्तु बलास-स्पीनल का सुनिश्चित परिज्ञान सर्वप्रथम 'मोरोपोलो' नामक वैज्ञानिक ने १३वीं शताब्दी में 'बलासिया (Balasoia) नामक एक प्राचीन राज्य के जगडालक (Gagdalak)—बडक्शाँ (Badakshan) नामक स्थान (जो कि इस समय अफगानिस्तान मण्डलान्तर्गत है) में किया।

प्राकृतिक और कृत्रिम माणिक्य में भेद निदर्शन

रचना (Struchure)	प्राकृतिक मानिक्य (Real Ruby)	कृत्रिम मानिक्य (Artificial Ruby)
बुल्बुलाकृति विन्दु (Bubblas)	अनियमित आकृति में प्रायः प्रसरित और कोणावृत्ति विन्दुओं में।	प्रायः नितान्त गोल विन्दुओं में कहीं कभी प्रसरित, परन्तु कोणाकृति विन्दुओं में कदापि नहीं।
रंग परिवर्तन (Variations of colour)	माणिक्य प्रस्तर के विभिन्न भागों से रंग विकीरित होता है। रेखादल (Bands) या तो समानान्तर नियमित होती हैं। अथवा समानान्तर अनियमित होती हैं।	रंग प्रायः मिश्रित परन्तु कभी-कभी विकीरित भी होता है। रेखादल प्रस्तर की बाह्य सीमा तक गोलाई लिये हुए होती हैं।
सूत्राकृति दल (Striations)	प्रस्तर की बाह्य-सीमा तक सूत्र या तो नितान्त सीधे जाते हैं अथवा कोणाकृति (angular) रूप से।	सूत्र एक केन्द्रिक (Concentic) गोलाई लिये हुये बाह्य सीमा तक जाते हैं।
बाह्यपदार्थ समावृत्ति (Inclusious of toreign matter)	कभी-कभी कुछ बाह्य पदार्थ तरह-तरह की आकृति में अनियमित इतस्ततः स्थित रहते हैं।	बाह्यपदार्थ प्रायः गोलाई लिये हुये टुकड़े रूप में सूत्राकृति दल के नीचे होते हैं।
रेशमी सूत्र दल (Silk)	रेशमी सूत्रदल माणिक्य प्रस्तर में प्रायः तीन दिशाओं में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में समानान्तर लम्ब रूप से जाते हैं। यह स्थिति प्रकाश परावर्तन आयोजना से परिलक्षित होती है। प्राकृतिक माणिक्य का यह खास लाक्षणिक रूप है।	यह लक्षण कृत्रिम माणिक्य में कभी भी नहीं पाया जाता।

नीलम

(Sapphirc)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—नीलम के संस्कृत पर्याय वाचीनाम नील, नीलोत्पल, नीलरत्न, महानील एवं शनिरत्न हैं। हिन्दी—नीलम, नीलमणि। बंगला = इन्द्रनील। मराठी—नीलरत्न। गुजराती, कनाडी—नीलम्। फारसी—याकूत। अरबी—याकूतकबूद याकूत अल-अजीर (Yakut-al-asir) अंग्रेजी—सेफायर (Sapphire) लेटिन—सेफायरस (Saffirus) चीनी—चांग श्याक, (Chang-shyak) वर्मी—नील (Nila)।

उद्भवस्थान—ब्रह्मा, लंका और काश्मीर नीलम के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। सबसे उत्तम श्रेणी का नीलम लंका में पाया जाता है जहाँ यह और रत्नों के साथ नदियों की बालू में पाया जाता है। लंका के नीलमों को काटने से ६ प्रकार के प्रतिबिम्ब निकलते हैं। लंका के नीलम-उत्पादक प्रसिद्ध स्थानों में रकेवाना, रत्नपुरा तथा सतावक प्रसिद्ध हैं। कुछ वर्ष पूर्व बटाम बोंग (Battambong) प्रान्त में स्याम (Siam) नामक स्थान में नीलम का अनुसन्धान किया गया था परन्तु इन स्थानों में पाये जाने वाले नीलम निम्न-श्रेणी के एवं काले रंग के होते हैं। बरमा में नीलम माणिक्य के साथ पाये जाते हैं परन्तु बहुत ही कम। हाल ही में चन्द्रभागा के निकट पालदार नामक स्थान में नीलम पाये गये हैं। विक्टोरिया एवं न्यूसाउथ वेल्स (New south wales) की सोने की खानियों में नीलम के क्षेत्र विस्तृत फैले हुये हैं। परन्तु इन स्थानों के नीलम प्रायः काले रंग के होते हैं। विक्टोरिया के बिचउड (Beach wood) जिले में कतिपय उच्चश्रेणी के भी नीलम पाये जाते हैं। यूनाइटेड स्टेट्स (U. S. A,) के कई नीलम स्थानों में रूखे और खरदरे नीलम पाये गये हैं। उत्तरी कारोलीना के कोरण्डम पर्वत (Corundam Hills) में आभूषणों के लायक कई एक उत्तम श्रेणी के रत्न पाये गये हैं। योरोप की राइन (Rhine) नदी की घाटियों में नीलम पाये जाते हैं। परन्तु यहाँ के नीलम आभूषणों के लिये उतने अच्छे नहीं होते।

काश्मीर—में नीलम का अनुसन्धान सर्व प्रथम १८८१ ई० में लगाया गया। यहाँ पर नीलम पेग्मेटाइट (Pegmatite) नामक धारीदार शिलाओं

में पाये जाते हैं। इन शिलाओं में नीलम के साथ ही साथ टूर्मलीन, तामड़ा एवं काइनाइट नामक उपरत्न भी पाये जाते हैं। १८८१ से १९वीं शताब्दी के अन्त तक काश्मीर नरेश को नीलम से बहुत अच्छी आय होती रही। सन् १९०६ में यहाँ 'काश्मीर मिनरल कम्पनी' की स्थापना हुई। नीलम उपलब्धि-स्थान १४००० फीट ऊँचा होने से साल में ९ मास इस पर्वत पर बरफ ढका रहता है अतएव जितनी आमदनी की आशा की जाती थी उतनी आशा सिद्ध न हो सकी। १९०७ ई० में यहाँ से एक उत्तम श्रेणी का नीलम प्राप्त हुआ। यह नीलम २ हजार पौण्ड में बिका। सन् १९३३ से यहाँ पर पहले की अपेक्षा काफी जोरों से कार्यारम्भ हुआ और लगभग २५००० तोला नीलम कुछ कुरण्डम के साथ उपलब्ध हुआ। इसका मूल्य लगभग १ लाख रुपया प्राप्त हुआ।

लक्षण—एकच्छायं गुरुस्निग्धं स्वच्छपिण्डितविग्रहम्।
मृदुमध्ये लसज्ज्योतिः सप्तधा नीलमुत्तमम्॥

जिस नीलम में अन्य वस्तु का प्रतिबिम्ब न बन सके, भारी, स्निग्ध स्वच्छ, पिण्डाकृति, मृदु एवं दीप्तियुक्त हो, ये सातों लक्षणों से युक्त नीलम श्रेष्ठ समझा जाता है।

प्रकार—संस्कृत ग्रन्थों में नीलम दो प्रकार का माना है—

(१) जल नीलम। (२) शक्रनीलम।

श्वैत्य-गर्भित-नीलाभं लघु तज्जलनीलकम्।
कार्ष्ण्यगर्भितनीलाभं सभारं शक्रनीलकम्॥

जिस नीलम के बीच में से श्वेताभा आती हो और आस पास से नीलाभा आती हो एवं हल्की नीलाभा हो उस नीलम को 'जलनीलम' कहते हैं। जिस नीलम के मध्य में से काली आभा आती हो और आस-पास से अत्यन्त नीलवर्ण की आभा आती हो वह इन्द्र या शक्र नीलम कहलाता है।

जो नीलम तीसी के फूल के रंग का होता है वह उत्तम और सर्वप्रिय होता है। रत्न पारखियों का कथन है कि नीलम माणिक्य से अधिक कठोर और हीरे से कम कठोर होता है। कठोरता में यह दूसरे नम्बर का रत्न है। कठोरता के कारण ही पुराने लोग नीलम को सरलतापूर्वक नहीं काट पाते थे। पालिश अवश्य कर लेते थे।

गुणधर्म—श्वासकासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम्।
विषमज्वर-दुर्नाम-पापघ्नं नीलमीरितम्॥

श्वास कास को नष्ट करता है, वीर्यवर्धक है। त्रिदोषों को नष्ट करता है

एवं उत्तम श्रेणी का दीपन कार्य करनेवाला है। नीलम को शरीर में धारण करने से पाप नष्ट होते हैं।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म—याकूत कबूत नीला चमकदार, स्वाद में फीका, स्वभाव में सर्द नं० १ और खुश्क नं ३ है। इसके स्थानापन्न याकूत अहमर है। मात्रा ३ रत्ती गुण—सर्दी करता है। तबियत को नर्म करता है खासकर आँखों को कुव्वत देता है, विष और फोड़े फुन्सियों के रोग को दूर करता है। ऐजा को कुव्वत देता और खुश्की करता है। जहरीला नहीं है।

रासायनिक संयोजन—नीलम कुरण्डम कक्षा का रत्न है। जो रासायनिक तत्त्व माणिक्य में पाये जाते हैं वही नीलम में भी पाये जाते हैं, नीलम का रासायनिक सूत्र AL $2^{0}3$ है।

१. कठोरता (Hardness) ९
२. आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.९९
३. आवर्तनांक (RetractiveIndices) १.७६–१.७७
४. द्विआवर्तनांक (Double Retraction) ·००८
५. द्विवर्णत्व (Dichroism) सुदृढ़ (Strong)

नीलवर्ण रत्नों का आपेक्षिक निदर्शन

रत्न	कठोरता	आपेक्षिक गुरुत्व	आवर्तनांक	द्वि-वर्तनांक	द्वि-वर्णत्व
नीलम	९	३.९९	१.७६से१.१७७	.००८	सुदृढ़
वेनीटॉइट	६½	३.६७	१.७५से१.८०	.०४७	सुदृढ़
कॉयनाइट	४ से ६	३.६७	१.७१से१.७३	.०१६	सुदृढ़
कृत्रिम Spinal	८	३.६३	१.७२७	कुछ नहीं	कुछ नहीं
Spinal	८	३.६०	१.७२	"	"
तुरमली	७	३.१०	१.६२से१.६४	०.०२०	सुदृढ़

नीलम और ज्योतिष शास्त्र

प्राच्यमत—(१) नीलम और शनिग्रह की मैत्री है अतएव शनिग्रह जिस व्यक्ति पर प्रकुपित होता है—शनि के प्रशमनार्थ नीलम के धारण, दान एवं भस्मादि के प्रयोग करने से अवश्य लाभ होता है। शनिग्रह के कुदृष्टित होने पर अधोलिखित व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

यक्ष्मा वातोदरो मूर्च्छास्नायुरुक् कृमिसम्भवाः।
पक्षाघातस्तथा श्वास-प्लीहा-ज्वरेण क्षीणता॥

सर्वत्र वायुजा पीडा हस्तपाद - प्रकम्पनम् ।
एते हि शनिरोगाः स्युर्विज्ञेया मुनिसम्मताः ॥

राजयक्ष्मा, वातोदर, मूर्छारोग, प्लीहोदर, स्नायु पीड़ा, कृमिरोग, पक्षाघात, श्वासरोग, जीर्णज्वर, सर्वाङ्ग में वायुजन्य पीड़ा और हाथ पैरों का काँपना, ये समस्त रोग शनिग्रह के प्रकुपित होने से होते हैं। इन समस्त रोगों में नीलमभस्म के सेवन करने से एवं धारण, दान करने से अवश्य लाभ होता है।

(२) शनि—हितः शनेरिन्द्रनीलो ह्यसितो घनमेघरुक् ।

सघन मेघ के समान असित—प्रगाढ़ नीला रंग शनिग्रह को प्रिय है। नीलम के विषय में लौकिक धारणा यह है कि इसे धारण करने से किसी भी प्रकार की विष बाधा नहीं होती एवं यह मनुष्य को महत्वाकांक्षी बनाता है।

आषाढ़ मास के शनिवार रोहिणी नक्षत्र पर कम से कम सवा रत्ती के नीलम की अँगूठी पहनना चाहिए। नीलम की कट गोलाकार रथ के समान आकृति होनी चाहिये। इस प्रकार धारण करने से लक्ष्मी, आयु, आरोग्य सामर्थ्य, वैभव एवं मानसोल्लास की सम्प्राप्ति होती है।

पाश्चात्य मत (१) जगत् प्रसिद्ध ज्योतिषी 'किरों' के मतानुसार जिन व्यक्तियों का जन्म फरवरी मार्च और नवम्बर मास में हुआ होता है उन्हें नीलम के प्रयोग—धारण, दान एवं भस्मादि के सेवन से अवश्य ही अभ्युदय होता है। तथा जिन व्यक्तियों का जन्म उन तारीखों में हुआ हो जिनका कि योगफल चार होता है (जैसे ४, १३, २२ एवं ३१) नीलम के धारण करने से अत्यन्त लाभ होता है।

(२) अन्यान्य पाश्चात्य ज्योतिषियों ने लिखा है कि जिन लोगों का जन्म अप्रैल मास में हुआ हो उन्हें नीलम अवश्य पहनना चाहिये।

(३) नीलम की अँगूठी पहने हुये साधारण से साधारण व्यक्ति भी राजा, महाराजा, सेठ साहूकार, नेता, अभिनेता, विद्वान् , विदुषी किसी के भी सामने हतप्रभ नहीं होता।

कृत्रिम नीलम—डौबरी महाशय ने (Mr. Daubree) यह लिखा है कि माणिक्य और नीलम में तात्विक दृष्टि से कोई भी विशेष अन्तर नहीं है। केवल अन्तर है तो यही कि माणिक्य के घोल में जब अधिक क्रोमियम डाला जाता है तब वह घोल माणिक्य में परिणत हो जाता है और जब क्रोमियम कम डाला जाता है वह घोल नीलम में अर्थात् Oriental sapphirc में परिणत हो जाता है। नीलम का खास रंग क्या है। इस विषय में भी कुछ वर्षों तक वैज्ञानिकों में काफी मतभेद बना रहा। कुछ रासायनिक लोग इस रंग को

क्रोमियम का रंग समझते हैं और कुछ इसे कोबाल्ट (Cobalt) समझते हैं।

कृत्रिम नीलम माणिक्य की तरह बड़े-बड़े आकार के बनाये जाते हैं और एलुमिना के विलयन या घोल में कोबाल्ट के निक्षेप से पूर्णरूपेण नीलाभा धारण करते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि सच्चे प्राकृतिक प्राच्य नीलम (Oriental sapphirc) के ठीक रंग के साथ कृत्रिम नीलम में रंग नहीं चढ़ाया जा सकता।

शोधन—शोधन के लिये उत्तम प्राकृतिक नीलम लेना चाहिये।

नीलीस्वरससंयुक्तं दोलायंत्रे विधानतः।
यामैकं परिपक्वन्तु नीलं शुद्ध्यति निश्चितम्॥

नीली के स्वरस के साथ दोलायंत्र में एक याम तक परिपाक करने से नीलम शुद्ध हो जाता है।

मारण-भस्मीकरण—मनःशिला १ भाग, हरताल १ भाग, गन्धक १ भाग और विशुद्ध नीलम चूर्ण ३ भाग लेकर नीबू के रस में सात दिन तक घोटें और इसकी चक्रिका बनाकर घाम में सुखाकर वारण पुट में आठ बार फूँक दें। बहुत उत्तम नीलम भस्म तैय्यार हो जायगी।

आमयिक प्रयोग—नीलम के उपयोग एवं मात्रा माणिक्य के समान ही जानना चाहिये।



पन्ना

(Emerald)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः । (आ० प्र०)

पन्ना के संस्कृत नाम मरकत, गारुत्मत, अश्मगर्भ, हरिन्मणिः, तार्क्ष्य, गारुण, बुधरत्न और हरिद्रत्न हैं । हिन्दी—पन्ना, बंगला—पाना, कनाड़ी—पाचिपच्चै, मराठी—पांच रत्न, पाँचूरत्न, गुजराती—पानौं, पीलु, फारसी—जमुर्रद, अँग्रेजी—इमराल्ड (Emerald), लेटिन—स्मेरेग्डस (Smaradus), चीनी—बर्मी ।

(२) उद्गम स्थान—

(क) भारतीय क्षेत्र—

(१) अजमेर—वैसे तो प्राचीन समय से ही राजस्थान में पन्ना प्रायः इतस्ततः उपलब्ध होता रहा है । परन्तु अभी ही हाल में वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर अजमेर के पास 'गुगरा घाटी' नामक स्थान में पन्ने की खान का उद्भव हुआ है । इस खानि से उद्भवित पन्ना रूप-रंग, पानी और हरिदाभा में उत्कृष्ट श्रेणी का सिद्ध हुआ है । इस खानि के विषय में वैज्ञानिकों का आनुमानिक कथन है कि इस खानि के और भी अधस्तर में उच्चकोटि के पन्ने निकाले जायंगे । जौहरी वर्ग में इस खानि के पन्नों को 'अजमेरी पन्ना' कहा जाता है ।

(२) उदयपुर—उदयपुर की खानि से उपलब्ध पन्ने का रंग उत्तम हरिदाभायुक्त होने पर उतना पानीदार नहीं होता । साथ ही प्रस्तर में काफी भंगुरत्व (चुरचुरापन) होता है ।

(३) भीलवाड़ा—भीलवाड़ा निकटस्थ 'कालागुमान' गिरिश्रृंगों के पार्श्ववर्ती अंचल की खानियों से उपलब्ध पन्ने का रंग सबसे अधिक उज्वल हरित् वर्ण का होता है ।

(ख) विदेशीय क्षेत्र—

पन्ने की मुख्य-मुख्य खानियाँ—ब्रेजिल, कोलम्बिया, मेडागास्कर रसिया और साइबेरिया आदि में हैं ।

(१) कोलम्बिया का मुजो (muzo) नामक स्थान पन्ना के लिये प्रसिद्ध है । इस स्थान का पन्ना 'कोलम्बियन पन्ना' कहलाता है । यह उच्च-

श्रेणी का पानीदार और दृढ़ होता है। कोलम्बियन पन्ना मुख्यतः दो प्रकार की खानियों से उद्भव होता है। एक खानि के पन्ने में हरिदाभा अल्प और साथ ही किंचित् नीलवर्ण की आभा (झाईं) परिलक्षित होती है। दूसरी खानि का पन्ना अत्यधिक हरिदाभायुक्त होता है। यह पन्ना उच्चश्रेणी का माना जाता है।

(२) 'रसियन पन्ना' हरिदाभायुक्त पानीदार होता है। पानी किसी में अल्प और किसी में अधिक मात्रा में हो सकता है। 'रसियन पन्ना' न तो उच्च श्रेणी का ही समझा जाता है। और न निम्न श्रेणी का ही समझा जाता है। साधारण श्रेणी में इसका समावेश किया जाता है। किन्हीं-किन्हीं 'रसियन पन्ने' में काली विन्दु (छींटा) भी पाई जाती हैं। रंग हरिद् वर्ण साधारण या अल्प मात्रा में पाया जाता है।

(३) मेडागास्कर एवं अफ्रिका का पन्ना 'अफ्रिकन पन्ना' कहलाता है। 'अफ्रिकन पन्ना' विन्दुमय (छींटेदार) और हरित् वर्णभायुक्त होता है। 'क्रोश्रा' नामक खानि से उद्भवित पन्ना उच्च श्रेणी का माना जाता है। 'अफ्रिकन पन्ने' को 'टेलरी' या 'बाटली' पन्ना भी कहा जाता है।

(४) साइबेरिया के ओडन शिलंग नामक स्थान से प्राप्त पन्ने भी बाजार में पाये जाते हैं। 'साइबेरियन पन्ना' साधारण श्रेणी का पन्ना समझा जाता है।

रूप रंग और लक्षण—

(१) हरिवर्णं गुरुस्निग्धं स्फुरद्रश्मिचयं शुभम्।
मसृणं भासुरं तार्क्ष्यं गात्रं सप्तगुणं मतम्॥
(र. र. समुच्चय)

(२) स्वच्छं गुरुस्निग्धगात्रं चमार्दव समेतं व्यंगं बहुरंगम्।
श्रृंगारी मरकतं विभृयात्...... .... ॥
(भा. प्र.)

जो पन्ना हरे रंग का, भारी, चिकनापन लिये हुये, उज्ज्वल किरणावलियुक्त सुचिक्कण एवं पारभासक—ये सात गुणों वाला हो तो उसे उत्तम प्रकार का पन्ना कहा जाता है। पानीदार या आवदार पन्ना उत्तम श्रेणी का होता है। विन्दुमय (व्यंगयुक्त) हरे रंग का अथवा अन्य रंगों का भी पन्ना होता है। विन्दुरहित हरे रंग का पन्ना सर्वोत्तम होता है।

निकृष्ट श्रेणी का पन्ना—

(१) कपिलं कर्कशं नीलं पाण्डु कृष्णं मलान्वितम्।
चिपिटं विकटं रूक्षं लघु तार्क्ष्यं न शस्यते॥
(रसरत्नसमुच्चय)

(२) शर्करिलं रूक्षं मलिनं लघुहीनकान्तिकस्मषम् ।
त्रासयुतं विकृतांगं मरकतममरोऽपि न युञ्जीत ॥ (भावप्रकाश)

जो पन्ना जामुनी, नीली, पीली एवं काली झाईंवाला अथवा नीला पीला या काले वर्ण का हो । मैलयुक्त, चपटा, विषमाकार, रूखा, हल्का हो । खरदरा और कान्तिहीन और आबरहित हो वह पन्ना निकृष्ट श्रेणी का होता है । अतएव ऐसे पन्ना को आभूषण एवं औषध प्रयोग में नहीं लाना चाहिये ।

रासायनिक सूत्र एवं विश्लेषण—पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने पन्ना को 'बेरिल' (Beryl) नामक एक वर्ग मानकर उसके अन्तर्गत एक प्रकार माना है । बेरिल की प्रधानता मानकर जो कुछ भी वैज्ञानिक पद्धति पर विश्लेषण हुये हैं, वे सब बेरिल नामभिहित करके किये हैं । अतएव उसी आधार पर सूत्र एवं विश्लेषणात्मक अधोलिखित रूप से सारिणी दी जाती है ।

रासायनिक सूत्र—(Chemical formula) ।


$Be_3AL_2Si_6O_{18}$.

पन्ना उपर्युक्त तत्वों द्वारा निर्मित एक यौगिक (Compound) पदार्थ है । इनके अलावा किंचित् जलांश एवं क्षारीय उपधातुयें (Alkalimetals) जैसे लीथियम, सोडियम, पोरिशियम, फैसियम एवं रुबिडियम की भी किंचित् मात्रा उपस्थित रहती है ।

पन्ना में जो हरीतिमा होती है उसका कारण 'सेस्क्यू आक्साइड' (Sesque-oxide) नामक द्रव्य है । जिस पन्ना में इस तत्व् की कमी या अभाव अथवा नितान्त अभाव होता है—उसमें उतनी ही हरीतिमा की कमी अथवा अभाव होता है । पन्ना के मणिभ (Cystals) षट्कोणीय प्रणाली (Hexa goral system) के त्रिपार्श्व आकृति (Prisms) रूप में पाये जाते हैं । पन्ना का मणिभ (Crystal) पारदर्शक होता है । खनिजावस्था से बाहर निकालते समय पन्ना पर्याप्त नरम होता है परन्तु जैसे जैसे हवा का सम्पर्क होता जाता है—कठोरता आ जाती है ।

रासायनिक संगठन—(Chemical composition)

१ सिकता (Silica)	६८.५०%
२ एलुमिना (Alumina)	१५.७५%
३ ग्लुसिना (Glucina)	१२.५०%
४ क्रोमियम आक्साइड (Cromium oxide)	०.३० %
५ लौह आक्साइड (Iran oxide)	१.००%
६ सुधा (Lime)	०.२५%
कठोरता (Hardness)	७$\frac{3}{4}$

आपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) २.६ से २.९ तक
आवर्तनांक (Retractive indices) १.५६ से १.५९ तक

प्रकार (Varieties)—पन्ना आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार बेरिल वर्ग के अन्तर्गत एक प्रकार है। इस प्रकार बेरिल के चार प्रकार और हैं।

१. पन्ना (Emerald)
२. बेरुज (Agua marine)
३. हेलियोडोर (Heliodor)
४. मार्गेनाइट (Marganite)

हरित वर्ण रत्नों का आपेक्षिक निदर्शन

पन्ना का मुख्य रंग हरित् वर्ण है। परन्तु अन्यान्य रत्नों पररत्नों का भी हरित् वर्ण होता है। उस समय रंगानुसार निश्चय करने में कभी-कभी बड़े-बड़े दक्ष और अनुभवी व्यक्ति भी भ्रम में पड़ जाते हैं। अधोलिखित निदर्शन से यह कार्य सुगम हो सकता है।

रत्न नाम	कठोरता (H)	आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	आवर्तनांक (R. I)	द्विवर्तनांक (D. R.)
पन्ना	७$\frac{3}{4}$	२·७१	१·५७ से १·५९ तक	·००६
ज़िरकान	७	४·०	१·८२	·०१
नीलम	९	४·००	१·७६ से १·७७ तक	·००९
डेमेनटॉइड	६$\frac{1}{2}$	३·८५	१·८९	×
जबरजद (Peridot)	६$\frac{1}{2}$	३·३४	१·६५ से १·६९ तक	·०३७
संगेसम (Jadrite)	७	३.३३	१·६५ से १·६७ तक	·०१४
फ्लोर्सपर	४	३.१८	१·४३	×

विशेष—उपर्युक्त रत्नों के अलावा पन्नी, टोपस, अकीक, मगंज, वैक्रान्त आदि रत्न भी कभी कभी हरित् वर्ण के उपलब्ध हो जाया करते हैं। उनका भी बहुत ही सावधानी से पृथक् निदर्शन करना चाहिये।

(१) पन्नी—कठोरता में कम होता है।

(२) टोपस—में हरित् वर्ण के साथ-साथ श्वेतविन्दु और जालवत् रेखायें होती हैं।

(३) अकीक—हरीतिमा होती है परन्तु यह अर्ध पारदर्शक होता है।

(४) मर्गज—अपारदर्शक होता है।

(५) वैक्रान्त—या तुरमली में गुरुताधिक्य होता है।

पन्ना के दोष—पन्ना में १० दोष होते हैं। जिस पन्ने में इन दोषों की कमी होगी या नितान्त अभाव होगा वह उतना ही उत्कृष्ट श्रेणी का माना जाता है। दस दोष अधोलिखित हैं—

(१) गाँजा—जो पन्ना अपारदर्शक और पानीरहित होता है वह 'गाँजा' दोषयुक्त पन्ना कहलाता है।

(२) अभ्रकी—वह पन्ना जिसमें अभ्रक के समान रंग और चिटकापन हो उसे 'अभ्रकी' दोष कहते हैं।

(३) रूखापन—जिस पन्ने में से सूर्य रश्मियाँ प्रत्यावर्तित न होकर उसकी दीप्ति या चमक परिलक्षित न कर सकती हों—अर्थात् जिस पन्ने में चमक न हो उसे 'रूखापन दोष' युक्त पन्ना या 'रूखपन्ना' कहते हैं।

(४) चुरचुरा—जिस पन्ने में पानी या आब कम हो एवं साधारणसा घर्षण लगने से भंगुरत्व या टुकड़े-टुकड़े हो जाते हों—'वह 'चुरचुरा' दोष कहलाता है।

(५) गड्ढा—मणिकार जब पन्ने का पेशस्करण करता है उस समय कभी-कभी एक प्रकार का गर्त या गड्ढा निकल आता है उसे 'गड्ढा' दोष कहते हैं।

(६) रेखा—कभी-कभी किसी-किसी पन्ने में कृष्णवर्ण अथवा श्वेतवर्ण की रेखा या लाइन दिखाई देती है उसे 'रेखादोष' कहते हैं।

(७) चीर—किसी पारदर्शक वस्तु के भग्न हो जाने पर उसे पुनः संयोजित करने पर भी एक खास प्रकार की लाइन दिखाई देती है उसे 'चीर-दोष' कहते हैं। कभी-कभी प्रस्तर में व्यस्यस्त या आड़ी चीर बन जाती है—इस कारण सूर्यरश्मियाँ प्रत्यावर्तित नहीं हो पातीं अतएव प्रस्तर की दीप्ति या पानी नष्ट हो जाता है।

(८) छींटा—जब पन्ने में कृष्ण, पीत, श्वेत अथवा अरुणवर्ण की विन्दु में दिखाई देती हों तो उसे 'छींटादोष' कहा जाता है।

(९) सोनामक्खी—पन्ने में कभी-कभी पीतवर्ण की स्वर्ण के समान चमकदार विन्दुयें दिखाई देती हैं। इसे 'सोनामक्खी' दोष कहते हैं।

(१०) रेशा—

पन्ने का निर्णयात्मक परीक्षण—पन्ना अभी रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण द्वारा कृत्रिम (Synthetic) निर्मित नहीं हो पाया है। परन्तु हरिद्वर्ण के काँच (Glass) तो प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। काँच में एवं पन्ने में अधोलिखित निदर्शनों द्वारा पन्ने का निर्णयात्मक परीक्षण हो जाता है।

(१) पन्ना एक नरम प्रस्तर होता है। उसका शान पर पेशस्करण होने से उस पर सुचिक्कणलता आ जाती है। काँच में रूक्षता आयेगी।

(२) प्राकृतिक पन्ने में रुख (Spot) पार्श्व में या मध्यमें अथवा किसी भी स्थान में अवश्य होती है। पन्ना के आभूषणात्मक निर्माणकर्ता की विद्वत्ता इसी बात पर निर्भर होती है कि वह रुख को रत्न में ऐसे स्थान पर स्थित करवावे ताकि रत्न की आभा और भी प्रदीप्त हो सके। यह रुख काँच में नहीं होता।

(३) मारवर या मकराना प्रस्तर पर हरिद्रा की गाँठ घिसकर उस पर पन्ने का घर्षण करें—हरिद्रा चूर्ण अपने मौलिक रंग—पीतवर्ण का ही रहेगा। परन्तु काँच के घर्षण से हरिद्रा चूर्ण का पीत वर्ण अरुणवर्ण (सुर्ख) का हो जायगा।

(४) श्री वोहलर, होमिस्टर एवं ग्रेवाइल विलियम्स आदि वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पन्ना को अत्यधिक उष्णता प्रदान करने से भी वह अपने प्रकृति प्रदत्त हरीतिमा रंग का परित्याग नहीं करता

(५) मिस्टर इमेनुअल महाशय का कथन है कि पन्ने का खास परीक्षण यही है कि उसका धरातल सम और सुचिक्कण हरिदाभायुक्त कृष्ण विन्दुओं से रहित हो।

(६) वैज्ञानिक पद्धति पर परीक्षणार्थ (क) कठोरता (hardness) (ख) आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.), आवर्तनांक (R. I.) आदि साधनों का सहारा परम उपादेय है। परन्तु इन साधनों का उपयोग सर्वसाधारण में प्रायः नहीं होता। शिक्षित और आधुनिक आंग्लविद्या परिज्ञात जौहरी इन साधनों द्वारा निर्णयात्मक परीक्षण अवश्य करते हैं।

(७) पन्ना परीक्षक यंत्र (Emerald tester) द्वारा पन्ने का परीक्षण करने से प्राकृतिक पन्ने का रंग हरीतिमा के स्थान पर अरुणिमा मय (सुर्ख) दिखाई देता है। काँच का रंग हरा ही बना रहेगा।

व्यावसायिक महत्त्व—सप्तरंगों में हरा रंग भी अपनी एक खास ढंग की छटा रखता है। प्रकृति नटी ने अपने को नानारंगों के आभूषणों द्वारा सजाया है। पन्ना के हरिदाभा समन्वित आभूषण भी उसे अतीव प्रिय हैं। प्रकृति

माता की जो अभिरुचि होती है उसी प्रकार उसकी सन्तति मानव-प्रकृति की भी अभिरुचि होना स्वाभाविक ही है। मानव प्रकृति को पन्ना की हरीतिमा युग-युग से प्रिय होती आ रही है।

भारतवर्ष में अपेक्षाकृत अन्यान्य बड़े बड़े नगरों के पन्ना का निर्माण केन्द्र एवं विक्रय केन्द्र जयपुर मुख्य है। यहाँ पर विदेशों से एवं भारतवर्ष के अन्यान्य क्षेत्रों से पन्ना खड (Rough) रूप में आता है। जयपुर का जौहरी बाजार भारतवर्ष में ही नहीं अपितु संसारप्रसिद्ध है। वैसे तो यहाँ सैकड़ों प्रतिष्ठित जौहरी हैं परन्तु पन्ना के निर्माण एवं विक्रय कार्य में ५-७ जौहरी ही प्रसिद्ध हैं—इनमें मुख्यतः = सेठ सुन्दर लालजी ढोलिया तथा सेठ राजरूप जी टाँक विशेष प्रसिद्ध हैं। राजरूप जी टांक पन्ना के निर्माण में विशेष पटु हैं। आप राष्ट्रीयता के भी परिपोषक व्यक्ति हैं। पन्ना के पेशस्करण उद्योग में ६-७ हजार मजदूर नियमित रूप से कार्य करते हैं। ये मजदूर अधिकांश में मुसलमान हैं—हिन्दुओं की संख्या बहुत ही अल्प है।

हमारी भारत सरकारने रत्न व्यवसाय को 'लक्जरी' व्यवसाय समझकर उस पर आवश्यकता से अधिक 'कर' निर्धारित कर दिया है। 'लक्जरी' शब्द का अर्थ 'अय्याशी' होता है। क्या रत्न व्यवसाय 'अय्याशी व्यवसाय' है। सोना चाँदी, रत्न, उपरत्न जिस देशमें जितने अधिक होते हैं वह देश उतना ही वैभवशाली समझा जाता है। क्या रूस में रत्नों का व्यवसाय नहीं है। यदि है तो क्या वहाँ की सरकार ने इस व्यवसाय के पीछे 'अय्याशी' 'विशेषण कभी लगाया है। आशा है हमारी अभ्युदय आकांक्षिणी सरकार अय्याशो' शब्द को हटाने पर विचार करेगी और जो 'कर' निर्धारित किया गया है उसपर भी पुनः विचार करेगी। अधिक 'कर' वसूल करने की नीति से कुछ सामयिक सुभीते तो प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु कभी कभी किसी खास उद्योग के ठप हो जाने की भी सम्भावना बनी रहती है। इस समय जयपुर का यह उद्योग काफी शिथिलावस्था में दिखाई दे रहा है। जयपुर के 'जौहरी मण्डल' द्वारा इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र भी सरकार की सेवा में प्रेषित किया जा चुका है।

पन्ना और ज्योतिष शास्त्र—(१) पन्ना की बुध नामक ग्रह से मैत्री है अतएव जिस व्यक्ति के लिये बुध ग्रह की कुदृष्टि हो रही हो पन्ना का धारण, दान एवं भस्मादि का उपयोग लाभप्रद होता है। बुध जब कुदृष्टित होता है तब अधोलिखित व्याधियाँ होती हैं।

त्वग्दोषो वायुना पीड़ा जिह्वारोगो विचर्चिका।
मत्तताबमने श्लेष्मा बुधे त्रिदोषदुष्टता ॥ (प्रश्नकल्पतरु)

बुधग्रह के कुदृष्टित होने पर त्वचा सम्बन्धी रोग वायुजन्य पीड़ा, जिह्वा रोग, एक्जीमा आदि त्वचारोग, उन्माद, वमन के साथ कफाधिक्य, एवं तीनों दोषों का प्रकोपण होकर सन्निपातादिक् व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में पन्ना का धारण दान, भस्मादि का प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होता है।

पाश्चात्य—(२) सुप्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिषी 'किरो' (Cheiro) के मतानुसार जिन व्यक्तियों का जन्म मार्च मासकी मेष (Aries) राशि में अथवा मई मास की वृष राशि में तथा सितम्बर मास की कन्या राशि में हुआ हो उन्हें पन्ना का धारण विशेष लाभप्रद होता है।

(३) जिन व्यक्तियों का जन्म किसी भी मास की वह तारीख जिसका कि योगफल ६ होता हो (जैसे ६, १५, २४) उन्हें पन्ना का धारण एवं भस्मादि का सदैव प्रयोग करते रहना चाहिये।

(४) 'मयूरचापपत्राभा पाचिर्बुधहिता हरित्।

मयूर के पंख के समान हरित वर्ण पन्ना बुध ग्रह के लिये प्रिय है। माघ मास के आर्द्रा नक्षत्र में बुधवार के दिन बुध के होरा में १। रत्ती से २॥ रत्ती तक के पन्ना को (नागर बेल पान की आकृति का या चतुष्कोण घाट वाला पन्ना) अँगूठी में मढ़वाकर पहनना चाहिये।

(५) किसी झूठी बात को लेकर किसी व्यक्ति ने मुकदमा चलाया हो सत्य पक्षवाले व्यक्ति को पन्ना धारण करके जज के सामने जाना चाहिये। झूठे गवाहों के मुंह से स्वतः ही सत्य बात निकलने लगेगी और मुकदमे का निर्णय सत्य पक्ष की ओर ही होगा।

(६) चीन में एक ऐसी दन्तकथा चली आ रही है कि यदि दो प्रेमी अपने प्रेम को प्रगाढ़ बनाने के लिये पन्ने की अँगूठी परस्पर में आदान-प्रदान करें तो उनका प्रेम दिनों दिन बढ़ता जाता है। किन्हीं कारणों से यदि प्रेम कम हो जाय तो अँगूठियों में पहने हुये पन्ने की चमक भी धीरे धीरे मन्द-फीकी पड़ने लगती है।

गुणधर्म—

(१) ज्वरच्छर्दिविषश्वाससन्निपाताग्निमान्द्यनुत्।
दुर्नामपाण्डुशोफघ्नं तार्क्ष्यमोजोविवर्धनम् ॥ (रसरत्नसमुच्चय)
पाचिका शीतला रुच्या रसकाले मधुस्मृता।
पुष्टिकृद्विषहा वृष्या भूतबाधाम्लपित्तहा ॥
ज्वरच्छर्दिविषश्वास-सन्तापाग्नेयमान्द्यनुत्।
दुर्नामपाण्डुशोफघ्नं तार्क्ष्यमोजोविवर्धनम् ॥ (भावप्रकाश)

पन्ना ज्वर, वमन, विष, श्वास, सन्निपात, अग्निमांद्य, अर्श, पाण्डु, शोथ इन सबों का नाश करता है। यह वीर्यवर्धक, ओज को बढ़ाने वाला, गुदा सम्बन्धी समस्त रोग एवं समस्त भूत बाधाओं का नाश करता है।

(२) प्लीनी—नामक सुप्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि पन्ने में बहुत से गुण होते हैं। यह आँखों के लिये लाभदायक है। प्रसूतावस्था में स्त्रियों के लिये उनके समस्त भावी रोगों को रोकता है। इसके पास में रहने से भूत पिशाच सब दूर भागते हैं। और अन्त में वह लिखता है कि भारतीय लोग बहुत पुराने जमाने से ही इसे औषध प्रयोग में लाते रहे हैं।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म—(३) 'मखजन उलमुफरदात' के लेखक ने पन्ने के कुश्ता (पिष्टी) के विषय में लिखा है कि—पन्ने का कुश्ता फरहत देता है, असली हरारत व अर्वाह व दिल और दिमाग व जिगर और मेदे को कुव्वत बखशता है। मिर्गी व जुनून और कफ कान व जधन्धर और यर्कान व रुकी हुई पेशाब और कोढ़ को दूर करता है। इसका सुर्मा बीनाई को कुव्वत देता है ज़हर को मारने वाला होता है।

............ताचर्य गोदुग्धकैस्तथा। (रसरत्न समुच्चय)

गौ के दूध में दोलायंत्र द्वारा एक प्रहर तक पन्ना को स्वेदित करने से निश्चय रूप से उत्तम विशोधन हो जाता है।

भस्मीकरण—पन्ना को विशोधित करके समान भाग में मनःशिला, गंधक और हरताल को लेकर परस्पर में अच्छी प्रकार सें मिला लें और बड़हल के रसमें घोटकर मूषा में बन्द कर आठ बार फूँकने से भस्म हो जाती है।

मात्रा—पन्ना भस्म की मात्रा ½ रत्ती से लेकर १ रत्ती की मात्रा बल, का और आयु आदि का पूर्ण विचार करते हुये देना चाहिये।

पन्ना (Emerald) का प्रमुख प्रकार

(१) बेरिल (Beryl)

बेरिल और पन्ना में बहुत कम अन्तर पाया जाता है। प्लीनी महोदय ने इन दोनों में केवल यही अन्तर बतलाया है कि बेरिल से पन्ना में केवल कठोरता अधिक होती है। तथा बेरिल की अपेक्षा पन्ना में 'क्रोमियम' नामक तत्त्व की मात्रा कुछ ही अधिक होती है।

प्राप्ति-स्थान—बेरिल के मुख्य प्राप्ति स्थान, ब्राजिल, कोलम्बिया, मेडागास्कर, रसिया, साइबेरिया इत्यादि हैं। ब्राजिल के रायसन मोट्टियो (Rioson-mottio) नामक स्थान में, सेक्सनी में और बोहोमिया (Bohemia) के स्लाकेन वाल्ड (Schlaken wald) नामक स्थान में बेरिल बहुतायत से पाया जाता है। संयुक्त राज्य (United Kingdom) अर्थात्—England.

Wlaes, Scotland, Ireland इत्यादि स्थानों में, मान पर्वतों पर काउण्टी डाउन, काउण्टीडब्लीन, कार्नवाल के कुछ स्थानों एवं एबर्डिन शायर तथा डी (Dee) और डॉन (Don) नामक नदियों के पाश्र्ववर्ती अंचलों में पर्याप्त बेरिल पाया जाता है।

रूप, रंग और लक्षण—बेरिल का रंग हरित्, प्रगाढ़ हरित्, पीत-नीलाभा युक्त हरित् तथा कोई-कोई बेरिल रंगरहित श्वेत भी हो सकता है। बेरिल पारदर्शक अर्धपारदर्शक एवं पारभासक भी हो सकता है। अथवा नितान्त अपारदर्शक भी पाया जाता है।

उपयोग—रोमन लोग बेरिल का आभूषणों में प्रयोग बड़े चाव के साथ करते हैं। रोमन लोग प्राचीन समय में षट्कोणाकृत्ति में कटवाकर कर्ण आभूषणों में अधिक मढ़वाते थे। रोमन तथा यूनानी बेरिल में खुदाई का काम भी किया करते थे। मेढ़क का चिह्न बेरिल पर खुदवाकर पहनने से टूटी हुई मित्रता अथवा दाम्पत्य कलह का नाश होकर पुनः मेलमिलाप होता है। तथा यह भी विश्वास है कि बेरिल के धारण करने से युद्ध में शरीर का संरक्षण होते हुए विजय प्राप्त होती है। शरीर का आलस्य दूर होकर फुर्तीपन आता है। यूनानी, भारतीय एवं रोमन लोग पन्ना और बेरिल के तावीज अधिक पहना करते थे।

आजकल बेरिल अधिक पाये जाने के कारण लोग इसकी माला भी पहनते हैं। स्त्रियाँ चूड़ियों में मढ़वाती हैं।

सबसे उत्तम और सबसे बड़ा बेरिल ब्राजिल के सम्राट के पास है। इसकी तौल पूरी १८ पौंड है। संयुक्त राज्य (United States) के न्यू हेम्पशायर (New Hempshire) के ग्राफटन नामक स्थान में दो बड़े-बड़े बेरिल पाये गये हैं जिनकी तौल क्रमशः २९०० पौंड और १०७६ पौंड है। परन्तु ये प्रस्तर पारदर्शक अथवा अर्धपारदर्शक नहीं हैं। अतएव इन्हें रत्नों में समावेश करने के विषय में अभी वैज्ञानिकों में काफी मतभेद है।

रासायनिक संयोजन—(Chemical-composition)

सूत्र—$Be_3AL_2Si_6O_{18}$.

सूत्रोल्लिखित तत्त्वों के अलावा इसमें कुछ अल्कलाई पदार्थ जैसे—लीथियम (Lithium), सोडियम (Sodium), पोटासियम (Potassium), केसियम (Caesium) और रूबीडियम (Rubidium) भी पाया जाता है। जिस प्रकार में केसियम आक्साइड पाया जाता है उसका रंग कुछ पीताभा मिश्रित हरित होता है। केसियम आक्साइड (Cs_2O) की मात्रा ४.५६% होती है।

कठोरता (Hardness) ७½ से ७¾ तक
आपेक्षिक गुरुत्व २·६ से २.९ तक
आवर्तनांक (R. I.) १.५६ से १·५९ तक

द्वि-वर्तनांक (D. R.) ·००६

रासायनिक संगठन (C. C.)

बेरिल में निम्न लिखित पदार्थों या तत्वों का सम्मिश्रण है जो कि डा० लेवे (Lewy) महोदय ने बतलाया है।

बेरिनियम (Berinium)	about	३०%
सिलिका (Silica)	"	३७.०६%
एल्युमिना (Alumina)		१६.५०%
ग्लुसिना (Glucina)		१४.५०%
क्रोमियम आक्साइड (Chromium oxide)		०.०५%
आयरन आक्साइड (Iron-oxide)		१.००%
सुधा या चूना (Lime)		०.५०%

बेरिल के प्रकार

बेरिल के मुख्यतः तीन प्रकार और हैं।

(१) एक्वामेरिन (Aquamarine) यह पीत-नील अथवा नीलहरित् वर्ण होता है।

(२) स्वर्ण प्रभ बेरिल (Golden Beryl) या हिल्लियोडोर (Heliodor) यह पीताभा प्रधान होता है।

(३) पीतप्रभ बेरिल (Pink Beryl) या मार्गेनाइट (Marganite) यह गुलाबी मिश्रित पीताभायुक्त होता है।

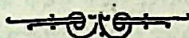
इन तीनो प्रकार के बेरिल की कठोरता, आपेक्षिक गुरुत्व इत्यादि का परिज्ञान अधोलिखित सारिणी से स्पष्टतः हो जाता है।

रत्न	कठोरता (H.)	आपेक्षिक (S. G.)	आवर्तनांक (R. I.)	द्वि. वर्तनांक. (D. R.)
(१) एक्वामेरिन (Aqua marine)	७½	२.६९	१.५७५	.००६.
(२) स्वर्णप्रभबेरिल (Golden Beryl)	७½	२.६८	१.५७	.००३.
(३) पीतप्रभ बेरिल (Pink-Beryl or Marganite)	७½	२.८०	१.५९	.००८.

पन्ना का दूसरा प्रकार—क्राइसो बेरिल (Chryso-Beryl)

क्राइसस—स्वर्ण को कहते हैं। इसकी स्वर्णाभा प्रधानतः होने के कारण इसका नाम क्राइसो-बेरिल पड़ा है। इसका रंग पीताभा लिये हुए हरित वर्णाभायुक्त होता है। यह एल्युम्यूनियम, बेरीलियम और आक्सीजन का यौगिक है। इसका सूत्र $Be\ O.AL_2O_3$ अथवा$Be\ AL_2O_4$ है। इसमें सिकता (Silica) का अभाव है। यह कुरन्दम् (माणिक्य, नीलम से कठोरता में कम और पुखराज तथा स्पिनल से अधिक कठोर है। इसका एक और भी कीमती प्रकार है जो कि सर्वप्रथम द्वितीय एलेक्जेण्डर के राज्य में भी पाया गया था अतएव इसका नाम भी एलेक्जेण्ड्राइट (Alexanderite) रखा गया है। यह ब्राजिल, यूराल (Urals) पर्वत श्रेणियों में एवं सिलोन और भारतवर्ष के मद्रास प्रान्तार्गत कोयम्बटूर जिले में तथा किशनगढ़ राज्य के गोविन्द सागर नामक स्थान में भी पाया जाता है।

रत्न	कठोरता	आपेक्षिक गुरुत्व.	आवर्तनांक	द्वि. वर्तनांक.
क्राइसोबेरिल,	८½	३.७	१.७६	.००९
एलेक्जेण्ड्राइट,	८½	३.७१	१.७५	·००९



वैडूर्य

(लहसुनिया Cat's-eye)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—विदूररत्न, वैडूर्य, केतुरत्न, विदूरज, विडालाख्य, विडालाक्ष, वायज—ये नाम वैडूर्य (लहसुनिया Cat'sye) के हैं। हिन्दी—वैडूर्यमणि, लहसुनिया, सूत्रमणि। बंगला, मराठी—वैडूर्यमणि। गुजराती—लसणियो। कन्नड—वैडूर्य। अरबी—एन अल हिर (Ain. Al. Hir)। अँग्रेज़ी—कैट्स आई (Cat's-eye)। बर्मी—चानो (Chano)। चीनी—मो जी गन (maw-gi-gan)।

उद्भवस्थान—आधुनिकतम अनुसन्धानों से यह सिद्ध हो चुका है कि व्यावसायिक महत्त्व के आधार पर वैडूर्य का प्रमुख उद्भवस्थान सीलोन है। परन्तु फिर भी ब्राज़िल—उत्तर अमेरिका और यूराल पर्वताञ्चल प्रधान उद्भव-स्थानों की श्रेणी में माने जाते हैं। उत्कृष्ट श्रेणी का वैडूर्य सीलोन का ही माना जाता है। भारत में विन्ध्य-सत्पुडा पर्वताञ्चलों में प्रवाहमान नदियों के प्रस्तरों में यत्र तत्र यदा कदा उत्तम श्रेणी के वैडूर्य उपलब्ध होते रहते हैं।

सुन्दर बेना गंग किनार, अटक कटक कामरु मझार।
विन्ध्य हिमाचल त्रिकुट पहार, सिरिपुरदेस महानद नार।
मदिन ब्रह्म काबुल सैलाना, विकट सुराती देस जु खाना।

वेणुगंगा, अटक, कटक, (उड़ीसा), कामरूप (आसाम), विन्ध्याचल हिमाचल, त्रिकूट पर्वत (सीलोन), महानदी, मक्कामदीना, बरमा और काबुल में भी प्राचीन काल में वैडूर्य की खानें थीं। आजकल भी उपर्युक्त स्थानों से यदा कदा वैडूर्य उत्कृष्ट श्रेणी के समुपलब्ध हो जाया करते हैं।

अविदूरे वैडूर्यस्य गिरेरुत्तुंगरोधसः।
कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरोऽभवत् ॥

प्राचीन समय के उल्लेखों के आधार पर यह विदित होता है कि कामभूतिक (कामरूप-कमच्छा अर्थात् आसाम) सीमा के पार्श्ववर्ती स्थानों के विदूर पर्वत के समीप के उत्तुंगों (शिखरों) में एवं पर्वत के पार्श्व से बहने वाली नदियों की बालु तथा छोटे-छोटे प्रस्तरों में वैडूर्य प्राप्त होते थे।

आधुनिक खनिज शास्त्रज्ञ भी आसाम के, मणिपुर, नागा पहाड़ियों और चीन की भारतीय सीमा संलग्न पर्वत मालाओं में वैडूर्यादि बहुमूल्य प्रस्तरों

की खानों का अनुमान इस आधार पर लगाते हैं कि ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियों में अनेकों प्रकार के स्फटिक वर्गीय (बिल्लौर जाति के) प्रस्तर समुपलब्ध होते हैं।

वैडूर्य के प्रकार—तात्विक दृष्टि से वैडूर्य दो प्रकार का माना गया है। प्रथम प्रकार का समावेश मरकत (पन्ना) वर्ग में (Emerald group) और दूसरा प्रकार स्फटिक (बिल्लौर) (Qwartz group) वर्ग के अन्तर्गत आता है। व्यावसायिक दृष्टि से व्यवहार में आने वाले पारिभाषिक शब्दों में मरकतीय वैडूर्य्य (Emerald or chrysoberyl cat's-eye) और स्फटिकीय वैडूर्य (Qwartz cat's eye) काम में आते हैं।

रासायनिक संयोजन (Chemical composition)

(क) मरकतवर्गीय (Emerald-group) वैडूर्य का रासायनिक संयोजन अधोलिखित प्रकार है।

(१) Aluminate of Beryllium (एल्यूमिनेट आफ बेरेलीयम) = $Beo + AL_2 O_3$ अथवा $BeAL_2 O_3$ अर्थात् मरकत वर्गीय वैडूर्य मुख्यतः एल्यूमीनियम और बेरेलीयम तत्वों का यौगिक है।

(२) कठोरता (Hardness)	८.५
(३) आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	३.७१
(४) आवर्तनांक (R. I.)	१.७६
(५) द्विवर्तनांक (D, R. I.)	.००९

(ख) स्फटिक वर्गीय (Qwartz group) वैडूर्य का रासायनिक संयोजन अधोलिखित है।

(१) Silican oxide (सिलिकन आक्साइड) = Sio_2 अर्थात् यह प्रकार सिकता और (प्राणवायु ओषजन Oxigen) नामक दो तत्वों का यौगिक है।

(२) कठोरता (Hardness)	७.०
(३) आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	२.६५
(४) आवर्तनांक (R. I.)	१.५४
(५) द्विवर्तनांक (D. R. I.)	.००९

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने तो वैडूर्य के केवल दो ही नहीं अपितु चार प्रकारों के विषय में भली भांति ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अग्निपुराण, गरुडपुराण, बृहत्संहिता एवं युक्तिकल्पतरु के रचयिताओं ने अधोलिखित प्रकार बताये हैं—

गिरिकाच-शिशुपाली-काच-स्फटिकाश्च भूमिनिर्भिन्नाः ।
वैदूर्य्यमणेरेते विजातयः सन्निभाः सन्ति ॥
लिख्याभावात् काचं लघुभावाच् शैशुपालकं विद्यात् ।
गिरिकाचमदीप्तत्वात् स्फटिकं वर्णोज्ज्वलत्वेन ॥
जात्यस्य वर्णस्य मणेर्न जातु विजातयः सन्ति समानवर्णाः ।
तथापि नानाकरणार्थमेव भेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ॥
सुखोपलक्ष्यं सदा विचार्य्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण ।
स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्वं विजातिलिङ्गं खलु सर्वजन्यम् ॥
यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य सुवर्णसंख्याकलितस्य मूल्यम् ।
तदेव वैदूर्यमणेः प्रदिष्टं पलद्वयोन्मापितगौरवस्य ॥

भिन्न भिन्न खानों से उद्भावित वे रत्न जिनमें वैडूर्य मणि के लक्षणोपलक्षण पाये जाते हैं । यथा गिरिकाच में सूत्रों का पाया जाना एवं बिल्ली की आँख के समान बिन्दु और दीप्ति का पाया जाना । इसी प्रकार शिशुपाली वैडूर्य्य, काच वैडूर्य और चौथा प्रकार स्फटिक वैडूर्य । इन चारों प्रकारों में वैडूर्य के प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं । इन चारों को परस्पर में एक दूसरे से लेखन (खरोंच) करने से जिस प्रकार में खरोंच न पड़ सके और दीप्ति युक्त हो वही उत्कृष्ट वैडूर्य माना जाता है । शिशुपाल नामक वैडूर्य देखने में बड़ा परन्तु तौलने पर हल्का होता है । गिरिकाच में दीप्ति नहीं होती । स्फटिक वैडूर्य का वर्ण उज्ज्वल होता है । ये चारो प्रकार भिन्न-भिन्न जाति के होते हैं । पूर्वोक्त भेद जो बताये गये हैं वे केवल वैडूर्य के लक्षणों के आधार पर ही बताये गये हैं । प्रत्येक प्रकार की विशेषता उसकी लघुता, मृदुता एवं सुचिक्कणता और दीप्तिमत्ता पर ही निर्भर करती है ।

सबसे उत्कृष्ट प्रकार का वैडूर्य इन्द्रनील (मरकत=Emrald) जाति का ही होता है । यदि इन्द्रनील या मरकत में वैडूर्य्य के लक्षण पाये जाते हैं तो वह अतीव मूल्यवान् समझा जाता है । यदि इसी प्रकार का वैडूर्य्य वज़न में १ तोला से २ तोला पर्यन्त हो तो उसका मूल्य अनेकों सहस्र रूपया हो जाता है ।

रूप, रंग और लक्षण—

प्रावृट् पयोद-वरदर्शित-चारुरूपा,
वैदूर्यरत्नमणयो विविधावभासाः ।
पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ ।
सर्वांस्तान् वर्णशोभाभिर्वैदूर्यमनुगच्छति ॥
सितश्च धूम्र-संकाशमीषत्कृष्णनिभश्भवेत् ।

वैदूर्यं नाम तद्रत्नं रत्नविद्भिरुदाहृतम् ॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रजातिभेदाच्चतुर्विधम् ।
सितनीलो भवेद्विप्रः सितरक्तस्तु बाहुजः ॥
पीतनीलस्तु वैश्यः स्यान्नील एव हि शूद्रकः ।
मार्जार-नयन-प्रख्यं रसोनप्रतिमं हि वा ॥
कलिलं निर्मलं व्यङ्गं वैदूर्यं देवभूषणम् ।
सुतारं घनमत्यच्छं कलिलं व्यङ्गमेव च ॥
वैदूर्याणां समाख्याता एते पंच महागुणाः ।
उद्गिरन्निव दीप्तिं योऽसौ सुतार इति गद्यते ॥
प्रमाणताल्पं गुरु यद् घनमित्यभिधीयते ।
कलङ्कादिविहीनन्तु अत्यच्छमिति कीर्तितम् ॥
ब्रह्मसूत्रं कलाकारश्चञ्चलो यत्र दृश्यते ।
कलिलं नाम तद्राज्ञः सर्वसम्पत्तिकारकम् ॥
विश्लिष्टाङ्गन्तु वैदूर्यं व्यङ्गमित्यभिधीयते ।
गुणवान् वैदूर्यमणिर्योजयति स्वामिनं वरभाग्यैः ॥

ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु के पूर्व आकाश में काले, पीले और नीले चमकदार बादल कितने सुन्दर दिखाई देते हैं—ठीक इसी वर्ण का वैडूर्य विविध रूप रंग का आभासित होता है। पद्मराग (माणिक्य = Ruby) जिस प्रकार अनेक वर्णों का होता है उसी प्रकार वैडूर्य्य भी अनेक वर्णों से युक्त पाये जाते हैं। सफेदी लिये हुये काले धुयें (Gray) रंग का किंचित् कृष्णाभा लिये हुये वर्ण का वैडूर्य्य रत्नशास्त्रज्ञों ने उत्कृष्ट माना है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के अनुसार वैडूर्य वर्णानुसार चार प्रकार का माना है। श्वेतवर्ण प्रधान नीलाभायुक्त वैडूर्य ब्राह्मण श्वेतवर्ण प्रधान अरुणाभायुक्त वैडूर्य्य क्षत्रिय, पीतवर्ण प्रधान नीलाभायुक्त वैश्य और केवल नील वर्ण प्रधान वैडूर्य शूद्र जाति का होता है।

वैडूर्य का वर्ण प्रायः मार्जार नयन (बिल्ली की आँख के समान = Tawny Coloured like a Cat's-eye) अर्थात् पीत-नीलारुण वर्णाढ्य होता है अथवा लहसुन की गाँठ के समान श्वेतारुण किंचित् पीताभा युक्त होता है।

सुन्दर, निर्मल और विश्लिष्टांग (लक्षणोपलक्षणयुक्त) वैडूर्य देवताओं अथवा राजामहाराजाओं के भूषण के योग्य होता है।

उत्कृष्ट वैडूर्य के प्रधान पांच महागुण होते हैं। (१) सुतार, (२) घन (३) अत्यच्छ, (४) कलिल और (५) व्यङ्ग।

(१) सुतार—रत्न में दीप्ति (रश्मियाँ = Rays) बाहर निकलती

हैं और इस कारण रत्न चमकदार, सुन्दर और आकर्षक होता है—इस लक्षण को सुतार लक्षण कहा जाता है।

(२) घन—रत्न वैसे तो परिमाण में छोटा मालूम होता है परन्तु तोलने में भारी वजनदार होता है—इस लक्षण को घन कहा जाता है।

(३) अत्यच्छ—कलंक (काले धब्बे आदि Spots) आदि रहित लक्षण को अत्यच्छ या निर्मल कहा जाता है।

(४) कलिल—ब्रह्मसूत्र (जनेऊ के धागे) के समान कलाकृतिमयता और प्रकाश की चञ्चलता को कलिल कहते हैं।

(५) व्यङ्ग—रत्न के प्रत्येक अंग-यथा सुतारत्व, घनत्व, निर्मलत्व, कलिलत्व आदि गुणाढ्यता युक्त लक्षणों को व्यङ्ग कहा जाता है।

विशेष विवेचन—वैडूर्य अँगूठी में तथा अन्यान्य आभूषणों में अतीव प्राचीन समय से प्रयुक्त होता चला आ रहा है। इधर सन् १८१५ ई० में अर्ध इंच व्यास युक्त अर्धवृत्ताकार वैडूर्य्य सीलोन (एक प्रकार से भारत भूमि) में ही प्राप्त हुआ था। रिबरो (Ribro) नामक इतिहासवेत्ता ने 'सिंहल इतिवृत्त' नामक ग्रन्थ में काण्डी राज्य के अधीश्वर के पास यह वैडूर्य्य है—यह चर्चा की है) यही वैडूर्य्य राजा डरा के पास था। इस राजा ने इस वैडूर्य्य को (सूर्य्यमुखी पुष्प की आकृति का स्वर्ण पुष्प बनवाकर आसपास के पुष्पदलों के स्थान पर पुखराज और बीज कोप के स्थान पर इस वैडूर्य) मढ़वाया था। यह बात १८१५ से पूर्व १६ वीं शताब्दी की है।

स्फटिकीय वैडूर्य्य—मरकतवर्गीय वैडूर्य्य की अपेक्षाकृत कीमत कम होती है। यह कठोरता आदि में एवं उज्ज्वलता में कम होता है। स्फटिकीय वैडूर्य फ्लूरिकाम्ल (Fluric acid) में घुलनशील है। कास्टिक के सहयोग से अग्नि पर तप्त करने पर विकीर्ण (टूटफूट) हो जाता है। इस प्रकार में ६४ भाग सिकता, १५ भाग ओषजन (Oxygen) एवं शेष कैल्सियम और लौह इत्यादि तत्व होते हैं।

अरब में प्राचीन काल से ही स्फटिकीय वैडूर्य्य अकीक (Agate) की खानियों से निकलता आ रहा है। परन्तु आज कल अरबियन वैडूर्य्य का महत्व नहीं के बराबर है। खम्बात और गुजरात प्रान्त में भी यह बहुतायत से पाया जाता था। इस समय न केवल भारतवर्ष में ही अपितु समस्त संसार में सिलोनी वैडूर्य्य ही काम में आता है।

काठियावाड (खम्बात) और सिलोन में अकीक के समान ही वैडूर्य्य को भी उष्णोदक में भलीभाँति प्रक्षालन करके उसमें थोड़ी मृदुता लाकर उस पर पालिश करके समुज्ज्वलता लाई जाती है।

गुणधर्म—

(१) वैडूर्यं रक्तपित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्धनम् ।
पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलमोचनम् ॥

अर्थात्—पित्तप्रधान (An excess of Bile) रोगों को मुख्यतः रक्त-(Haemorrhage) रोग को नष्ट करता है। बुद्धि, आयु, बल (Knowlege, Longevity and Strength) को बढ़ाता है। दीपन और मलमोचन (Digeestive and Laxative) कार्य करता है।

(२) सुभृतं खलु वैडूर्यं मधुरं शिशिरं परम् ।
दीपनं मेध्यमायुष्यं बल्यं च मलभेदनुत् ॥
रक्तपित्तप्रशमनं चक्षुष्यं बृंहणं परम् ।
पित्तामयप्रशमनं समाख्यातं विशेषतः ॥

अर्थात्—वैडूर्य भस्म मधुर रस प्रधान और शीतवीर्य गुण भूयिष्ठ है। दीपन कार्य करते हुए बुद्धि, आयु और बलवर्धक है। विरेचक, रक्तपित्त नाशक चक्षुरोगहारक तथा वीर्यवर्धक है। विशेषतः वैडूर्य भस्म पित्त रोगों को नष्ट करने में प्रसिद्ध है।

चिकित्सोपयोगी वैडूर्य—

वैडूर्यं श्यामशुभ्राभं समं स्वच्छं गुरु स्फुटम् ।
भ्रमच्छुभ्रोत्तरीयेण गर्भितं शुभमीरितम् ॥

वैडूर्य जो कि कृष्णाभा लिये हुये श्वेतवर्णाभ (Blackish white) समाकार, स्वच्छ, भारी और चमकदार (Smooth surfaced, Transparent, Heavy and Bright), पार्श्ववर्ती स्थानों के अन्तर्गर्भ में सफेद चमकदार होता है—वह वैडूर्य्य शुभ और औषध प्रयोग में लाने लायक होता है।

अनुपयोगी—श्यामं तोयसमच्छायं चिपिटं लघु कर्कशम् ।
रक्तगर्भोत्तरीयं च वैडूर्यं नैव शस्यते ॥

जो वैडूर्य काला, पानी की छाया (Water-coloured), चपटा (Flat-shaped), लघु, हलका, कर्कश (खुरदरा = Rough) पार्श्ववर्ती स्थानों के अन्तर्गर्भ से ललाई आती हो—ऐसे वैडूर्य्य को चिकित्सा के उपयोग में लेना चाहिए।

हकीमी मतानुसार-गुणधर्म।

ज्योतिष शास्त्र और वैडूर्य—

वैडूर्य रत्न की केतुग्रह से मैत्री है। अतएव केतुग्रह की प्रकुपितावस्था में एवं एतज्जन्य व्याधियों में वैडूर्य भस्म का सेवन तथा धारण, दान इत्यादि करना चाहिए।

शोधन—

त्रिफलाक्कथितोपेतं वैडूर्यं याममात्रकम् ।
दोलायंत्रे परिस्विन्नं शुद्धिमायात्यनुत्तमाम् ॥

अर्थात्—त्रिफला के क्काथ में वैडूर्य को एक याम तक दोलायंत्र में परिस्वेदन करने से उत्तम प्रकार का शोधन हो जाता है।

भस्मीकरण—माणिक्य के समान होता है।

विशेष-उपयोग—वैडूर्य धारण करने से—

(१) पाण्डुरोग में शरीर के पीलेपन को दूर करता है।

(२) प्रसव पीडा में सिर के बालों में बांधने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है।

(३) बच्चों के गले में बांधने से श्वास-प्रश्वास संबन्धी रोग, जैसे न्युमोनिया रोग नहीं हो पाते।



फिरोज़ा

(Turquoise)

मुख्य मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—पेरोजक, पेरोज, हरिताश्व ये फिरोजा के संस्कृत नाम हैं। हिन्दी—पिरोजा, फिरोज़ा। पेरोज़ा। गुजराती—पीरोज़ो। मराठी—पेरोज़। उर्दू—फिरोज़ा। फारसी—फिरोज़ज़। अँग्रेज़ी—टरक्वाइज़ (Turquoise)। लेटिन—टर्चेसिन्स टरचाइना (Terchesins Turchina)।

उद्गमस्थान—फिरोज़ा का उद्गमस्थान सब से प्रचीन स्थान तुर्कीस्थान है। सन् १९५२ में, सर थामस निकोल्स (Sir Thomos Nicols) ने अपने ग्रन्थ में फिरोज़ा का नाम तुर्की प्रस्तर' (Turkey-stone) शब्द द्वारा निर्देश किया है। टर्की राज्य द्वारा परसिया स्थान से फिरोज़ा का निर्यात अन्यान्य स्थानों को होता था तथा आज कल भी थोड़ा बहुत होता ही रहता है। संस्कृत में तुर्कीस्तान को 'पेरोज देश' कहा जाता है। लगभग १००० वर्ष पूर्व के संस्कृत ग्रन्थों में फिरोजा के लिये 'पेरोजकम्' शब्द आया है। तुर्किस्तान परसिया, सिनाई (Sinai), एरिज़ोना (Arizona) इजिप्ट, अमेरिका इत्यादि स्थान फिरोज़ा के खास उद्गमस्थान हैं। सब से उत्तम प्रकार का फिरोज़ा परसिया के खुरासान प्रान्त के निशापुर से आता है।

रूपरंग और लक्षण—भस्माङ्गं हरितं चेति द्विविधं तत्प्रकीर्तितम्। अर्थात्—कुछ मटमैले रंग का भूरा, श्वेत वर्ण एवं हरित वर्ण का फिरोज़ा–दो प्रकार का होता है।

परसियन फिरोज़ा चमकदार नीलवर्ण युक्त होता है तथा इजिप्शियन फिरोज़ा प्रगाढ़ नीलवर्ण एवं पीताभायुक्त आकाशीय नीलवर्ण अथवा पीताभायुक्त हरित्नीलवर्ण होता है। अमेरिकन फिरोज़ा प्रगाढ पीताभायुक्त निस्बूकप्रभ होता है।

रासायनिक संयोजन (Chemical composition) फिरोजा–हाइड्रेटेड स्फुरत् (फास्फेट) आफ अल्युमिनियम साथ ही ताम्र और लौह का यौगिक उपरत्न है।

सूत्र—Hydrated phosphate of aluminium, Copper Iron इसमें ताम्रांश (Cuo) ३–९% प्रतिशत होता है। तथा लौहांश (Fe_2O_3

१–४ प्रतिशत होता है। फिरोजा में जो नीलिमाभा होती है उसका कारण ताम्र है और हरित् वर्णाभा है उसका कारण लौहांश है। ताम्र और लौह की कमी वेश मात्रा के अनुसार रंग-वर्ण में गाढ़ता-अगाढ़ता होती है।

कठोरता (Hardness) ६.

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २.६ से २.८ तक

आवर्तनांक (R. I.) १०६५ से १०७९ तक

कृत्रिम फिरोजा भी उपर्युक्त तत्वों के सम्मिश्रण और गुरुत्व दबाव द्वारा बनाया जाता है परन्तु सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) से परीक्षण करने पर प्राकृतिक और कृत्रिम फिरोजा में पर्याप्त अन्तर परिलक्षित होने लगता है।

ताम्र की खानों से कभी-कभी 'दन्ताकृतिप्रभं (Odortolite) अथवा अस्थिवत् फिरोजा' (Bone Turquoise) नामक फिरोजा पाया जाता है परन्तु इसकी कठोरता, आपेक्षिक गुरुत्व आदि बहुत ही न्यून होता है।

गुणधर्म—पेरोजं सुकषायं स्यान्मधुरं दीपनं परम्।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव संयोगाच्च तथा विषम्॥
तत्सर्वं नाशयेच्छीघ्रं शूलं भूतादिदोषजम्।

अर्थात्—फिरोजा मधुर और कषाय रस प्रधान होता है। दीपन कार्य करता है। स्थावर और जंगम विषों को नष्ट करता है। शरीर का शूल रोग और भूत पिशाच बाधा को नष्ट करता है।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म—फिरोजा हरा व आवी बुर्राक वर्ण का मानते हुये स्वाद में फीका माना गया है। स्वभाव में सर्द और खुश्क २ दर्जे का होता है। गुर्दा (Kidney) वृक्क को हानि पहुँचाता।

फुरहत बख्शता है और रियाह को कुव्वत देता है। रूह व बीनाई व दिल व दिमाग तथा मेदे को कुव्वत देता है। दस्तों व आंतों के जख्म को दूर करता है। खफकान को मुफीद है।

गुर्दे की पथरी (पित्ताश्मरी) को तोड़ता है। आँखों की बीमारी को दूर करता है। फिरोज़ा को गहनों में मढ़वाकर पहनने से खासकर कुव्वत देता है और खौफ़ को दूर करता है। दुश्मन पर फतहमन्दी कराता है।

शोधन और भस्मीकरण—राजावर्त के समान होता है।



राजावर्त

(Lapis-Luzuli)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—राजावर्त, नृपावर्त, आवर्तमणि, नृपोपल, नीलाश्म—ये राजावर्त के संस्कृत पर्यायवाची शब्द हैं । हिन्दी—लाजवरत, रजवरल, गुजराती—रेवटी, रावटी, पंजाबी—लाजवर्द, मराठी-कर्णाटकी—राजावर्तमणि, उर्दू-फारसी—लाजवर्त, अंग्रेजी—लेपिस लूजुली (Lapis-Luzuli) लेटिन—लेज्यूराइट (Lazurite) ।

उत्पत्तिस्थान—राजावर्त का बहुत प्राचीन समय से ही उद्गमस्थान मुख्यतः अफगानिस्तान रहा है। इसके अलावा भरतपुर, सिन्धु नदी के मूल उद्‌गमस्थान के पार्श्ववर्ती स्थानों में, लंका तथा उत्तर अफ्रीका इसके खास स्थान हैं। इस समय विशेषतः बदक्शां के किसुंग की खानियों से आता है। अजमेर से कुछ मील पश्चिम नाग पर्वतीय शृङ्गों से भी राजावर्त उपलब्ध हो जाया करता है। राजस्थान सरकार के खनिज विभाग के डायरेक्टर श्री मुंशीलालजी सेठी का कथन है कि राजावर्त अजमेर तथा भीलवाडा की पन्ना की खानियों से पर्याप्त उपलब्ध होने की सम्भावना है। उत्तर वर्मा के मोगाक की माणिक्य खानियों से भी आस्मानी रंग के राजावर्त उपलब्ध होते रहते हैं। 'रत्न परीक्षा' कार ने राजावर्त के उत्पत्ति स्थान अधोलिखित पंक्तियों में बताये हैं।

भाषा लाजावर्त कहि नाम, उपजे नागपुर ग्राम।
सिखर भरतपुर माही जान, हिमगिरि नदी सिन्धु तट खान।
उपजे लंक द्रोणगिरि उत्तम, और खान सब लखी मध्यम।

व्याख्या—लेपिस (Lapis) शब्द लेटिन भाषा का शब्द है। इसका अर्थ पच्चीकारी में काम आने वाला पत्थर होता है। इसी प्रकार 'लुजुली' (Luzuli) शब्द भी लेटिन भाषा का ही शब्द है—इसका अर्थ अंग्रेजी में 'एज्यूअर' होता है। Azure का अर्थ हिन्दी में 'आकाशीय नीलवर्ण' होता है। 'लेपिस लुजुली' (Lapis-Luzuli) का अर्थ हुआ—एक प्रकार का नील—वा हरित् वर्ण प्रस्तर जो कि पच्चीकार के काम में आता है। पाश्चात्य रत्न वैज्ञानिकों ने राजावर्त को दो प्रकार का माना है। एक प्रकार साधारण

उपयोगों में आने वाला और दूसरा आभूषणों में उपयोग होनेवाला। 'आयुर्वेद प्रकाश' नामक संस्कृत ग्रन्थ में भी यह दो प्रकार का माना गया है। रत्न जात्यात्मक राजावर्त को औषध प्रयोग में लाने का उल्लेख है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने श्रेष्ठ राजावर्त वही माना है जो कि विशेष चमकदार और द्वादश फलक युक्त (Dodeca-hedral) मणिम (रवादार) होता है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने राजावर्त रत्न को उपरत्नों (Minor gems) में ही माना है तथा अपने यहाँ के प्राचीन वैज्ञानिकों ने भी इसे उपरत्न ही माना है।

रूप रंग और लक्षण—

राजावर्तोऽल्परक्तोरुनीलिकामिश्रितप्रभः ।
गुरुश्च मसृणः श्रेष्ठस्तदन्यो मध्यमः स्मृतः ॥ (र. र. समुच्चय)

अर्थात्—राजावर्त किंचित् अरुण वर्ण और प्रधानतः नील-अरुण वर्ण मिश्रित वर्ण होता है। जो राजावर्त वजन में भारी, कोमल, सुचिक्कण हो वह श्रेष्ठ माना जाता है—अन्यथा मध्यम श्रेणी का समझना चाहिये।

अर्थात्—निर्मल, सुचिक्कण, मलरहित, स्निग्ध, स्वच्छ बादल के समान नीलवर्ण, कृष्ण नीलवर्ण मिश्रित वर्ण-मयूर कण्ठ के समान वर्णवाला समुज्वल राजावर्त उत्तम होता है।

शम्भु कण्ठ हरि अंग गलमोर, डली नीलमणि सम रँग घोर।
गुम्मँग कंचन छींटा तापर, चिकना साफ कान्ति, सुभ बादर।
विप्र स्वेत छबि छत्री लाला, वैस्य पीत छबि सूद्र जु काला।

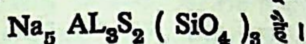
पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इसे नील अथवा हरित् वर्ण का माना है। यह अपारदर्शक अथवा अर्ध पारदर्शक होता है।

कृत्रिम राजावर्त—आजकल कृत्रिम राजावर्त भी प्रचुर परिमाण में बनाया जाने लगा है। शुद्ध पीतवर्ण कौलाल मृत्तिका (फायरी क्ले)+ सिकता (बालू= Sand)+ गंधक + एवं राल का सम्मिश्रण तीव्रतर ताप-क्रम पर पिघलाकर राजावर्त कृत्रिम रूप में निर्माण किया जाता है। इस कृत्रिम राजावर्त की सबसे अधिक उपादेयता संगमर्मर पर पच्चीकारी के निमित्त होती है। अरब निवासी एवं पंजाबी कारीगर इस कार्य में अतीव पटु होते हैं। साधारणतः असली और कृत्रिम राजावर्त में प्रभेद करना कभी कभी अनुभवी जौहरियों के लिये मुश्किल हो जाता है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व के राज-प्रासादों में राजावर्त की पच्चीकारी प्रायः पाई जाती है। पुरातत्ववेत्ताओं का कथन है कि यह पच्चीकारी प्रायः नकली राजावर्त की ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन समय में भी भारतवर्ष में कृत्रिम राजावर्त का निर्माण होता था।

रासायनिक संगठन—(Chemical-composition)।

(१) राजावर्त—गंधकयुक्त सिलिकेट का सम्मिश्रण होता है। (Complex silicate, containing sulphur)।

(२) राजावर्त का रासायनिक सूत्र अधोलिखित है।


$Na_5 AL_3S_2 (SiO_4)_3$ है।

(३) कठोरता (Hardness) ५½.

(४) आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २.८ और

(५) आवर्तनांक (R. I.) १.५ होता है।

विशेष—कभी-कभी राजावर्त से स्विस प्रान्तीय सूर्यकान्त (Swissjasper) से भ्रम हो जाता है। व्यावसायिक मनोवृत्ति के कारण स्विस प्रान्तीय सूर्यकान्त को 'स्विस राजावर्त' (Swiss-Lapis) कह कर ही बेचा जाता है। राजावर्त और सूर्यकान्त के भ्रम निवारण में आपेक्षिक गुरुत्व ही श्रेष्ट साधन है। स्विस प्रान्तीय सूर्यकान्त का आपेक्षिक गुरुत्व २.५८ होता है। तथा इसकी नीलाभा भी किंचित् निम्न श्रेणी की होती है।

कृत्रिम और प्राकृतिक राजावर्त में प्रभेदात्मक परीक्षण—

'गंजबादावर्द' नामक हकीमी ग्रन्थ में राजावर्त के परीक्षण के हेतु कुछ अतीव सुविधाजनक परीक्षायें दी हैं—उनमें दो परीक्षायें मुख्य हैं।

(१) राजावर्त के मोटे चूर्ण को अतीव प्रतप्त ताम्रपट्ट पर डालें। यदि चूर्ण सद्यः जल जाय अथवा कृष्णाभा युक्त हो जावे तो समझना चाहिये कि यह कृत्रिम है। यदि चूर्ण में किसी प्रकार का रंग परिवर्तन नहीं हुआ है तो उसे प्राकृतिक ही समझना चाहिये। यह परीक्षण प्रज्वलित कोयलों पर भी किया जा सकता है।

(२) राजावर्त के सूक्ष्म चूर्ण को एक कटोरे में रखकर उसमें पर्याप्त पानी डालकर हाथ से भली-भाँति मलें—और फिर उसे थोड़ी देर के लिए रख छोड़ें। यदि राजावर्त का समस्त सूक्ष्म चूर्ण नीचे पानी की तली में बैठ जाय और पानी में किसी भी प्रकार का रंग परिवर्तन न हो सके तो समझना चाहिये कि यह प्राकृतिक राजावर्त है, अन्यथा कृत्रिम।

राजावर्त और ज्योतिष शास्त्र—भारतीय ज्योतिष शास्त्र में राजावर्त को उतना महत्त्व नहीं दिया है जितना कि पाश्चात्य ज्योतिष ने महत्त्व दिया है। राजावर्त की शुक्रग्रह (Venus) से मैत्री का उल्लेख किया गया है। इजिप्ट निवासी इसे बहुत अधिक उपयोग में बहुत प्राचीन समय से ही लाते रहे हैं। इजिप्ट में लगभग ५० वर्ष पूर्व तक प्रत्येक न्यायाधीश जबकि वह न्याय प्रदान के हेतु कुर्सी पर बैठता था, राजावर्त को एक स्वर्णमण्डित माला

के मध्य में पहनता था। इस माला को 'चेस्बेट' (Chesbet) कहा जाता है। इजिप्ट, निवासियों का विश्वास है कि राजावर्त मनुष्य की न्यायपरायणता एवं सात्विक बुद्धि में परिवर्तन नहीं आने देता। महन्त, पुजारी आदि धार्मिक एवं आध्यात्मिक पुरुष भी प्रायः राजावर्त की माला सदा पहने रहते हैं। इजिप्ट निवासी आज भी राजावर्त को वक्ष रोगों एवं नेत्र-रोगों की अमोघ औषध समझते हैं।

भारतीय ज्योतिषी राजावर्त को मंगल ग्रह से सम्बन्धित मानते हैं। इसे मंगलवार के दिन धारण करने से बल, बुद्धि, वीरता और धीरता प्राप्त होती है। भूत, पिशाच, सर्पादि का भय नहीं रहता।

राजावर्त के संग—

राजावर्त के संग २ प्रकार के हैं। (१) संगे बादल, (२) संगे मूसा।

(१) संगे बादल—यह कृष्णाभ और सुचिक्कण होता है। यह मक्का-मदीना, तुर्किस्तान और लंका से आता है। भारतवर्ष में नर्मदाञ्चल एवं विन्ध्य गिरिश्रृंगों से भी उपलब्ध होता है। संगे बादल का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चूर्ण मक्खन में मिलाकर मुख पर लगाने से व्यङ्ग, न्यच्छ, नीलिका (Capillary angiomata, mother's mark, naevusmaternus) आदि क्षुद्र रोग नष्ट होते हैं।

(२) संगे मूसा—यह आकाश में काली घटा के समान कृष्णश्वेत और सुचिक्कण होता है। यह भी मक्का, मदीना आदि स्थानों से ही आता है। संगे मूसा की मूर्तियाँ, सिंहासन, तख्त आदि बनाये जाते हैं।

संगे बादल और संगे मूसा का खरल आयुर्वेदिक एवं हकीमी औषधियों के निर्माण में विशेषतः मोती और प्रवाल पिष्टी बनाने के लिये उत्कृष्ट समझा जाता है।

गुणधर्म—प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः॥

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्—यह २० प्रकार के प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डु और कफ तथा वायु के विकारों को नष्ट करता है। यह दीपन पाचन, वीर्यवर्धक और रसायन होता है।

और राजावर्त कटुतिक्त रसप्रधान, दीपन, पाचन, शीतल, पित्तशामक, वीर्यवर्धक और रसायन है। पाण्डु-प्रमेह का नाशक और क्षय, शोष रोग को नष्ट करता है। विषनाशक, वमन और हिचकी को दूर करता है।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म—शुद्ध किया हुआ राजावर्त दूसरे दर्जे में

सर्द और तीसरे दर्जे में खुश्क होता है। बगैर शुद्ध किया हुआ—गर्म खुश्क होता है। राजावर्त यदि अधिक मात्रा में सेवन करने में आजावे तो उससे मेदे को खराबी पहुंचाकर वमन व बेहोशी आती है।

यह जिला (कान्ति कारक) करता है। खिल्तों (दोषों) को साफ करता है। सौदावी माद्दे को दस्तों की राह निकालता है। मालिखौलिया (अन्यथा ज्ञात) व गुर्दे के दर्द और बहशत (भय) व गम और मर्ज सौदाविया को मुफीद है। यह काबिज (ग्राही) है। फरहत (उत्साह) देने वाला है। दिल को कुव्वत देता है। आँखों की बीमारियों को आँसू निकालकर अच्छा करता है। जाला व माँडे को मुफीद है। इसकी सलाई मुनासिब दवाइयों के साथ बनी हुई खास कर आँख की बीमारियों के लिये मुफीद है। इसका प्रतिनिधि-हुज्र-अरमनी (संगे जराहत-अरमन देशीय) है। यह जहरीला नहीं है।

सामान्य शोधन—

(१) निम्बूद्रवैः सगोमूत्रैः सक्षारैः स्वेदिताः खलु।

द्वित्रिवारेण शुद्ध्यन्ति राजावर्तादिधातवः॥ (रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्—नीबू के रस में यवक्षार और गोमूत्र मिलाकर दोला यंत्रद्वारा राजावर्त तथा अन्यधातुओं को दो तीन बार १-१ प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाते हैं।

(२) शिरीषपुष्पार्द्ररसैः राजावर्तं विशोधयेत्। (रसरत्नसमुच्चय)

राजावर्त शिरीषपुष्प और अद्रक के स्वरस में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

(३) लाजवर्त को खूब बारीक पीसकर पानी में घोल लें और इसमें जैतून का तेल डालकर अग्नि पर पकावें! पानी के उड़ जाने पर फिर से थोड़ा पीसकर पानी और जैतून का तेल में दुबारा पकावें। तली में बैठ जाने पर पानी और तेल को निथार लें। लाजवर्त चूरे को निकालकर सोख्ते से सुखा लें। यह लाजवर्त शुद्ध समझना चाहिये (मखजन उल मुफरदात)

भस्मीकरण—लुंगाम्बुगंधकोपेतो राजावर्तो विचूर्णितः।

पुटनात् सप्तवारेण राजावर्तो मृतो भवेत्॥ (रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्—राजावर्त को समान भाग गंधक के साथ नीबू के रस से घोटकर शराव में सम्पुट कर सात बार पुट देने से उत्तम भस्म हो जाती है।

सत्त्वीकरण—

राजावर्तस्य चूर्णन्तु कुनटीघृतमिश्रितम्।

विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम्॥

सौभाग्यपंचगव्येन पिण्डीबद्धन्तु जारयेत्।

ध्मापितं खदिराङ्गारैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम् ॥

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्—शोधित राजावर्त के चूर्ण में समान भाग मनःशिला मिलाकर घी के साथ घोट लें। तदनन्तर कड़ाई में भैंस का दूध डालकर राजावर्त को पकावें। दूध के गाढ़ा हो जाने के बाद उसमें सुहागा और पंचगव्य मिलावें। द्रवांश को जला दें और एक गोला बना लें। इसके बाद इसे खैर के कोयलों में फूंक देने से उत्तम प्रकार का राजावर्त सत्त्व बन जायगा।

आमयिक प्रयोग—

(१) राजावर्त भस्म में ताम्रभस्म और चांदी भस्म समान भाग में मिलाकर भैंस के घी में पका लेवें और उसमें शर्करा, मधु और घी मिलाकर सेवन करने से समस्त विषरोग एवं मद्यपान करने से जायमान समस्त उपद्रव नष्ट होते हैं।

आमयिक प्रयोग—

(२) राजावर्तो रसः शुल्वं माक्षिकं घृतपाचितम्।
मध्वाज्यशर्करायुक्तं हन्ति सर्वान् मदात्ययान् ॥

(रसचंद्रिका, रसराजसुन्दर,) रसरत्नसमुच्चय, मदात्यय रोगाधि०)

राजावर्त भस्म, पारदभस्म, ताम्रभस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में लेकर घृत में पकावें और इसमें मधु, घृत एवं शर्करा मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के मदात्यय (पानात्यय = मर्ज कसरत मैख्वारी = Alcoholism) रोग नष्ट होते हैं।

अभ्रक, कान्तलौह और राजावर्तभस्म को मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह नष्ट होता है। मात्रा—२ रत्ती से ५ रत्ती तक की है।

(४) संग्रहणी—

मृतसूतं मृतं स्वर्णं यष्टीकं राजवर्तकम्।
तुल्यांशं मर्दयेदाज्यैः क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥
सितामध्वाज्यसंयुक्तं निष्कार्धं चैव लेहयेत्।
राजावर्तो रसो नाम ग्रहणीरोगनाशकः ॥

(रसराजसुन्दर, रसकामधेनु, ग्रहण्याधिकार)

पारदभस्म, स्वर्णभस्म, राजावर्तभस्म और मधुयष्टी (मुलैठी) चूर्ण समान मात्रा में लेकर समस्त द्रव्यों को खरल में मर्दन करें। तत्पश्चात् थोड़ा घृत मिलाकर मृदु अग्नि पर रखकर आँच दें। इस राजवर्त रस को मधु और घृत के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

इस रस की प्रथम पंक्ति में आये हुये 'स्वर्णम्' के स्थान में 'रसकामधेनु' नामक ग्रन्थ में 'शुल्वम्' पाठ आया है। अतएव शुल्वम् = ताम्रभस्म का ग्रहण करना चाहिये।

(५) राजावर्तावलेह—

राजावर्तञ्च वैक्रान्तं ताम्रमभ्रं पृथक् पृथक्।
शुक्तिमात्रं कृष्णलोहं पार्वतञ्च पलद्वयम् ॥
मण्डूरं कुडवञ्चैव शुद्धमञ्जनसन्निभम्।
त्रिक् त्रयं तालमूली तथैव करिकेशरम् ॥
श्वेतोच्चटा नागबला प्रत्येकं कर्षमात्रकम्।
शुभ्रं शाल्मलितीरस्य प्रस्थं च छागदुग्धतः ॥
मत्स्यण्डिकायाः प्रस्थार्धमेभिः कुर्याच्च लेहकम्।
लिहेद्विधिज्ञः सुदिने ह्यनुपानं पिबेदनु ॥
चण्डामूलं शुक्तिमात्रं सर्वमेदःप्रशान्तये।
गुल्महृद्रोग-वर्ध्मार्शमुष्कपीडा-प्रशान्तये ॥
शुक्राश्मरीमूत्रघातरेतोदोषापनुत्तये।

(रसराजसुन्दर, प्रमेहाधि०)

राजावर्तभस्म, वैक्रान्तभस्म, ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म—प्रत्येक २॥-२॥ तोला, तीक्ष्ण लौहभस्म और शु० शिलाजतु १०-१० तोला। शुद्ध एवं काले सुरमे के समान मण्डूरभस्म २० तोला, शुण्ठी, कृष्णमरिच, पिप्पली, हरीतकी, बहेड़ा, आमलकी, विडङ्ग, नागरमोथा, चित्रक, तालमूली, नागकेसर, सफेद चौंटली (श्वेतोच्चटा = सफेदगुञ्जा = (White abrus preceotorius, N. O. Legumioseae) और नागबला प्रत्येक का चूर्ण १।-१। तोला तथा सेमल की जड़ का स्वरस एवं बकरी का दूध प्रत्येक २-२ सेर, राब १ सेर लेकर अवलेह के समान बना लें। इस राजावर्तावलेह का सेवन भलीभाँति मात्रानुसार यथासमय सेवन करें। इस अवलेह के सेवन के पश्चात् कँवाच के मूल के क्वाथ का अनुपान २॥ तोला की मात्रा में करते रहने से २० प्रमेह, गुल्म, हृदयरोग, वर्ध्म, अर्श, अण्डशोथ, शुक्राश्मरी मूत्राघात और वीर्यविकार नष्ट होते हैं।

—०:०:०—

वैक्रान्त–तुरमली

(Tourmaline)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—वैक्रान्त, विक्रान्त, नीलवज्र, कुवज्रक, गोनास, क्षुद्र कुलिश, जीर्ण वज्र और गोनस हिन्दी—वैक्रान्त, वैक्रान्तमणि, गोनस, गोनास, बंगला—चुनि विशेष, उर्दू—तुरमली, अंग्रेजी—टुर्मलाइन (Tourmaline)।

उद्गमस्थान—

(१) भारतीय क्षेत्र—भारत में वैक्रान्त के उत्पत्तिस्थान मुख्यतः तीन ही हैं। काश्मीर, बिहार और नैपाल। काश्मीर प्रान्त का पद स्थान प्राचीन काल से अभी तक बराबर अक्षुण्ण रहा है। बिहार प्रान्त के हजारीबाग नामक स्थान में जहां अभ्रक की खानें हैं—अभ्रक के साथ प्रायः वैक्रान्त भी पाया जाता है। नैपाल में अरुणाभायुक्त वैक्रान्त पाया जाता है। बिहार प्रान्तोद्भव वैक्रान्त हरित् वर्ण और नीलाभायुक्त होता है। काश्मीर प्रान्तोद्भव वैक्रान्त उत्कृष्ट श्रेणी का होता है। काश्मीर में जिन स्थानों से नीलम उपलब्ध होता है वहाँ साथ ही साथ कभी-कभी वैक्रान्त भी मिल जाता है।

कावेरी नदी की रेती में भी कभी-कभी उत्कृष्ट प्रकार का वैक्रान्त मिल जाता है।

विन्ध्यस्य दक्षिणे भागे ह्युत्तरे नास्ति सर्वतः।

अर्थात्—वैक्रान्त विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण भाग में तथा उत्तर भाग में सर्वत्र खानों में उपलब्ध होता है। 'रत्न परीक्षा' नामक पुस्तक ने भी "कावेरी गंग वेनु हिमवान। काँमरु विन्ध ब्रह्म सैलान॥" का उल्लेख किया है।

(२) ब्रह्मदेशीय क्षेत्र—वर्मा में माणिक्य (Ruby) के साथ-साथ लाल वर्ण वैक्रान्त बहुतायत से उपलब्ध होता है। यहां २०वीं शताब्दी के प्रारम्भीय तीन वर्षों में लगभग १०० पौंड से अधिक वैक्रान्त निकाला गया था। इस क्षेत्र से २०० वर्ष पूर्व से ही चीनी निवासी वैक्रान्त का व्यवसाय करते चले आ रहे थे। परन्तु इस समय यह व्यवसाय अंग्रेज सरकार के हाथ में है।

(३) विदेशीय क्षेत्र—कृष्णाभायुक्त वैक्रान्त बैन्फ (Banff) के पेटिसो नामक स्थान में पाया जाता है। क्लोवा (Clova) कैब्राक (Cabrach), आवर्डियन शायर के 'रविस्ला' नामक स्थान में डेवोन शायर के बोवे

(Bovey) स्थान में, कार्नवाल के 'सेन्टजास्ट' स्थान में, ग्रीन लेण्ड, अरेण्डेल तथा उत्तरी अमेरिका में बहुतायत से हरवर्ण प्रकार का वैक्रान्त पाया जाता है। नीलवर्ण वैक्रान्त स्वीडेन के उटो (Uto) नामक स्थान और हरित् वर्ण वैक्रान्त 'ग्लेन स्लियाग' (Glen sleiag) नामक स्थान में पाया जाता है। नील-लोहित और गुलाबी वर्ण का वैक्रान्त अल्बानी (Albany) और पेरिस में पाया जाता है।

रूप रंग और लक्षण—वैक्रान्त कृष्ण, अरुण, प्रगाढ़ अरुण, नील, हरित् पिंगल, पीत, गुलाबी, मोतिया, श्वेत एवं धानी वर्ण का होता है। दो तीन वर्ण का मिश्रित वैक्रान्त भी उपलब्ध होता है।

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा स्मृताः॥

अर्थात्—श्वेत, रक्त, पीत, नील, धूम्रवर्ण, कृष्ण लोहित, चित्र-विचित्र मिश्रित वर्ण—इस प्रकार आठ वर्ण का वैक्रान्त होता है।

'रत्नपरीक्षाकार' ने भी—"वैक्रान्त तेलै तिरमुली, धवल गुलाबी स्याम जरदुली। चिकनी नरम साफ संग हलकी, चौडंग कोर वज्र सी चलकी॥" उल्लेख किया है।

उत्कृष्ट-वैक्रान्त—

अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते॥

अर्थात्—आठ कोण तथा आठ फलकों से युक्त तथा ६ कोण वाला स्निग्ध, भारी, शुद्ध और मिश्रित रंग वाला वैक्रान्त उत्तम होता है।

रासायनिक संयोजन—(Chemical Composition)। वैक्रान्त का रासायनिक संयोजन रंगभेद के अनुसार कुछ थोड़ा सा अवश्य फरक है। वैसे सामान्यतः एक सा ही है।

वैक्रान्त मुख्यतः अल्युम्युनियम, मैगनीसियम् और लौह इत्यादि का बोरो सिलिकेट (टंकण शैलेयक), अल्कलाइज (उपक्षार) मिश्रित एक उपरत्न है।

सूत्र—A Complex of Boro-alumino-silicate of magnesium, iron, calcium, Lithium li.

(Mg. Fe. Mn, Ca, Na, K, Li, H,) AL_3 B_2 Si_4 O_{21} ।

यह षट्कोणीय अथवा अष्टकोणीय मणिभ होता है।

कठोरता (Hardness) ७
आपेक्षिकगुरुत्व (S. G.) ३.०५
आवर्तनांक (R. I.) १.६१

प्रकार—

(१) श्वेतवैक्रान्त (Achroite)—रंगरहित श्वेत होता है।

(२) माणिक्यप्रभ वैक्रान्त (Rubellite)—प्रगाढ़ अरुण अथवा प्रगाढ़ पीत वर्ण होता है।

(३) कर्बूर वैक्रान्त (Indicolite)—प्रगाढ़ मसीवत्तूनील, हरित, पीत, प्रगाढ़पीत, कृष्ण—लोहित अथवा दो तीन रंगों का सम्मिश्रण होता है।

गुणधर्म—

(१) विक्रन्तयति लोहानि तेन वैक्रान्तकः स्मृतः। (र. र. स.)

अर्थात्—लोह, ताम्र आदि समस्त धातुओं को यह काट डालता है। अतएव इसे वैक्रान्त कहा जाता है।

(२) वज्रवत् सर्वरोगाणां मरणाय यतस्त्विदम्। पृ० ६३३ श्लो० १५१
धत्ते विक्रान्तिमतुलां वैक्रान्तं कथ्यते ततः॥ (र० त०)

अर्थात्—हीरे के समान सर्व रोगों का यह नाश करता है तथा समस्त धातुओं को काटने में इसके बराबर क्षमता कोई दूसरा रत्न नहीं रखता अतएव इसका नाम वैक्रान्त कहा जाता है।

(३) वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः।
विषघ्नो रसराजश्च ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत्॥

अर्थात्—वैक्रान्त हीरे के समान शरीर को लोहे के समान सुदृढ़ बनाता है। विषों के प्रभाव को नष्ट करने में उत्तम है। रसराज है। ज्वर, कुष्ठ और क्षयरोग का नाश करता है।

(४) वैक्रान्तस्तु त्रिदोषघ्नः षड्रसो मेहदार्ढ्यकृत्।
पाण्डूदरज्वरश्वासकासक्षयप्रमेहनुत्॥

वैक्रान्त षड्रस समन्वित, त्रिदोषनाशक, वीर्य को प्रगाढ़ करनेवाला, पाण्डु, उदररोग, ज्वर, श्वास, कास, क्षय और प्रमेह को नष्ट करता है। समस्त महारोगों को नाश करता है। परम बुद्धिवर्धक है। अग्नि को प्रदीपन करनेवाला और अति रसायन है। तीनों दोषों का नाशक और बहुयोगवाही है। कहांतक कहा जाय—वैक्रान्त तो निश्चय ही हीरे के समान समस्त रोगों का नाश करता है। वैक्रान्त विशेषकर देह को मजबूत बनाने में बहुत प्रसिद्ध है।

रंगभेदानुसार गुणधर्म—

देहसिद्धिकरं कृष्णं पीते पीतं सिते सितम् ।
सर्वार्थसिद्धिदं रक्तं तथा मरकतप्रभम् ॥
शेषे द्वे निष्फले वर्ज्यं वैक्रान्तमिति सप्तधा ।

अर्थात्—शरीर को सिद्धि-निष्पन्नता देनेवाला कृष्णवर्ण वैक्रान्त होता है। पीतवर्ण वैक्रान्त का स्वर्ण की भस्म बनाने में उपयोग होता है। श्वेतवर्ण वैक्रान्त का चाँदी की भस्म बनाने में उपयोग होता है। रक्तवर्ण तथा मरकत (हरित् वर्ण) वैक्रान्त का समस्त कार्यों की सफलता के लिये उपयोग होता है। शेष के दो वर्ण (नील और कर्बूर वर्ण) फलदायक नहीं होते।

शोधनः—

(१) वैक्रान्तकाः स्युस्त्रिदिनं विशुद्धाः संस्वेदिताः क्षारपटूनि दत्त्वा ।
अम्लेषु मूत्रेषु कुलत्थरम्भा नीरेऽथवा कोद्रववारिपक्वाः ॥
(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्—वैक्रान्त को अम्ल (कांजी), मूत्र (गोमूत्र) कुलथी के क्वाथ में, कदली-स्वरस में एवं क्षार के मिश्रण में तीन दिन स्वेदन करने से अथवा कोदों के जल में पकाने से शुद्ध हो जाता है।

(२) कुलत्थक्वाथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुद्धयति । (र. र. स.)

अर्थात्—कुलत्थ के क्वाथ में स्वेदन करने से वैक्रान्त अच्छी प्रकार से शोधन हो जाता है।

केले की जड़ के स्वरस में दोलायंत्र द्वारा वैक्रान्त को एक पोटली में बाँधकर ३ प्रहर तक स्वेदन करने से उत्तम प्रकार का शोधन हो जाता है।

(४) वैक्रान्तेषु च तप्तेषु हयमूत्रं विनिक्षिपेत् ।
पौनःपुन्येन वा कुर्याद् द्रवं दत्त्वा पुटं खलु ॥
भस्मीभूतं तु वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् । (र, र. स.)

अर्थात्—वैक्रान्त को खूब गरम करके घोड़े के मूत्र में २१ बार बुझावें। इस प्रकार विशोधन करने के बाद एक बार गजपुट में फूँक दें। हीरे के स्थानापन्न वैक्रान्त भस्म का उपयोग करें।

(५) वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं मारणञ्चैव तस्य तत् ।
हयमूत्रेण तत्सेच्यं तप्तं तप्तं त्रिसप्तधा ॥
ततश्चोत्तरवारुण्याः पञ्चाङ्गं गोलके क्षिपेत् ।
रुद्ध्वा मूषापुटे पाच्य मुद्धृत्य गोलके पुनः ॥

छित्वा रुद्ध्वा पचेदेवं यावत्तद्भस्मतां व्रजेत् ।
भस्मीभूतञ्च वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, रसरत्नसमुच्चय, शार्ङ्गधरसंहिता, मध्यमखण्ड अ० ११)

हीरे के शोधन, मारण के समान ही वैक्रान्त का भी शोधनमारण करना चाहिये। वैक्रान्त को २१ बार तपा-तपाकर घोड़े के मूत्र में बुझाने से वैक्रान्त शुद्ध हो जाता है। शोधन के पश्चात वैक्रान्त को इन्द्रायण के पञ्चाङ्ग कल्क के भीतर बन्द करके गोला बना लें और इसे मूषा पुट में बन्द कर फूँक दें। इसी प्रकार तब तक पुट देते रहें जब तक कि वैक्रान्त भस्म 'रेखा परीक्षा' और 'जलोत्प्लावित परीक्षा' युक्त न हो जावे। वैक्रान्त भस्म का प्रयोग हीरकभस्म के समान ही करना चाहिये।

सत्त्वीकरण—

(१) मोचमोरटपालाशक्षारगोमूत्रभावितम् ।
वज्रकन्दनिशाकल्कफलचूर्णसमन्वितम् ॥
तत्कल्कं टंकणं लाक्षा चूर्णं वैक्रान्तसम्भवम् ।
नरसारसमायुक्तं मेषश्रृंगीद्रवान्वितम् ॥
पिण्डितं मूकमूषस्थं ध्मापितं च हठाग्निना ।
तत्रैव पतते सत्त्वं वैक्रान्तस्य न संशयः ॥ (र. र. स.)

अर्थात्—केले की जड़, गन्नेकी जड़, पलाशक्षार और गोमूत्र से वैक्रान्त को भावना देकर उसमें सूरण तथा हल्दी का चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, सुहागा, लाख का चूर्ण और नौसादर मिलाकर मेढासिंगी के क्वाथ की भावना देकर गोला बना लें और इस गोले को अन्धमूषा में रखकर धौंकनी द्वारा तेज अग्नि से फूंक दें। इस विधि से सरलतापूर्वक वैक्रान्त का सत्त्वीकरण हो जाता है।

(२) वैक्रान्तानां पलं चैकं कर्षकं टंकणस्य च ।
रविक्षीरैर्दिनं भाव्यं मर्द्यं शिग्रुद्रवैर्दिनम् ॥
गुञ्जापिण्याकवह्नीनां प्रतिकर्षाणि योजयेत् ।
एतेन गुटिकां कृत्वा कोष्ठीयंत्रे धमेद् दृढम् ॥
शंखकुन्देन्दुसंकाशं सत्त्वं वैक्रान्तजं भवेत् ।

(आयुर्वेद प्रकाश अ० १३)

वैक्रान्त ५ तोला, टंकण १। तोला को खरल में डालकर मदार के दूध की एवं सहिजनकी छाल के रस की १–१ दिन तक भावना दें। तत्पश्चात् गुंजा,

तिल खली और चित्रक चूर्ण मिलाकर गोली बनालें और काष्ठी यन्त्र में तीव्राग्नि से धौंकें। श्वेतरंग का वैक्रान्त सत्त्व प्राप्त होगा।

भस्मीकरण—

विशोधित वैक्रान्त को अच्छी तरह से पीस कर समान भाग पारद और तीन भाग गंधक को मिलाकर नीबू के रस में तीन प्रहर तक घोटें और सुखा लें। गजपुट द्वारा फूंक दें। इस प्रकार आठ बार यह विधि करने से वैक्रान्त भस्म बन जाती है। तीन बार उपर्युक्त विधि से पुट देने के बाद चतुर्थ बार में पारद न मिलावें।

आमयिक प्रयोग—

(१) भस्मत्वं समुपागतो विकृतको हेम्ना मृतेनान्वितः,
पादांशेन कणाज्यवेल्लसहितो गुंजामितः सेवितः।
यक्ष्माणं ज्वरपक्वपाण्डुगुदजं श्वासं च कासामयं,
दुष्टां च ग्रहणीमुरःक्षतमुखान् रोगाञ्जयेद् देहकृत्॥ (र. र. स.)

अर्थात्—वैक्रान्त भस्म में चतुर्थ भाग स्वर्ण भस्म मिलाकर विडङ्ग, छोटी पीपल और घृत मिलाकर सेवन करने से राजयक्ष्मा, वृद्धावस्था, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, ग्रहणी, उरक्षत और मुख रोग नष्ट होते हैं। मात्रा १ रत्ती।

(२) सूतभस्मार्धसंयुक्तं नीलं वैक्रान्तभस्मकम्।
मृताभ्रसत्त्वमुभयोरस्तुलितं परिमर्दितम्॥
क्षौद्राज्यसंयुतं प्रातर्गुञ्जिमात्रं निषेवितम्।
निहन्ति सकलान् रोगान् दुर्जयानन्यभेषजैः॥
त्रिसप्तदिवसैर्नॄणां गङ्गाम्भ इव पातकम्। (र. र. स.)

अर्थात्—रस सिन्दूर आधाभाग, नील वर्ण वैक्रान्त की भस्म १ भाग, रससिन्दूर और वैक्रान्तभस्म के बराबर अभ्रक सत्त्व मिलाकर घोट लें और मधु और घृत के साथ सेवन करें। गंगाजल के सेवन करने से जिस प्रकार समस्त पाप नष्ट होते हैं उसी प्रकार उपर्युक्त प्रयोग के सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हैं। २१ दिन तक प्रातःकाल १ रत्ती की मात्रा में सेवन करें।

(३) वैक्रान्तरसायन—

वैक्रान्तभस्म ४ रत्ती, हरतालभस्म ४ रत्ती, रससिन्दूर आधा तोला, इन तीनों को मिलाकर सेमल की जड़ के स्वरस में घोटकर १–१ रत्ती की गोली बना लें (प्रतिदिन प्रातः काल १–१ गोली दूध के साथ सेवन करें। यह वैक्रान्त रसायन बल और वीर्य वर्धक तथा नपुंसकता को दूर करने में अद्वितीय प्रयोग है।

(४) वैक्रान्तरसायन—

वैक्रान्तभस्म ८ रत्ती, स्वर्णभस्म २ रत्ती, रससिन्दूर २ तोला, इन तीनों को मिलाकर सेमल की जड़ के स्वरस में मिलाकर घोट लें और १-१ रत्ती की गोली बना लें। कालीमरिच, छोटी पीपल और घी के साथ लगातार पथ्य पूर्वक दो मास तक सेवन करने से वृद्धावस्था, राजयक्ष्मा, नपुंसकता, दारुण श्वास कास, अर्श, अग्निमांद्य, संग्रहणी, पाण्डु, कामला और उरक्षत आदि रोगों को जड़ से दूर करता है।

(५) वैक्रान्ताख्य रस—

मृतसूताभ्रवैक्रान्त-कान्तताम्रं समं समम्।
सर्वतुल्येन गन्धेन मर्द्यं भल्लातकान्वितम्॥
दिनैकं तद्द्रवैरेव वटीं कुर्यात् द्विगुञ्जकाम्।
भक्षयेत् गुदजान् हन्ति द्वन्द्वजं च त्रिदोषजम्॥
वैक्रान्ताख्यो रसो नाम साध्यासाध्यार्शशान्तये।

(बृहन्निघण्टुरत्नाकर, रसराजसुन्दर—अर्शाधिकार)

पारदभस्म, अभ्रकभस्म, वैक्रान्तभस्म, कान्तलोहभस्म और ताम्रभस्म—प्रत्येक समान भाग एवं शु० गंधक समस्त द्रव्यों को बराबर लेकर मिला लें और भल्लातक तेल की १ दिन तक भावना दें और २-२ रत्ती की बटी बना लें। इस 'वैक्रान्ताख्य रस' का सेवन करने से द्विदोषज, त्रिदोषज गुदा सम्बन्धी व्याधियाँ जैसे अर्श, भगन्दर आदि और साध्य अथवा असाध्य अर्श रोग शान्त होता है।

(६) मूत्रकृच्छ्रान्तक रस—

सूतं स्वर्णञ्च वैक्रान्तं गन्धतुल्यं विमर्दयेत्।
चाण्डालीराक्षसीद्रावैर्द्धियामान्ते तु गोलकम्॥
शुष्कं बद्ध्वा पुटेच्चाहः करीषाग्नौ लघौ पुटे।
गुञ्जार्धं तु लिहेत् क्षौद्रैर्मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये॥

(रसकामधेनु, भैषज्यरत्नावली, योगरत्नाकर, रसचन्द्रिका, मूत्रकृच्छ्राधिकार)

शु० पारद और शु० गंधक समान भाग लेकर कज्जली बना लें। इसमें स्वर्णभस्म और वैक्रान्तभस्म प्रत्येक पारद भस्म के बराबर लेकर मिलाकर चाण्डाली (सुरामांसी = जटामांसी का एक प्रकार = A Kind of Nardostachys gatamanri, N. O. मांस्यादि वर्ग = Valerianaceae) और राक्षसी (शिवलिंगी (Bryonia Lacimosa) के रस में क्रमशः ६-६ घण्टे मर्दन करें और गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द करें एवं लघु पुट में फूँक दें।

आधी रत्ती की मात्रा में शहद के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र (कष्ट से मूत्र त्याग करना = (Dysuria) रोग प्रशान्त होता है।

'योग रत्नाकर' और 'रसचन्द्रिका' नामक ग्रन्थों में इस रस का नाम 'वैक्रान्त गर्भ रस' है। केवल अन्तर है—अनुपान में अपामार्ग मूल की छाल के स्वरस का।

(७) पञ्चाननो रसः

मृतं कान्तं सुवर्णं च शुल्वताराभ्रभस्मकम्।
पृथगच्चमितं सर्वं पटचूर्णकृतं मृदु ॥
रसगन्धककज्जलया तुल्यया सह मर्दितम्।
सार्धद्विपलमानेन तार्प्यचूर्णेन मर्दितम् ॥
द्विपलं मूषिकामध्ये विनिक्षिप्यालचूर्णकम्।
ततस्तु कज्जलीं क्षिप्त्वा मनोह्वां तावतीं क्षिपेत् ॥
ततो निरुध्य यत्नेन परिशोष्य पुटेद्भिशि।
पुटेन गजसंज्ञेन स्वतः शीतं विचूर्णयेत् ॥
चतुर्गुणेन गन्धेन निर्मितां रसकज्जलीम्।
क्षिप्त्वा पूर्वरसे लुङ्गवारिणा परिमर्दयेत् ॥
पचेत्क्रोडपुटेनैव दशवारमतः परम्।
एवं तालककज्जलया दशवारं पुटेत्ततः ॥
ततश्च मृतवैक्रान्तभस्मना च कलांशतः।
ततो विचूर्ण्य यत्नेन करण्डान्तर्विनिक्षिपेत् ॥
अयं पञ्चाननो नाम देवराजेन कीर्तितः।
श्रेष्ठः सर्वरसेनन्द्रेषु महारससमो गुणैः ॥
पथ्यासुरणशुण्ठीभिः सघृताभिर्निषेवितः।
सर्वान्पाण्डुगदान्हन्ति कृतघ्न इव सत्कृतिम् ॥
यक्ष्माणं जठरं हलीमकरुजं वातर्तिविड्बन्धनं,
कुष्ठं च ग्रहणीं ज्वरातिसरणं श्वासं च कासारुची।
श्लेष्मव्याधिमशेषतो गलगदान्दुनभिमन्दाग्निता,
मेहं गुल्मरुजं च कीवहुगिरा हन्याद्गदान्दुस्तरान् ॥
सेव्यमाने रसे चास्मिन्बिल्वमेकं च वर्जयेत्।
स्वस्थः सर्वं समश्नीयाद्गदी पथ्यं गदापहम् ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

कान्तलोह, स्वर्ण, ताम्र, चांदी और अभ्रकभस्म १।-१। तोला। पारद गंधक ३-३ तोला लेकर कज्जली बना लें और इस कज्जली में उपर्युक्त भस्मों को डालकर एक दिल कर लें तथा इसी में १२॥ तोला स्वर्णमाक्षिकभस्म भी

मिला लें। अब इस समस्त कज्जली को एक मूषा में १० तोला हरतालभस्म पर रखकर ऊपर १० तोला मैनसिलभस्म से ढक दें। मूषा का मुख बन्द करके सन्धि लेप न करें और गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर उसमें पारद ११ तोला, गंधक ५ तोला की कज्जली फिर मिलावें और जम्बीरी नीबू के रस की भावना देकर गोला बना लें। इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके वराह पुट द्वारा १० बार पाक करें। इसके बाद ११ तोला हरताल भस्म में ५ तोला पारद मिली हुई कज्जली को उपर्युक्त औषध द्रव्य में मिला दें और नीबू के रस की भावना देकर गोला बना लें तथा इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके वराह पुट द्वारा १० बार पाक करें। स्वांग शीतल होनेपर औषध द्रव्य निकालें और इसमें समस्त औषध द्रव्य का १⁄६ वां भाव वैक्रान्त भस्म ठीक तरह से मिलाकर सुरक्षित रख लें।

सेवन—इस रस को एक रत्ती की मात्रा में हरीतकी, सूरण, सोंठ और घृत के साथ सेवन करने से समस्त पाण्डु, राजयक्ष्मा, उदर रोग, हलीमक, वात रोग, विबन्ध, कुष्ठ संग्रहणी, ज्वरातिसार, श्वासकास, अरुचि, समस्त कफ रोग, गले के रोग, अर्श, प्रमेह, गुल्म तथा इनके अलावा समस्त रोग नष्ट होते हैं। इस रस के सेवन काल में बेल के मुरब्बे आदि को छोड़ दें तथा समस्त पथ्यकर आहार करें। इस रस का कथन देवराज इन्द्र ने किया है।

नियोजयेत् त्र्यूषणचित्रयुक्तं दोषत्रयोत्थेऽपि च सन्निपाते।
वाताधिकत्वादिह सूतकोक्तः ॥

(रसराजसुन्दर, भैषज्यरत्नावली)

प्रथम पारद गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें और कान्त-लोहभस्म हरतालभस्म, समुद्रफेन, पांचो नमक, अंजन, तुत्थभस्म, रौप्यभस्म प्रवालभस्म, कपर्दिका भस्म, वैक्रान्तभस्म, शम्बूकभस्म और शुक्तिभस्म १–१ भाग मिलाकर पुनः १२ वाँ भाग पारद डालकर थूहर के दूध, मदार के दूध तथा चीते के क्वाथ की ३-३ दिन तक भावना देकर गोला बनालें और इस गोले को तांबे के पतले पत्र से ढककर कपड़मिट्टी करके पुटपाक करें। स्वांगशीतल होनेपर औषध द्रव्य को निकाल कर मीठा तेलिया (सम्पूर्ण द्रव्य का १⁄४ भाग) चूर्ण और चीते के क्वाथ मिलाकर घोटें एवं सुखा लें।

सेवन—त्रिकुटा के क्वाथ के साथ इस रस के सेवन से वात और कफ प्रधान ज्वर नष्ट होते हैं। त्रिदोषज सन्निपात जिसमें वातप्रधानता हो इस रस के सेवन से लाभ होता है।

(२१) वडवानलरसः

कान्तञ्च सूतं हरितालगन्धं समुद्रफेनं लवणानि पञ्च ।
नीलाञ्जनं तुत्थकमेव रौप्यभस्मप्रवालानि वराटकाञ्च ॥
वैक्रान्तशम्बूकसमुद्रशुक्तिः सर्वाणि चैतानि समानि कुर्यात् ।
सुतं भवेद् द्वादशभागिकञ्च स्नुह्यर्कदुग्धेन विमर्दयेच्च ॥
दिनत्रयं वह्निरसैस्ततश्च निवेशयेत्ताम्रजसम्पुटे तत् ।
मृदा च संलिप्य रसं पुटेत्तद्रसस्ततः स्याद्वडवानलाख्यः ॥
तत्पादभागेन विषं नियोज्य कृशानुतोयेन पचेत् क्षणं तत् ।
वातप्रधाने च कफप्रधाने ॥

(१३) अपूर्वमालिनीवसन्तः

वैक्रान्तमभ्रं रविताप्यरौप्यं वङ्गं प्रवालं रसभस्म लोहम् ।
सुटङ्कणं कम्बुकभस्म सर्वं समांशकं पाच्य वरी-हरिद्रा-।
द्रवैर्विभाव्यं मुनिसंख्यया च मृगाङ्कजाशीतकरेण पश्चात् ।
वल्लप्रमाणो मधुपिप्पलीभिर्जीर्णज्वरे धातुगते नियोज्यः ।
गुडूचिकासत्त्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः ।
कृच्छ्राश्मरीं निहन्त्याशु मातुलुङ्गाम्रिजैर्द्रवैः ।
रसो वसन्तनामाऽयमपूर्वो मालिनीपदः ॥

(योगरत्नाकर—विषमज्वराधिकारः)

वैक्रान्त, अभ्रक, ताम्र, स्वर्णमाक्षिक, रौप्य, वंग, प्रवाल, पारद, लोह, सुहागा और शंखभस्म समान मात्रा में लेकर शतावर और हल्दी के क्वाथ की ७-७ भावना देकर चन्द्रमा की चाँदनी में रख दें । पश्चात् २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें । मधु और पीपल चूर्ण के साथ सेवन करने से जीर्ण ज्वर और धातुस्थ ज्वर नष्ट होते हैं । मिश्री और गुडूचीसत्व के साथ लेने से समस्त प्रमेह तथा बिजौरे नीबू के रस के साथ लेने से अश्मरी नष्ट होती है ।



पुलक–तामड़ा

(Garnet)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—पुलक[1] । हिन्दी—चुनड़ी, तामड़ा, तामरा । उर्दू—संगे, महताब, याकूत । सिलोनी—रव्वा, रबहस, (Rawwa, Rababs) । जर्मनी—ग्रानट (Granat) । फ्रेञ्च—ग्रेनट (Crenat) । अँग्रेजी—गार्नेट (Garnet) । लेटिन—ग्रानेटम् (Granatum) ।

उद्गमस्थान :—

(१) भारतीय क्षेत्र—

पुण्येषु पर्वतवरेषु च निम्नगासु, स्थानान्तरेषु च तथोत्तरदेशगत्वात् ।
संस्थापिताश्च नखरा भुजगैः प्रकाशं, संपूज्य दानवपतिं प्रथिते प्रदेशे ॥
दासांहंवागदवमेकलकन्यंकादौ[2][3] (मणिमाला)

द्वारिकापुरी, बगदाद तथा मेकल-नर्मदा नदी, कालगाद्रि पर्वतों आदि स्थानों में तथा इनके अलावा और भी अन्यान्य पर्वतों में एवं उत्तरदेश में बहनेवाली नदियों में तामड़ा पाया जाता है । गरुड़ पुराण में आया है कि भुजंग गण ने दानवपति की अच्छी प्रकार से पूजा करके राक्षसों के नखों को पुण्यजनक पर्वतों पर स्थापित किया—इसीलिये इन स्थानों में पुलकमणि उपलब्ध होता है ।

(२) आधुनिक भूगर्भ-शास्त्रज्ञों ने भारत के बहुत से स्थानों में तामड़ा की प्राप्ति का उल्लेख किया है ।

राजपूताना—राजपूताना प्रान्त से उपलब्ध तामड़ा उत्तम श्रेणी का होता है । अरावली पर्वत अञ्चल में प्रस्तर दलों (Schists) एवं उस स्थान से उद्भावित नदियों में तामड़ा उत्तम श्रेणी का एवं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है । अजमेर, किसनगढ़ तथा जयपुर तामड़ा के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं ।

---

१. युक्तिकल्पतरु, गरुड़पुराण । २. 'दाशार्णव–' पाठ भी मिलता है । ३. कालगाद्रौ—पाठ भी 'युक्तिकल्पतरु' में आया है ।

जयपुर में तामड़े के तराशने का अच्छा उद्योग है। कुछ माल रफ के रूप में जयपुर से दिल्ली भी चला जाता है। यहाँ पर भी तराशने का काम अच्छा होता है। इन स्थानों में तराशने एवं उत्तम प्रकार से पालिश हो जाने पर बहुत सा माल लन्दन निर्यात किया जाता है।

हैदराबाद—हैदराबाद के समीप वरंगल भी एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ से उद्भवित तामड़ा मद्रास के बाजार में आता है। यहाँ पर भी तराशने एवं पालिश का काम अच्छा होता है। यहाँ का माल यूरोप निर्यात किया जाता है। मद्रास प्रान्त में विजगापट्टम्, गोदावरी, त्रिचनापल्ली और तिन्नेवेली भी तामड़ा के खास उद्भवस्थान हैं। तिन्नेवेली-तामड़ा (Tinnevelli-garnet) उतना महत्त्वपूर्ण, रत्नों की कक्षा में आने लायक नहीं होता।

इन स्थानों के अलावा बर्मा, बिहार, उड़ीसा प्रान्त के हजारीबाग एवं कटक के समीपवर्ती स्थानों तथा महानदी के बालुकणों के साथ तामड़ा पर्याप्त उपलब्ध होता है। मध्यप्रान्त के मैंगनीज खनिज स्थानों में स्वच्छ नारंगीरंग का खूबसूरत तामड़ा प्रसिद्ध है।

विदेशीय क्षेत्र—वैसे तो तामड़ा विश्व के प्रायः सभी देशों में थोड़ी बहुत मात्रा में पाया जाता है। परन्तु मुख्यतः सीलोन, स्विटजरलैण्ड, स्पेन, स्वीडेन, नार्वे आदि स्थान विशेष प्रसिद्ध हैं। ग्रीनलैण्ड, यू. एस. ए., मैक्सिको, ब्राजील एवं आस्ट्रेलिया भी तामड़े के लिये प्रसिद्ध हैं। तामड़ा रूप रंग आदि भेदों के कारण कई प्रकार का होता है। प्रत्येक प्रकार का पृथक् पृथक् विवेचन करते समय उनका कुछ विशद् वर्णन आगे किया जायगा।

रूप, रंग और लक्षण—

(१) गुंजाञ्जनक्षौद्रमृणालवर्णा, गंधर्व-वह्नि-कदली-सदृशावभासः।
शंखाब्जभृंगार्क-विचित्र-वर्णा, एते प्रशस्ताः पुलकाः प्रसूताः॥
शूद्रैरुपेताः[1] परमाः पवित्राः, मङ्गल्ययुक्ता बहुभक्तिचित्राः।
वृद्धिप्रदास्ते पुलका भवन्ति, (युक्तिकल्पतरु)

अर्थात्—गुंजा के मुख के समान कृष्णाभायुक्त, मधु के रंग के समान, कमल मूल के समान हरित् पीत वर्ण, कस्तूरी के वर्ण के समान, कदली के तने के समान पीतवर्ण, शंख, श्वेत कमल, भ्रमर एवं सूर्य के वर्ण के समान तामड़ा

१. 'मणिमाला'कारने 'शूद्रैरुपेताः' के स्थान में 'स्वच्छाः प्रदिष्टाः' लिखा है।

का रंग होता है। शूद्र वर्ण कृष्णाभायुक्त तामड़ा को छोड़कर शेष श्वेत, पीत, नीलवर्ण तामड़ा मंगलदायक होता है

(२) तामड़ा अनारदाने (Pomegranate) के समान अतीव सुन्दर अतएव आकर्षक होता है। जो तामड़ा अनारदाने (Granate) के समान श्वेत + अरुण वर्णाभायुक्त होता है—बाजार में उसकी विशेष कीमत होती है। (Granate) के सदृश वर्ण होने के कारण ही इसका नाम भी गार्नेट पड़ा है। यह प्रायः लाल, लाल बादामी, उज्ज्वल पीत, किंचित् पीत, गुलाबी, हरित् वर्ण, जामुनी, नीललोहित एवं कृष्णाभायुक्त आदि कई रंगों का उपलब्ध होता है। कोई कोई तामड़ा माणिक्य से किसी भी कदर से सुन्दर कम नहीं होता है परन्तु इसके मूल्य की कमी का कारण यही है कि तामड़ा सुलभ एवं अधिक मात्रा में प्राप्त हो जाता है। किसी किसी तामड़े की कीमत तो माणिक्य से भी अधिक हो जाती है। प्राचीन भारतीयों ने इसके रूप रंग के आधार पर इसे माणिक्य अथवा कुरुविन्दम् का उपरत्न माना है जो कि स्थूल दृष्टि से नितान्त युक्तियुक्त ही है। रूपरंग आदि की दृष्टि से तामड़ा के जितने भेद हैं उतने और किसी भी रत्न के नहीं हैं।

रासायनिक संगठन—(Chemical Composition)

(१) तामड़ा अल्युम्यूनियम, लौह, सुधा (Lime) मैगनीसिया का सिलिकेट है इसका रासायनिक सूत्र अधोलिखित है।

$M'_3 M_2'' (Sio_4)_3$ प्रथम 'M_3' = मैगनीसिया, कैल्सियम और लौह का प्रतिनिधित्व करता है। द्वितीय M''_2 = एल्यूम्यूनियम, लौह और क्रोमियम का प्रतिनिधित्व करता है।

(२) तामड़ा के खड़ के रवे (Crystal) नियमित आकार के द्वादश फलक युक्त होते हैं। बहुधा पारदर्शक अथवा पारभासक होता है। अपारदर्शक तामड़ा खड भी बहुतायत से उपलब्ध होते हैं परन्तु इस प्रकार का रत्नविज्ञान में समावेश नहीं किया जाता।

कठोरता (Hardness)—६.५ से लेकर ७.५ तक होती है।

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)—३.५ से लेकर ४.५ तक होता है।

आवर्तनांक (Refr. Ind.)—१.७० से लेकर १.८५ तक होता है।

तामड़ा के प्रकार—वैसे तो तामड़ा के कई प्रकार किये जा सकते हैं परन्तु मुख्यतः ६ प्रकार ही रत्न वैज्ञानिकों ने माने हैं।

(१) अलमनडाइन (Almandine)—प्लीनी महाशय ने इसका प्राचीन

नाम 'कार्बंकुलस ऍलाबंडिकस (Carbunculus alabandicus) दिया है। एसिया माइनर में अलबन्डा (Alabanda) नामक स्थान है-यहाँ पर तामड़े की कटिंग तथा बहुत उत्कृष्ट श्रेणी की पालिश होती है। अतएव इसका नाम अल्मनडाइन (Almandine) ही रखा गया है। यह ग्रीन लैण्ड मैक्सिको, ब्राजील आदि स्थानों से आता है। इसका रंग प्रगाढ़ अरुण (Deep red), अरुणाभायुक्त, नील लोहित या बैंगनी (Violet), पीताभायुक्त अथवा हरित् पीताभा मिश्रित होता है। यह पारदर्शक या पारभासक होता है। कृष्णाभायुक्त अपारदर्शक या किरणाभेद्य प्रकार भी बहुतायत से पाया जाता है। भारतवर्ष के राजपूताना प्रान्त में यह प्रकार बहुतायत से पाया जाता है। जयपुर और दिल्ली में इसके तराशने और पालिश करने का खास केन्द्र है। इसका रासायनिक सूत्र ($Fe_3 HL_2 (Sio_4)_3$ है। इसकी कठोरता ७.५ और आपेक्षिक गुरुत्व ४.१ से ४.३ तक है। आवर्तनांक (Refr, Ind.) १.७७ से १.८३ है। कृत्रिम प्रकाश (Artificial light) में यह नारंगीप्रभ (Orange hue) दिखाई देता है। अरुण वर्ण के नरम माणिक्य (Spinal) से इसका प्रायः भ्रम हो जाया करता है। परन्तु साधारणतः स्पेक्ट्रोसकोप (Spectroscope) नामक यंत्र से ही प्रभेद ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार का भ्रम प्रायः कभी कभी माणिक्य, कृत्रिममाणिक्य, नरम माणिक्य (Spinal) कृत्रिम नरम माणिक्य, और एमेथिस्ट आदि रत्नों के साथ हो जाया करता है। परन्तु सावधानी से एवं अन्यान्य परीक्षण उपायों से शीघ्र ही तामड़े की परिज्ञान निश्चिति हो जाती है। 'एडेलैड माणिक्य' (Adelaide ruby) नामक रत्न दक्षिण आस्ट्रेलिया से उपलब्ध होता है। यथार्थतः इसका नाम मात्र माणिक्य है वैसे यह भी तामड़े का ऍल्मनडाइन प्रकार ही है।

ग्रास्सुलर (Grossular)—इसका दूसरा नाम 'गूज़बेरी स्टोन' भी है। 'गूज़बेरी' (Goose berry) को हिन्दी में करौंदा कहा जाता है। तामड़े का यह प्रकार ठीक करौंदे के समान पीत-हरित् (Pale-green) वर्ण का होता है। पीत हरित् वर्ण का ग्रास्सुलर बहुत अधिक पसन्द किया जाता है परन्तु ठीक इसी वर्ण का रत्न प्रकृति में बहुत कम उपलब्ध होता है अतएव इसका मूल्य भी अधिक होता है। 'ग्रास्सुलर' शब्द का अर्थ 'तृणप्रभ' होता है। जिस प्रकार हरी घास सूख कर कुछ पीली और कुछ हरी होती है ठीक उसी प्रकार का वर्ण होने से 'ग्रास्सुलर' या 'तृणप्रभ' नाम है। इसी का तीसरा नाम 'हेस्सोनाइट' (Hessonite) भी है। इसका वर्ण कुछ बादामी रंग का

पीतारुण होता है। हेसियन (Hessian) जूट या टाट को कहते हैं। टाट का रंग बादामी रंग का ही होता है, सम्भवतः इसी कारण इसका नाम हेस्सोनाइट पड़ा है। इसका चौथा नाम 'सिनामोन स्टोन' (Cinnamon-stone) भी है। सिनामोन दारचीनी को कहते हैं। दारचीनी का वर्ण पीत लोहित (Redish-yellow) होता है। ठीक यही वर्ण सिनामोन स्टोन का भी होता है। इसमें लोहित (Redish) वर्ण इसी कारण होता है कि इसमें ३ से ४ प्रतिशत लौह आक्साईड (Iron-oxide) अवश्य होता है। सिलोन के जौहरी भारतीय जौहरियों को इसी 'सिनामोन स्टोन' को गोमेद के स्थान में बेंच जाते हैं। भारतवर्ष के अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित जौहरियों को गोमेद के स्थान पर तामड़े के इस 'सिनामोन स्टोन' प्रकार को बेंचते हुए देखा गया है। इसका वर्ण भी यथार्थतः गोमेद के वर्ण से ही मिलता-जुलता सा है। गोमेद जिसका कि वर्ण प्रज्वलित अग्निवत् पीत-प्रगाढ़ अरुण वर्ण (Good fiery red Zircon) होता है। यह गोमेद 'सिन्नामोन स्टोन' की अपेक्षा सस्ता पड़ता है। बहुत से जौहरी भ्रमवशात् इसे ही गोमेद समझते हैं। सिनामोन स्टोन विशेषकर सिलोन और केलिफोर्निया से आता है। यहाँ के लोग भी अभी ५० वर्ष पूर्व तक गोमेद (Zircon) और सिनामोन स्टोन में कोई विशेष अन्तर नहीं समझते थे। यही कारण था कि इसी सिनामोन स्टोन को 'हाइसिन्थ' (Hyacinth) या 'जयसिन्थ' (Jacinth) (जो कि गोमेद (Zircon) शब्द के अंग्रेजी पर्यायवाची का पारिभाषिक शब्द है) समझा जाता था। वैज्ञानिकों को आधुनिक अनुसन्धान से यह नितान्त सिद्ध हो चुका है कि सिनामोन स्टोन और गोमेद बिलकुल अलग वस्तु है। गोमेद सिनामोन को खरोंच सकता है। गोमेद की कठोरता अधिक होती है।

इस तरह ग्रोस्सुलर, गूंजबेरीस्टोन, हेस्सोनाइट एवं सिनामोन स्टोन तामड़ा (Garnet) वर्ग के ग्रोस्सुलर कक्ष के अन्तर्गत एक ही वस्तु है। रूप रंग में कुछ अन्तर अवश्य है। इसका रासायनिक सूत्र $Ca_3\ Al_2\ (Sio_4)_3$ है। कठोरता (Hardness)–७ है। आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.५ से ३.६ तक आवर्तनांक (Refr.Ind)–१.७३५ से १.७६५ तक होता है। तामड़े के इस प्रकार का सम्भ्रम पन्ना, गोमेद, वैक्रान्त, पुखराज और कभी-कभी नीलम से भी हो सकता है।

पाइरोप (Pyrope)—पाइरो (Pyro) शब्द अग्नि का पर्यायवाची है अतएव इसे 'अग्निप्रभ-पुलक' कहा जा सकता है। इसका रंग भी अग्नि-

वत् अरुण (Fiery-red) होता है। यह तामड़े के प्रकारों में एक प्रसिद्ध और प्रिय-आकर्षक प्रकार है। देशानुसार इसके अलग-अलग नाम हैं। जैसे बोहेमिया में पाया जाने वाला 'बोहेमियन गार्नेट' कहलाता है। दक्षिण आफ्रिका में हीरक खानों से उपलब्ध और 'केपटाउन' नामक स्थान से निर्यात होने के कारण 'केप माणिक्य' (Cape ruby) कहलाता है। इसी प्रकार 'किम्बरले से प्राप्त पाइरोप 'किम्बर लाइट' (Kimberlite) कहलाता है। इसमें मैग्नीसियम की मात्रा अधिक होने से इसे 'मैग्नीसियम गार्नेट' भी कहा जाता है : पाइरोप में मैग्नीसियम के अलावा २ से ४ प्रतिशत तक क्रोमिक आक्साइड (Cromic oxide) और लगभग १०-१२ प्रतिशत लौह आक्साइड (Iron oxide) पाया जाता है। इसके अग्निप्रभ रंग का कारण भी क्रोमियम और लौह अंश का पाया जाना है। इसका रासायनिक सूत्र M_{13} $Al_2(SiO_4)_3$ है। इसकी कठोरता ७$\frac{1}{4}$ से ७.५ तक है। आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.७ से ३.८ तक होती है। आवर्तनांक (Refr. Ind.) १·७० से १·७४ तक होता है। भारतवर्ष में यह प्रकार बहुत ही अल्प मात्रा में उपलब्ध होता है। बोहेमिया से यह प्रकार प्रायः १४ वीं शताब्दी से 'बोहेमियन माणिक्य' के नाम से उपलब्ध होता आ रहा है। ऍलमनडाइन और पाइरोप के मध्य का एक और प्रकार होता है जिसे 'रोडोलाइट' (Rhodolite) कहा जाता है। इसका गुलाबी रंग होता है। 'रोडोडेन्ड्रान' (Rhododendron) नामक एक प्रकार का पर्वतीय क्षुप होता है जिसके पुष्प गुलाब के पुष्प के समान वर्ण वाले होते हैं अतएव तामड़े के इस प्रकार को भी 'रोडोलाइट' कहा जाता है। इसका उद्भवस्थान मुख्यतः उत्तर कारोलिना है।

(४) एन्ड्राडाइट (Andradite) तामड़े के 'एन्ड्राडाइट' प्रकार का सर्वप्रथम अनुसन्धान एक पुर्तगालीय खनिज वैज्ञानिक डाक्टर जे. बी. डी. एन्ड्राडा नामक व्यक्ति ने किया, अतएव एन्ड्राडा (Andrada) महाशय के सम्मानार्थ इस प्रकार का नाम भी 'एन्ड्राडाइट' रखा गया। वैसे तो यह प्रायः अपारदर्शक ही होता है परन्तु कभी कभी पारदर्शक अथवा पारभासक भी उपलब्ध हो जाया करता है। यह अपारदर्शक होते हुये भी इसमें सुचिक्कणता और दीप्ति पर्याप्त पाई जाती है। रंग के आधार पर यह तीन प्रकार का होता है। (१) टोपेज़ोलाइट (Topazolite)—इसका पीत वर्ण होता है। यह पुखराज से सम्भ्रमित हो जाता है। अतएव इसका नाम भी पुखराजप्रभ या टोपेज़ोलाइट रखा गया है। यह प्रकार पारदर्शक होता है।

(२) डेमेनटाइड (Demantoid)—यह प्रकार तृणवत् हरित् वर्ण का होता है। इसके रङ्ग के कारण इसे बहुत दिनों तक 'ओलिवाइन' ही समझा जाता था। परन्तु अभी १५-२०वर्षों से ही इसका तामड़े के एण्ड्राडाइट प्रकार के अन्तर्गत समावेश किया गया है। यूराल पर्वतांचल में यह उपलब्ध होता है अतएव यहाँ वाले इसे 'यूरालियन पन्ना (Uralian emerald) कहते हैं। परन्तु वैज्ञानिक और जानकार जौहरी इसे 'डेमेनटाइड गार्नेट' ही कहते हैं। यह यूराल पर्वतांचल में एस्बेस्टस और जहरमुहरा (Serpentine) की खानों से प्राप्त होता है। (३) मैलेनाइट (Melanite) यह प्रकार अपारदर्शक और कृष्ण वर्ण का होता है। इसका जौहरियों में बहुत ही कम सम्मान है। एण्ड्राडाइट एवं उसके प्रकारों का रासायनिक सूत्र प्रायः यह $Ca_3 Fe_2 (Sio_4)_3$ है। कठोरता (Hardness) ६½ है। तथा आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.८ से ३.९ तक होता है। आवर्तनांक (Refr, Ind) १.८२ से १.८९ तक होता है।

गुणधर्म—तामड़ा या पुलक के गुणधर्म माणिक्यवत् माने गये हैं—कारण कि यह माणिक्य का उपरत्न माना जाता है। इसका शोधन, भस्मीकरण आदि समस्त प्रक्रिया माणिक्य के समान ही करनी चाहिए। लेखक के अनुभव के अनुसार तो तामड़ा भस्म (बहुत से रोगों में जहां पर कि माणिक्य भस्म के देने का विधान है) माणिक्य की अपेक्षा उत्कृष्ट सिद्ध हुई है। तामड़े की भस्म की मात्रा भी माणिक्य के समान है। पाश्चात्य मतानुसार भी इसे रक्तस्राव का अवरोधक माना है। चाहे किसी भी स्थान से रक्तस्राव होता हो तामड़ा भस्म एवं उसका धारण सद्यः लाभप्रद माना जाता है। बाह्य अथवा आभ्यन्तरिक किसी भी स्थान के शोथ (इन्फ्लेमेशन) में भी प्लीनी ने इसे रामबाण औषध माना है। हकीमी मतानुसार खून को बन्द करने में तो बेजोड़ कहा ही गया है साथ ही पथरी रोग में भी इसे खास दवा माना गया है। हकीमी में तामड़ा या संगये महताब की पिष्टी बनाने के लिये लिखा है कि सिर्फ आग पर १० बार गरम करके ठण्डे पानी में डुबाने से यह भुरभुरा हो जाता है और फिर गुलाब जल में १० दिनों तक घोटने से उत्तम प्रकार की पिष्टी बन जाती है।

पाश्चात्य ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बताया गया है कि जिन व्यक्तियों का जन्म २१ जनवरी से २१ फरवरी के बीच कुम्भ राशि में हुआ हो तो उन्हें तामड़ा या गार्नेट धारण करना चाहिये। इसके धारण करने से क्रोधी मनुष्य

भी धैर्यवान् और गम्भीर हो जाता है। उसकी गम्भीर आकृति का दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। एक अंग्रेजी के कवि ने कहा है—

It you would cherish friendship true, in aquarius well you'll do to wear this gem of warmest hue—the garnet.

अर्थात् कुम्भराशि वाले व्यक्ति को अपनी मित्रता को स्थिर रखने के लिए उत्तम प्रकार के दीप्ति युक्त तामड़े को धारण करना चाहिये।

(५) यूवरोवाइट (Uvarovite)—इसका सर्वप्रथम अनुसन्धान एक रसियन वैज्ञानिक 'एस. एस.' यूवरोव महाशय ने किया—अतएव इसका नाम भी 'यूवरोवाइट' ही पड़ गया है। इस प्रकार में 'क्रोमियम' तत्व की प्रधानता और एतज्जन्य हरीतिमा के कारण इसका दूसरा नाम 'क्रोमियम गार्नेट' भी कहा जाता है। यह यूराल पर्वतांचल के क्रोमाइट और जहरमोहरा की खानों से प्राप्त होता है। अभी-अभी पूर्वीय फिनलैण्ड के ओटोकम्पू (Outokumpu) नामक स्थान की खानों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्धि का उल्लेख पाया जाता है। इसका रासायनिक सूत्र Ca_3 Cr_2 (Sio_4)$_3$ है। इसकी कटोरता (Hardness)—७ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.५ से ३.७ तक होता है। आवर्तनांक (Refr. Ind.) १.८४ से १.८५ तक होता है।

(६) स्पेस्सरटाइन (Spessartine)—इसका दूसरा नाम 'मैंगनीज़ गार्नेट' भी कहलाता है। इसका वर्ण प्रगाढ़ अरुण एवं प्रीतप्रभ होता है। यह सीलोन, मैडागास्कर की मैंगनीज़ की खानों से उद्भव होता है। इसका रासायनिक सूत्र Mn_3 Al_2 (Sio_4)$_3$ है। इसकी कठोरता (Hardness)—७ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)—४.१ से ४.३ तक तथा आवर्तनांक (Refr. Ind.)—१.७९ से १.८१ तक होता है।

गार्नेट वर्ग

(Garnet group)

तामड़ा वर्ग (Garnet group) में पाँच प्रकार के और भी उपरत्नों का समावेश होता है। उनकी वैज्ञानिक पद्धति में संक्षिप्त व्याख्या अधोलिखित है—

तामड़ावर्ग के अन्तर्गत—उपरत्न	रासायनिक सूत्र (Chemical compo.)	रंग एवं दर्शकता	कठोरता (H)	आपेक्षिक गुरुत्व	आवर्तनांक (R. I.)	संतुलित भ्रम
एलमनडाइन (Almandine)	3 F. O. AL_2O_3 –3 SIO_2	नीललोहित वर्णयुक्त अरुणाभामय (Purplish–Red) पारदर्शक, पारभासक	७½	३.९ ४.२ क	१.७९	माणिक्य, कृत्रिम माणिक्य, स्पिनल, कृत्रिम स्पिनल, एमेथिस्ट।
पिरोप (Pyrope)	3 MgO. AL_2O_3 –3 Sio_2	गम्भीर रक्तवत् लालवर्ण (Deep blood–red) पारदर्शक एवं पारभासक	७¼	३.७ से ३.९ तक	१.७५	माणिक्य, कृत्रिम माणिक्य, स्पिनल।
ग्रासुलर (Grossular) अथवा	3 Cao. AL_2O_3 –3 Sio_2	हरिदाभायुक्त नितान्त हरित्	७¼	३.६५	१.७४	पन्ना, जरकान, तुरमली।
हेसोनाइट (Hessonite)	3 FeO. AL_2O_3 3 SIO_2	नारंगी कत्थई मिश्रित या पीत कत्थई वर्ण	७	३.४९	१.७३	पुखराज, नीलम, जरकान।
एण्ड्राडाइट (Andradite)	3 CaO Fe_2O_3 –3 SIO_2	(१) डेमेनटॉइड–हरितवर्ण (२) टोपेज़ोलाइट–पीतवर्ण पारदर्शक	६½	३.८५	१.८९	पन्ना, पुखराज, पेरीडोट, क्राइसोबेरिल
स्पेसर्टाइट (Spessartite)	3 Mno, AL_2O_3 –3 SIo_2	नारंगी एवं पीतवर्ण पारदर्शक	७	४.१६	१.८०	क्वार्ट्स (बिल्लौर) पुखराज।
रोडोलाइट (Rhodolite)	एलमेनडाइन और पिरोप मिश्रित	गुलाबी रक्तवर्ण नील लोहित वर्ण पारदर्शक	७ से ७½	३.८४	१.७६	स्पिनल, पीतनीलम, कृत्रिम पीतनीलम, एमेथिस्ट।

स्फटिक—बिल्लोर (Qwartz)

उत्पत्तिस्थान—बिल्लोर का संस्कृत नाम स्फटिक मणि है। यह भारत के उत्तरी प्रान्तों में जैसे काश्मीर, कुल्लु, शिमला, स्पित्ती, एवं मध्यभारत के सतपुड़ा पर्वत श्रेणी, विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के उत्तर एवं दक्षिण अंचल में पाया जाता है। काश्मीर और विन्ध्याचल से बहुत पुराने समय से निकाला जा रहा है। आदि काल से भारतवर्ष ही बिल्लोर का जन्मदाता माना गया है। इसी से सभी स्तरयुक्त प्रस्तर का नाम 'प्राच्य प्रस्तर' या 'भारतीय प्रस्तर' (Oriental precious stones) कहा जाता है। सभी भारतीय बिल्लोर नदियों के गर्भ में पाये जाते हैं। जो नदी चट्टानों के ऊपर से होकर बहती हैं उन्हीं नदियों में बिल्लोर पाये जाते हैं। 'पेरिप्लस' के ग्रन्थकार ने लिखा है कि इस रत्न का प्रधान क्षेत्र गोदावरी नदी है। उन्होंने यह भी लिखा है कि आजकल का ब्रोच नगर इस रत्न का प्रधान बाजार था। अभी भी राजपीपला स्थान से अपरिशोधित बिल्लोर की सभी किस्में ब्रोच और केम्बे के बाज़ारों में जाकर शुद्ध किया जाता है।

योरोप के नाही (Nahi) नदी के तट पर 'ओवरस्टीन' के पार्श्ववर्त्ती स्थान पसिद्ध हैं। नाही नदी बिंजेन में राइन नदी से मिल जाती है। ओवर-स्टीन से दो मील दूर पर इडर (Idar) के समीप गालजेन बर्ग नामक एक पर्वतीय स्थान है—यहाँ पर बिल्लोर पर्याप्त पाये जाते हैं। ओवरस्टीन में परिशोधन और पालिश किये जाते हैं। इस माल को ब्राजील भेजकर इनको पुनः पालिश किया जाता है तब इनका नाम 'ब्राज़ीलीयन एगेट्स' कहलाकर समस्त देशों को भेजा जाता है।

रङ्ग रूप बनावट—बिल्लोर प्रायः कांचवत् शुभ्र पारदर्शक होता है। जिन खानों से या जिन स्थानों से शुभ्र बिल्लोर मिलता है वहीं पर बिल्लोर के समस्त प्रकार दूधिया, रङ्गदार, काला, पीला, गुलाबी, भूरा, धानी, हरा, बैंगनी इत्यादि सभी प्रकार पाये जाते हैं। प्रत्येक वर्ण के बिल्लोर की बनावट प्रायः पहलूदार होती है। उन्नत भाग प्रायः षट् पहलू अष्ट पहलू होता है। बिल्लोर के स्वच्छ शुभ्र प्रकार को हीरे में भ्रम हो जाता है परन्तु हीरे और बिल्लोर को सावधानी से देखने पर स्पष्ट फर्क मालूम हो जाता है।

रासायनिक रचना—बिल्लोर का संगठन सूत्र (Sio_2) है। अर्थात् यह सिलिकन आक्साइड अथवा सिलिका का मुख्य ओषिद् है। जिन शैलिक तत्वों से पत्थर, चूना, बालु आदि इस पृथ्वी के मुख्य-मुख्य अङ्ग बने हैं उसी

तत्व के पृथ्वी गर्भ में भारी दबाव और उत्ताप के कारण ओपजन नामक तत्व से संयोग पाकर बिल्लोर बना है।

प्रकार—बिल्लोर की मुख्यतः रवादार और रवाहीन दो किस्में हैं। रवादार किस्म के मुख्यतः तीन प्रकार हैं—(१) Rock crystal Quartaz. (२) Rose crystal Quartaz. (३) Amethyst. रवाही किस्म के भी कई प्रकार हैं जैसे—

(१) अकीक (Agate) ।
(२) (Chabedony) ।
(३) रुधिराख्यमणि (Carnelian) ।
(४) सूर्यकान्त (Jasper) ।
(५) संगेयशव (Onyx) ।
(६) दुग्धप्रस्तर (Opal) ।

अकीक

(Agate)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

उर्दू—यम्नी, संगसुलेमानी, हिन्दी—अकीक, पंजाबी—मंक, अंग्रेजी—एगेट (Agate)।

उद्गम स्थान—

भारतीय क्षेत्र—दक्षिण भारत में राजमहल के पर्वतीय स्थान से निकली हुई नदियों में एवं कृष्णा, गोदावरी और भीमा नदी के प्रस्तरों में पर्याप्त मात्रा में अकीक पाया जाता है।

काश्मीर के रड़ोक नामक स्थान के पार्श्ववर्त्ती स्थानों में अकीक एवं गोमेद या स्फटिक वर्गीय कार्नेलियन (Carnelian) नामक प्रकार पर्याप्त पाया जाता है।

बिहार के संथाल परगने में एवं मद्रास प्रान्त के राजमहेन्द्री राज्य के पार्श्ववर्ती स्थानों में अकीक, जेस्पर, कार्नेलियन पर्याप्त पाये जाते हैं। गन्टूर नामक स्थान की कृष्णा नदी में अकीक एवं ऑनिक्स (Onyx) पाया जाता है। नर्मदा नदी में भेड़ा घाट एवं जबलपुर के पास अकीक पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। अहमदाबाद मण्डलान्तर्गत रामपुर के पास 'जालयुक्त अकीक' (Veined agate) पाया जाता है। काठियाबाड के मोरबी राज्य में अकीक के प्रकार 'शैवाल अकीक' (Moss agate) और धूसर वर्णीय (Common agate) पाये जाते हैं। पीपला राज्य के रतनपुर नामक स्थान के आस-पास भी अकीक काफी तादात में पाया जाता है। बीजापुर में भी इसकी पुरानी खान हैं।

विदेशीय क्षेत्र—अंग्रेजी में अकीक को एगेट (Agate) कहा जाता है। Agate शब्द एकेट्स (Acxates) शब्द का ही अपभ्रंश रूप होता है। सिस्ली प्रान्त में 'एकेट' नामक नदी है। इसी नदी के नाम पर इसका नाम भी 'एगेट' पड़ गया है। एकेट एवं इस नदी से मिलनेवाली अन्य नदियों में एवं इन नदियों के उद्गम स्थानों के पार्श्ववर्त्ती स्थानों में अकीक पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। ओबरस्टीन, ब्राजील एवं स्काटलैण्ड में अकीक पर पॉलिश करने के बहुत से कारखाने हैं।

व्यवसाय—खम्बाद, भड़ौंच में अकीक के पालिश करने का एवं निर्यात का खास व्यवसाय है। अरब के व्यापारी इन्हीं स्थानों से ले जाते हैं और वे अकीक पर पुनः पालिश करते हैं। पालिश करने की कला में अरबियन लोग अच्छे सुदक्ष होते हैं। जबलपुर के पार्श्ववर्ती स्थानों से उपलब्ध अकीक भी भड़ौंच और खम्बाद ही भेज दिये जाते हैं।

प्रकार—

(१) अकीक (Agate)।

(२) जालयुक्त अकीक (Veined agate)।

(३) शैवाल अकीक (Moss agate)।

(४) साधारण अकीक (Common agate)।

रूप रंग और लक्षण—अकीक स्फटिक वर्गान्तर्गत गुप्त स्फटिकीय (Anorphus) प्रकार है। शैवाल अकीक (Moss agate) का रंग बिल्कुल हरित् वर्ण शैवाल (काई) के समान होता है। अथवा हरित् वर्ण की प्रधानता लिये हुये श्वेत-भूरापन युक्त भी हो सकता है। इसमें जब लौहांश होता है तब इसका रंग कुछ हरित् कृष्णाभा युक्त भी हो सकता है। रोम नगर के प्राचीन भग्नावशेष प्रासादों की प्राचीरों पर Moss agate की ही पच्चीकारी पाई जाती है। अकीक (agate) प्रकार का रंग लोहित वर्ण (जिस प्रकार मानव शरीरस्थ शिराओं में रक्त का रंग होता है। जालयुक्त (Veined agate) अकीक का रंग शिराओं के जाल के समान रेखायुक्त होता है। साधारण अकीक (Common agate) का रंग कुछ भूरापन लिये होता है। यह प्रकार ही अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है।

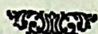
कठोरता (Hardness)	७
आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	२·६०
आवर्तनांक (R. I.)	१·५३

गुणधर्म—हकीमी मतानुसार अकीक के गुणधर्म अधोलिखित हैं। अकीक दिल को कुव्वत देता है। बेहोशी और फिकर को दूर करता है। यकृत्, प्लीहा, रक्तस्राव और पथरी रोगों को नष्ट करता है। नेत्ररोग, शिररोग में मुफीद है। वीर्य को प्रगाढ़ करते हुये कामोत्तेजक होता है।

शोधन—उत्तम जालरहित अकीक को अर्क केवड़ा अथवा अर्क वेदमुश्क में तब तक बुझाते रहें जब तक कि अकीक के बारीक-बारीक टुकड़े न हो जावें। एक लोहे की बड़ी करछुल में रखकर अच्छी प्रकार से प्रतप्त करके केवड़े के अर्क में कम से कम १५-२० बार बुझावें, उत्तम प्रकार से शोधन हो जाता है।

भस्मीकरण— जिस अर्क केवड़े में अकीक को बुझाया गया है—उसी में अकीक को खरल में घोटें और टिकिया बनाकर शराव संपुट में फूँक दें। अधिक से अधिक ३ बार में उत्तम भस्म बन जाती है।

भस्म की अपेक्षा पिष्टी का हकीम लोग अधिक उपयोग करते हैं। परन्तु पिष्टी में कुछ न कुछ करकराहट रह ही जाती है। वारितर परीक्षा में अकीक पिष्टी जल में डूब जाती है—इसका तात्पर्य यह हुआ कि पिष्टी ठीक प्रकार से नहीं बनी है। अतएव भस्म का ही उपयोग करना चाहिये। यदि अच्छी प्रकार से खरल में केवल अर्क केवड़ा से ही घुटाई कर सकें और वारितर परीक्षा से उत्तम पिष्टी बन सके तो भस्म की अपेक्षा पिष्टी का अधिक और शीघ्र ही लाभ होता है।



काच–भीष्ममणि

(Rock-crystal)

मुख्य–मुख्य भाषाओं के नाम—

संस्कृत—काचमणिः, भीष्मरत्न, पिंगाण, मुकुर, हिन्दी—कांच, बंगला—काच, गुजराती—काच, मराठी—काच, तंजावर—वल्लम हिरे, पंजाबी—मरि-हिरे, तामिल—कन्नाति, तैलङ्ग—आङ्गमु, उर्दू—शीशा, आबगीना, फारसी—मिट्रे, अरबी—खियज, अंग्रेजी—ग्लास (Glass), लेटिन—ग्लेसम् (Glesum) भेद्रास (Bhedras), वैज्ञानिक (आधुनिक) रॉक् क्रिस्टल (Rock-Crystal) रसियन—स्टेक्लो (Styclo) स्पेन—भिद्रो (Bhidro) इटली—भेद्रो (Bhedro)

उद्गम स्थान—प्राचीन समय में पर्याप्त काचमणि उपलब्ध होता था। युक्तिकल्पतरु (६ ठीं शताब्दी) में अधोलिखित स्थानों में काचमणि या भीष्ममणि का उद्भव स्थान माना गया है।

कलिंगे मगधे चैव मलये च हिमालये ।
भीष्मरत्न[1]-समुत्पत्तिः················ ॥ (युक्तिकल्पतरु)

अर्थात्—(१) कलिंग (छत्तीसगढ़, सम्बलपुर और गोदावरी नदी के मध्य का प्रदेश)। (२) मगध (बिहार), (३) मलय—मलयागिरि पर्वतांचल, तथा (४) हिमालय—इन प्रदेशों में भीष्ममणि उत्पन्न होता है। आधुनिक भूगर्भशास्त्रज्ञों ने भी भारत के प्रायः प्रचीन स्थानों को ही काच का उपलब्धि स्थान माना है।

(१) सम्बलपुर—यहाँ पर महानदी के सिकतामय प्रवाहित स्थानों में कहींपर उत्तम श्वेत रंग के एवं कहीं कहीं धूसर वर्ण के भी काच उपलब्ध होते हैं।

(२) छिंदवाड़ा, छत्तीसगढ़—दूधिया, गुलाबी, स्वच्छ श्वेत एवं मोतीया रंग का काच इस अंचल में पर्याप्त पाया जाता है। छत्तीसगढ़ एवं सम्बलपुर लगभग महानदी रेंज में ही आ जाते हैं।

---

१. भीष्मरत्न या भीष्ममणि शब्द, गरुड़पुराण, युक्तिकल्पतरु में काच या रॉक् क्रिस्टल के लिये आया है। राजा सुरेन्द्र मोहन टैगोर (१८८१ ई०) ने अपने मणिमाला ग्रन्थ में भीष्ममणि से ही रॉक् क्रिस्टल को ही माना है। डाक्टर वामन गणेश देसाई ने अपने ग्रन्थ में राक क्रिस्टल को काच माना है।

(३) गोदावरी अंचल के राजमहेन्द्री के पश्चिम में एवं तजांवर, विजगापट्टम में 'बल्लभहिरे' नामक 'रत्नों की उपलब्धि होती है जो कि यही काच है। यहाँ का काच उत्तम और प्रदीप्तियुक्त हीरे के समान होता है।

(४) काठियावाड़ के मोरवी नामक स्थान के पास टंकारा नामक स्थान से काच उत्तम श्रेणी का उपलब्ध होता है। खम्बाद में इन पर पालिश की जाती है। प्रतिवर्ष यहाँ से विदेशों को खड़ के रूप में एवं पालिशयुक्त काच निर्यात किया जाता है।

(५) पंजाब—के ओरंगपुर तथा मियानवाली स्थानों में भी काच प्राप्त होता है।

(६) वारङ्गल—हैदराबाद में भी उत्तम श्रेणी का काच प्राप्त होता है।

विदेशीय क्षेत्र—विदेशीय क्षेत्रों में विशेषतः न्यूयार्क, ब्रेजिल, स्विट्ज़रलेण्ड, जापान और मेडागास्कर का काच उत्तम श्रेणी का होता है।

१. भीष्ममणि उत्तेजनात्मक प्रभाव (Stimulating influence) रखता है।

२. अर्ध निद्रा या तन्द्रा में इसकी अंगूठी से लाभ पहुंचता है।

३. अतिनिद्रा या बेहोशी में भीष्ममणि के नाभि के गर्त में रखने से बेहोशी दूर होती है। अतिनिद्रा रोग दूर होता है।

४. प्रायः कई व्यक्ति निद्रा में सोते हुये ही उठकर घर से बाहर निकल कर कोसों दूर जाकर घर वापिस आकर पुनः सो जाते हैं और उन्हें यह स्मरण ही नहीं रहता कि मैं कहीं बाहर गया था। इस रोग को अंग्रेजी में 'सम्नेम ब्यूलिज्म' (Somnambulism) कहते हैं—भीष्म मणि के धारण करने से यह रोग शीघ्र ही चला जाता है। रोग के प्रशमन होने पर भी लगातार कुछ दिनों तक प्रयोग में लाते रहना चाहिये।

५. मिरगी अथवा योषापस्मार रोग में यह आश्चर्यजनक कार्य करता है।

६. इजिप्ट में लगभग ५वीं-६ठीं शताब्दी से ही भीष्ममणि पर तरह तरह की आकृति खुदवाकर और उसे गले में पहिनने का उल्लेख पाया जाता है। आगे चलकर अँगूठी के रूप में भी उल्लेख पाया जाता है।

७. जापानी सैनिक अपने कोट में भीष्ममणि की बटनें लगाना शुभ समझते हैं। अश्वारोही सैनिक अपने घोड़े के सिर पर सोने चाँदी में भीष्ममणि की कन्दुक (Rock-crystal ball) को कलगी में मढ़वाते हैं। अश्वारोही सैनिक अपने को सुरक्षित समझता है। राजा के आगे आगे जो अंगरक्षक चलते हैं वे अपने हाथ में रहने वाली स्वर्णमण्डित यष्टि के ऊपर भीष्ममणि कन्दुक को मढ़वाते हैं—राजा अपने को सुरक्षित समझता है। १७वीं शताब्दी तक के

जापानी लेखकों ने इस मणि का प्रारम्भिक रूप बरफ माना है। यह बरफ जब ज्वालामुखी पर्वतों के फटने पर पृथ्वी में समा जाता है यही पृथ्वी 'ऊष्मा पर कठोरावस्था में आकर फिर द्रव रूप नहीं हो पाता। जापानी इसे 'पूर्ण रत्न' (Perfect Jewel) मानते हैं और इस रत्न पर अपार विश्वास एवं श्रद्धा रखते हैं। इस रत्न की तरह तरह की आकृतियों में, मूर्तियाँ, खिलोने, कप, जलपात्र, सुरापात्र बनाने में ईसा पूर्व से ही बनाते चले आ रहे हैं और आज भी वे दक्ष हैं।

वैसे तो जर्मनी, फ्रांस, एवं संयुक्त अमेरिका आदि स्थानों में भी भीष्ममणि की उत्तमोत्तम वस्तुएँ निर्माण की जाती हैं परन्तु जो सफाई, सुचिक्कणता एवं आभा जापानी कारीगरों द्वारा निर्मित वस्तुओं पर आती है वह अन्य स्थानों में नहीं। आजकल जापानी कारीगर चीन में उद्भूत भीष्ममणि को अधिक पसन्द करने लगे हैं अतएव अधिकांश कच्चामाल चीन से खरीदते हैं।

८. अमेरिका की 'प्राकृतिक इति वृत्त-प्रदर्शनी' (Inuseum of natural history) में तीन भीष्ममणि-कन्दुक रखे हुये हैं। इनका नाप ५॥ इंच से ६॥ इंच गोल वृत्ताकार है। इनका निर्माण 'कलावरेस कम्पनी' केलिफोर्निया ने किया है।

९. वर्मी लोग नवरत्न की अँगूठी में हीरे के स्थान में भीष्ममणि को हीरे से कहीं अधिक विश्वास और श्रद्धा से मढ़वाते हैं।

१०. जापानी इसके ताबीज़ भी अपने बच्चों को पहनाते हैं। भीष्ममणि के ताबीज़ को जापानी भाषा में 'मागात्मा' (Magatama) कहा जाता है। डाक्टर बेल्ज़ (Dr. Bealz) का कथन है कि भीष्ममणि के स्वस्तिक जर्मन, जापान, चीन, भारत आदि बहुत से देशों में अतीव प्राचीन समय से उपयोग में आ रहे हैं।

११. पाश्चात्य एवं प्राच्य ज्योतिर्विदों का कथन है कि सोमवार आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुसन्धानात्मक कार्यों में प्रवृत्त होने का दिन है (Monday for the works of divi nation and mystery) आज के दिन मुक्ता अथवा भीष्ममणि की तीन लड़ियों की माला पहननी चाहिये।

१२. डाक्टर जेरोम (Jerome) ने 'ओपेरा ओम्निया' (Opera omnia ओम्निया 1865) नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि प्लिनी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मैं भीष्ममणि के एक कक्ष में घुसा तो मुझे ऐसा शीत अनुभव हुआ कि मैं मानो किसी पहाड़ की गुफा में प्रवेश कर गया हूँ और जब मैंने दीवाल को हाथों से स्पर्श किया तो ऐसा अनुभव हुआ मानो मैं अपने नेत्रों को शीतल जल का स्पर्श करा रहा हूँ। आगे उल्लेख किया गया

है कि इस प्रस्तर की खोज में अपने लिये कई पर्वतीय स्थानों में लगा रहा और मैंने बहुत से Rocki-crystals प्राप्त भी किये। इन्हीं संगृहीत भीष्म-मणियों में से अधिकांश प्रस्तरों को चर्च की, खिड़कियों में लगाने के लिये दान रूप में दे डाले। उसका विश्वास था कि इन खिड़कियों से संस्पर्शित वायु शीतल होकर प्रार्थियों को प्रार्थना करते समय सुख पहुँचावेगी।

१३. ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन में भीष्ममणि का बनाया हुआ एक मनुष्य की खोपड़ी की अस्थिपंजर आकृति बनी हुई है। यह वजन में ४७५½ औंस अर्थात् २९ पौंड ९½ औंस है और ¼ इञ्च वृत्ताकार में है। इसकी कीमत लगभग १० लाख रुपया कूती गई है।

पाश्चात्त्यमतानुसार—

१४. इस भीष्ममणि का सम्बन्ध मेषराशि (Aries) से तथा ग्रहों में चन्द्रमा (Moon) से है। प्राच्य ज्योतिष के अनुसार इसे मोती के अभाव में माना जा सकता है।

१५. पुराणों में 'ईश्वरीय माया के तालाब' का वर्णन आता है, वह इसी भीष्ममणि के द्वारा निर्मित बताया गया है। इस माया के तालाब की तली में मोती बताये गये हैं। यथार्थतः इसमें पानी नहीं है परन्तु भीष्ममणि के कारण ही यह तालाब पानी से भरा हुआ मालूम देता है।

रुधिराख्यमणि (सुनहला—Carnelian—कारनेलियन)

उत्पत्तिस्थान—रुधिराख्यमणि एक स्फटिक का ही प्रकार है। इस रत्न की उपलब्धि मुख्यतः दक्षिणभारत के कृष्णा, गोदावरी और भीमा नदियों के मूल उद्गमस्थानों में एवं इन नदियों की सिकताकणों तथा बड़े प्रस्तरों में होती है। जबलपुर के पार्श्ववर्ती अञ्चलों में नर्मदा के प्रस्तरों में भी उच्चकोटि का रुधिराख्य प्राप्त होता है। बम्बई प्रान्त के राजपीपला स्थान से भी यह रत्न प्राप्त यदा-कदा हो जाया करते हैं।

इस रत्न का मुख्य बाजार केम्बे—बम्बई प्रान्त है। इसी स्थान से यूरोप और चीन के लिये निर्यात होता है।

'रत्नपरीक्षा' कार के कथनानुसार अधोलिखित मुख्य स्थान माने गये हैं—

सिन्ध विन्ध हिमले नदि सपरा, होत समैगत देसहु अपरा।

सिन्धु नदी, विन्ध्याचल पर्वत, हिमालय और चिप्रा नदी में रुधिराख्य (सुनैका) मणि प्राप्त होता है इसके अलावा दूसरे देश यानी विदेशों में भी यह रत्न प्राप्त होता है।

'युक्तिकल्पतरु'कार राजा भोज ने रुधिराख्य का मुख्य उद्भवस्थान—

'नर्मदायां निचिक्षेप किंचिद्धीनादि भूतले।' (अग्निपुराणे)

अर्थात् नर्मदा नदी से उपलब्ध रुधिराख्यमणि उत्कृष्ट है। दूसरे स्थानों से प्राप्त यह रत्न कुछ हीन कोटि का होता है। विदेशों में इजिप्ट, आयरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, स्काटलैण्ड आदि स्थानों में भी पाया जाता है। परन्तु उत्तम श्रेणी का नहीं होता।

रूप, रंग और लक्षण—

तच्चेन्द्रगोपकलितं शुकवक्त्रवर्णं, संस्थानतः प्रकटपीलुसमानमात्रम्।
नानाप्रकारविहितं रुधिराख्यरत्नं, उद्धृत्य तस्य खलु सर्वसमानमेव॥
मध्येन्दुपाण्डुरमतीव विशुद्धवर्णं, तच्चेन्द्रनीलसदृशं पटलादिकं स्यात्।
पक्वञ्च तत् किल भवेत् सुरवज्रवर्णम्, (युक्तिकल्पतरु)

इन्द्रगोप (बीरबहूटी) के समान अर्थात् दीप्तियुक्त मखमली अरुण वर्ण या तोते की चोंच के समान अर्थात् फीका लालरंग (प्रवाल—मूंगे के रंग के समान), पीलुपुष्प (Blown-flower) के समान रंगवाला रुधिराख्य होता है। इसके अलावा अनेकों रंगों का भी हो सकता है। जिस रुधिराख्य के मध्य में चन्द्रमा के समान श्वेत पीताभायुक्त एवं आसपास इन्द्रनील के समान रंग हो उसे उत्तम श्रेणी का मानना चाहिये। परिपक्व रुधिराख्य का वर्ण इन्द्रवज्र (विद्युत्) के समान दीप्तियुक्त होता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक रुधिराख्यमणि को स्फटिकवर्ग (Qwartz group) के अन्तर्गत मानते हैं। इसका रंग यकृत् (Liver) के समान कृष्णारुण, लोहितारुण (Brownish–Red) अथवा श्वेतपीताभ भी हो सकता है। यह धूम्रवत् (Cloudy) या मधूच्छिष्ट (मोम—Waxy) वर्ण एवं अर्धपारदर्शक होता है। इसकी कठोरता स्फटिक वर्ग के अन्तर्गत कैल्सेडोनी कला के प्रस्तरों से कुछ ही कम होती है। सूर्य की प्रखर रश्मियों में यदि इसे रखा जावे तो इसका रंग और भी प्रदीप्तिमय हो उठता है। यदि इसे अग्नितप्त किया जाता है तो यह श्वेतपीताभ हो जाता है।

आधुनिक रत्नवैज्ञानिकों ने रुधिराख्य का वर्णानुसार ६ भागों में विभाजन किया है।

(१) (Mase or carnelian of old store—यह प्रकार प्रगाढ़ अरुण (Dark–Red) होता है।

(२) Fem–Carnelian—यह पीतारुण (Pale–Red) होता है।

(३) Sarder carnelian—

(४) Sardonyx Carnelian—

(५) Carnelian onyx—

(६) Carnelian Beryl—

शब्दात्मक व्याख्या—विश्वप्रसिद्ध इतिवृत्तवेत्ता प्लीनि के कथनानुसार Carnelian को प्राचीन समय में Sardius (सारडियस) कहा जाता था। सारडिस (Sardis) नामक स्थान था जो कि एशिया माइनर के अन्तर्गत एक छोटा सा ग्राम था—इस स्थान से यह उपरत्न सर्वप्रथम उपलब्ध हुआ था अतएव इसका नाम भी Sardius रखा गया। अरबियन भाषा में Sard शब्द का उपयोग पीत या पीतारुण (yellowish-Red) अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इस आधार पर विद्वानों का यह अनुमान है कि अरब में इस उपरत्न का विशेष महत्त्व होने से इसी शब्द के आधार पर प्रचलन होता रहा। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसका नाम फ्रेंच भाषा के आधार पर कारनेलियन Carnelian रखा। इस शब्द का भी अर्थ पीतारुण होता है। पौराणिक काल का शब्द 'रुधिराख्य' भी रक्त या प्रगाढ़ अरुण अर्थ का ही द्योतक है। भारतीय जौहरी प्रगाढ़ अरुण वर्ण के रुधिराख्यमणि को विशेष महत्त्व देते आ रहे हैं।

ज्योतिषशास्त्र और रुधिराख्य—भारतीय ज्योतिषी रुधिराख्य अर्थात् संग सुनैला को पुखराज का उपरत्न मानते हैं। पीतारुण वर्ण सुनैला पुखराज के अभाव में अँगूठी में मढ़वाकर पहनना बृहस्पति की अनुकूलता प्राप्त करने के हेतु साधारणतः श्रेष्ठ समझा जाता है। सुनैला के समान ही पुखराज के संग तृणकान्त (कहरुवा), संग घिया कपूर (घृतकर्पूर) और संग स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी) भी उपरत्न हैं।

पाश्चात्य ज्योतिषी किरो ने भी कारनेलियन को बृहस्पति की प्रकोपावस्था में धारण करने की सलाह दी है।

वैज्ञानिक सारिणी—

रासायनिक विश्लेषण—रुधिराख्य मणि मूलतः दो तत्त्वों का यौगिक है। लोहांश (क्रोमियम) की मात्रा भी यत्किंचित् रहने के परिणाम स्वरूप उसमें अरुण वर्णाढ्यता अल्प या प्रगाढ़ होती है। इसका रासायनिक सूत्र स्फटिक वर्ग के ही अनुसार SiO_2 है। अर्थात् सिकता और ओषजन प्रमुख तत्त्व हैं।

कठोरता (H.)	६.८ से ७.०
आपेक्षिक गुरुत्व—(S. G.)	२.७
वर्तनांक (R. I.)	१.५५
द्विवर्तनांक (D. R. I.)	०.००९ से ०.०१३

प्रभाव और चिकित्सोपयोग—

(१) रुधिराख्य मणि या कारनेलियन का उपयोग भारत एवं इंगलैण्ड की अपेक्षा जर्मन तथा पोलैण्ड की जनता विशेष विश्वास के साथ करती आ

रही है। लोहितारुण वर्ण (Blood-Red) के रुधिराख्य के प्रति विश्वास अधिक होता है। पीतारुण वर्ण (Pale-Red) का उपयोग कम होता है।

(२) युक्ति कल्पतरु के रचयिता राजा भोज ने उल्लेख किया है कि रुधिराख्य के धारण से—'सैश्वर्य्यंभृत्यजननं कथितं तदैव' अर्थात् ऐश्वर्य्य और नौकर-चाकरों की वृद्धि होती है।

(३) चिकित्सा शास्त्र में रुधिराख्य का प्रयोग मुख्यतः अर्बुद (Tumours) के लिये एवं लोहशस्त्रों द्वारा हुए क्षत स्थानों के लिये होता है। यह कैन्सर या क्षतस्थानों से बहते हुये रक्त को रोकने के लिये एक महत्त्वपूर्ण और आश्चर्यजनक द्रव्य माना गया है।

(४) डा० डी. लेट. (Dr. D. Leat) नामक विद्वान् का स्वानुभव के आधार पर कथन है कि रुधिराख्य का उपयोग भस्म के रूप में लेने से नासिका से रक्तस्राव बन्द होता है। उसने लिखा है कि ११वीं शताब्दी में इसका उपयोग निस्रोत ग्रंथियों (Duct less-glands) के आभ्यन्तरीय उद्रेचन को ठीक-ठीक संतुलित रखने में होता था। इस 'निस्रोत' ग्रन्थियों के उद्रेचन को सम्प्रति चिकित्सा विज्ञान में 'हारमोन्स थ्योरी' कहा जाता है। रुधिराख्य मणि भस्म का उपयोग संक्रामक व्याधियों में भी उत्कृष्ट माना गया है।

डाक्टर डी. लेट (Dr. D. Leat) का यह भी कथन है कि इस रत्न की अँगूठी धारण करने से भी रक्तस्राव बन्द होता है। इटालियन रक्तस्राव बन्द करने के लिये ही अँगूठी पहनते हैं।

(५) अल्फोन्सा लेवेडिओरी ने उन व्यक्तियों के लिये इस रत्न को धारण करने की सलाह दी है जिनकी वक्तृत्व शक्ति कम या आवाज में अस्पष्टता हो।

(६) 'दी क्यूरियस लोर ऑफ दी प्रेसस् स्टोन' के लेखक का कथन है कि 'इस बात में कोई सन्देह नहीं कि सुनैला (कारनेलियन) सर्वप्रथम आभूषणों में एवं इस प्रस्तर पर धार्मिक तथा आदर्श वाक्यों की खुदाई करके पूजन करने का विधान मिश्र में पुराने जमाने से चला आ रहा है। मिश्र-वासी सुनैला को रक्त पर प्रभाव डालने वाला रत्न मानते हैं। यदि इस रत्न को सतत पहना जाय तो स्वयं के क्रोधमय जीवन को अथवा अपने उच्च अधिकारी के क्रोध को शान्त किया जा सकता है।

(७) सुनैला पर ग्रहों की आकृति खुदवाकर पहनने से सामाजिक सम्मान प्राप्त होता है—यह धारणा ग्रीक और रोमन संस्कृति के ग्रन्थों में उल्लिखित है।

(८) डा० बीरुक्ष का कथन है कि सुनैला पर स्वस्तिक चिह्न खुदवा-कर पहनने से रक्त की गर्मी शान्त होकर धार्मिक विश्वास बढ़ता है। लड़ाकू प्रवृत्ति नष्ट होती है।

बाजार में आने से पूर्व—रुधिराख्यमणि (Carnelian) स्फटिक वर्ग (Zwart 1group) के अन्तर्गत गुप्त मणिभ प्रकार (Crypto–Crystalline varieties) है। खनिजावस्था में यह धारीहीन मन्द अरुणाभायुक्त थोड़ा बादामी रंग लिये हुये अथवा किंचित् पंकाभा लिये हुए होता है। आभूषणों के लिये एवं मन्दिर, मसजिद, महलों तथा मूर्तियों के निर्माण में इस रत्न का बहुविध उपयोग प्राचीन समय से ही होता आ रहा है। इस रत्न को समुज्ज्वल बनाने के लिये सर्वप्रथम प्रखर सूर्य-किरणों के नीचे लगभग १५–२० दिनों तक रखा जाता है। तत्पश्चात् मिट्टी के बड़े-बड़े कुण्डों में मृदु गन्धकाम्ल (Sulphuric acid dill) में डुबाकर सुदृढ़ सन्धान कर दिया जाता है। एक सप्ताह बाद सन्धान हटाकर मन्द मन्द आँच दी जाती है। तत्पश्चात् निकालकर शीतोदक और उष्णोदक में क्रमशः एक-एक दिन भली-भाँति प्रक्षालन करके और फिर सूर्यरश्मियों में सुखाकर अधिकाधिक समुज्ज्वलता लाने के लिये चतुर हक्काक रुधिराख्यमणि की गुप्त मणिभता (Crypto–Crystalline) का विचार रखते हुये पॉलिश करते हैं। इसके बाद बाजार में लाया जाता है।

पोलिश किये गये रुधिराख्य मणियों को ही चिकित्सा कार्य में लेना उत्तम होता है। परन्तु पॉलिश्ड रत्न महंगे पड़ते हैं। अतएव चिकित्सक चाहें तो खनिजावस्था के ही रत्नों का शोधन शास्त्रीय विधि से करके पश्चात् पिष्टीकरण या भस्मीकरण करना प्रत्येक दृष्टि से उपादेय होगा।

शोधन-मारण—रुधिराख्यमणि का शोधन एवं भस्मीकरण राजावर्त के समान ही करना चाहिये।

चिकित्सार्थ उपयोग—यह स्फटिकमणि (Qwartz) का एक प्रकार है अतएव इसके भी गुण स्फटिक के समान हैं। मुख्यतः इसका प्रयोग रक्तपित्त रोग में एवं ज्वर विशेषतः पित्तज्वर में पिपासाधिक्य हो रुधिराख्यमणि की पिष्टी २ से ४ रत्ती की मात्रा में देना सद्यः लाभप्रद है।



दुग्धपाषाण : इन्द्रधनुष पाषाण

(Opal)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—दुग्धपापाणिका, क्षीरी, माधवी और मेदसन्निभा । हिन्दी, बंगला, मराठी—शिरगोला । गुजराती—दुधियोपाणी । करनाटकी । रंगवालिय हरेल्लु । अंग्रेज़ी—ओपल (Opal) ।

उद्गमस्थान—इसका प्रधान उद्गमस्थान हँगरी है । जारवेनिजा, और कास्को भी प्रसिद्ध हैं । अधिक चमकदार और कीमती दुग्धपाषाण क्रेमनीज़ (Kremnitz) और डबनीक (Dubnik) स्थानों से आते हैं । हण्डूरस (Hunduras) के भी दुग्धपाषाण कीमती होते हैं । यहाँ ज्वालामुखी पर्वत शिलाओं में अधिक पाये जाते हैं । अमेरिकन दुग्धपाषाणों की अपेक्षा हंगरी के दुग्धपाषाण अधिक चमकदार होते हैं । सबसे बड़ा और बहुमूल्य दुग्धपाषाण अभी कुछ ही वर्ष पूर्व क्वीन्स लैण्ड (Queen's land) की पर्वतशिला में पाया गया है ।

लक्षण—दुग्धपाषाण वह रत्न है जिसमें कि इन्द्रधनुष के समान बहुरङ्ग प्रतिभासित होते हैं । इसको एक स्थान से देखने से एक रङ्ग की किरण और दूसरे स्थान से देखने से दूसरे रङ्ग की किरण तथा इसी प्रकार से अन्यान्य स्थानों से देखने पर अन्यान्य रंगों की किरणें दिखाई देती हैं । यदि इसे जल्दी जल्दी घुमाते हुये देखा जाय तो एक साथ बहुरंगिता दिखाई देती है । यह विशेषता इसकी मूलतः खनिज विशेषता नहीं है बल्कि इसकी प्राकृतिक बनावट में विशेषता है । चक्षु और प्रकाश के परस्पर सहयोग से जितने भी रंग दिखाई देते हैं उतने ही रंग इस रत्न से भी प्रतिभासित होते हैं । इसी विचित्रता के कारण लोग इसे बहुत अधिक पसन्द करते हैं । यूरोपियन एवं अमेरिकन महिलायें इसे अपने आभूषणों में अधिक चाव से मढ़वाती हैं ।

गुणधर्म—

दुग्धपाषाणको रुच्य ईषदुष्णो ज्वरापहः ।

अर्थात्—दुग्धपाषाण स्वादको बढ़ाने वाला, कुछ गरम और ज्वर को नष्ट करनेवाला होता है ।

रासायनिक संगठन (Chemical Composition)

रासायनिक सूत्र—$SiO_2 + nH_2O$।

अर्थात् दुग्ध पाषाण सिलिका आक्साइड और जल मिश्रित आभा युक्त एक यौगिक प्रस्तर है।

प्रकार—रत्न-वैज्ञानिकों ने दुग्धपाषाण को चार प्रकार का माना है।

(१) श्वेत दुग्धपाषाण (White-opal)।
(२) कृष्ण दुग्धपाषाण (Black-opal)।
(३) अग्नि गर्भ-दुग्धपाषाण (Fire-opal)।
(४) नीरदुग्ध पाषाण (Water-opal)।

१. श्वेत-दुग्ध-पाषाण (White-opal) इसका रंग किंचित् पीत-कृष्णाभायुक्त बहुरंगितामय श्वेत रंग प्रधानता लिये हुए होता है। यह पारभासक होता है। इसकी कठोरता (Hardness) ६।

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २.१।
आवर्तनांक (R. I.) १.४५ होता है।

२. कृष्ण-दुग्ध-पाषाण (Black-opal)—इसका रंग किंचित् कृष्णाभायुक्त बहुरंगितामय होते हुये अधोपृष्ठ कृष्णवर्ण प्रधानता लिये हुये होता है। इसकी कठोरता (Hardness)—६।

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २.१ और
आवर्तनांक (R. I.) १.४५ होता है।

३. अग्निगर्भ-दुग्धपाषाण (Fire-opal) इसका रंग उज्ज्वमय प्रकाश युक्त अग्नि वर्ण-संतरे के रंग के समान पीतारुण आभा लिये हुए होता है। जिसभी दुग्धपाषाण में स्पष्टतः बहुरंगिता लिये हुये नील-लोहित, हरित् अथवा श्वेताभायुक्त उज्ज्वलमय चमकदमक होती है उसे बहुमूल्य-दुग्धपाषाण (Precious-opal) कहते हैं। इसकी कठोरता (Hardness) ६—

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २.००।
आवर्तनांक (R. I.) १.४५ होता है।

४. नीर-दुग्ध-पाषाण (Water-opal) इसका रंग बहुरंगिता के साथ साथ रंगरहित जलवत् श्वेत आभा की प्रधानता रहते हुये प्रकाशयुक्त होता है। इसकी कठोरता (Hardness)—६

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २.००।
आवर्तनांक (R. I.) १.४५ होता है।

गोमेद का विविध प्रकार

(१) चन्द्रकान्त (Moon Stone)

यह गोमेद का प्रथम गुप्त-स्फटिकीय प्रकार है। इसका रंग चमकदार पीताभायुक्त हरिद् वर्ण होता है। इसकी कठोरता ७ और आपेक्षिक गुरुत्व २.६ है। आवर्तनांक १.५३ है। यह पारभासक होता है।

चन्द्रकान्तमणिः शीतः स्निग्धः स्वच्छः शिवः प्रियः।
अस्रदाह - प्रहालक्ष्मी - नाशनोऽयं निरन्तरम् ॥

अर्थात्—चन्द्रकान्त स्पर्श करने से शीतल, सुचिक्कण और स्वच्छ होता है। यह शिव को प्रिय होता है। यह रक्तस्राव, दाह और दरिद्रता का नाश करता है।

(२) रक्तमणि (Blood Stone)—यह गोमेद का द्वितीय गुप्त स्फटिकीय प्रकार है। इसका रंग काला-हरा अथवा नीलवर्ण होता है। या प्रगाढ़ नील वर्ण भी होता है। कभी-कभी दो-तीन रंगों की मिश्रित आभायुक्त भी होता है। इसमें विशेषता यही होती है कि इसके बीच-बीच में लाल-लाल रंग की खून की बूँदों के समान बिन्दु रहती हैं। पालिश हो जाने पर ये रक्त-वर्ण बिन्दु बहुत ही सुन्दर मालूम होती हैं। इसकी कठोरता ७ और आपेक्षिक गुरुत्व २.६ है। आवर्तनांक १.५३ होता है। यह अर्ध पारभासक होता है।

(३) संगयशब-संगसुलेमानी (Onyx)—यह गोमेद का तृतीय गुप्त-स्फटिकीय प्रकार है। इसमें समानान्तर रूप में कई एक रंग के कई एक स्तर नहीं होते। इस प्रकार में विशेषतः काले और सफेद रंग के स्तर होते हैं। यह अर्ध पारभासक तथा पारभासक होता है।

इसकी कठोरता ७ और आपेक्षिक गुरुत्व २.६१ है। आवर्तनांक १.५३ होता है।

कृष्ण-संगयशब (Black-onyx) जब कृष्णाभायुक्त संगयशब होता है तो उसका नाम 'कृष्ण संगयशब' कहा जाता है। इसकी भी कठोरता, आपेक्षिक गुरुत्व एवं आवर्तनांक संगयशब के समान ही है।

(४) अरुण संगयशब (संगे सुलेमानी सुर्ख) (Sard-onyx) यह गोमेद का चतुर्थ गुप्त स्फटिकीय प्रकार है। इसका रंग अरुणाभा लिए हुए बादामी रङ्ग मिश्रित होता है। इसका रङ्ग ठीक उसी प्रकार होता है जैसा कि मनुष्यों के मांसयुक्त नख का होता है अर्थात् अरुणाभा युक्त बादामी सफेद रंग मिश्रित। जब किसी संगयशब में कृष्णाभा के साथ साथ सफेदी की भी एक लाइन दिखाई देती है तो उसका रंग कुछ नीलिमा युक्त भान होता है। इसका नाम आजकल के रत्न—वैज्ञानिकों ने 'निकोलो'

(Nicolo) रखा है जो कि इटालियन शब्द 'ओनिकोलो' (Onicolo) का अपभ्रंश मात्र है। 'ओनिकोलो' का अर्थ होता है 'लघु संगयशब' (Little-onyx)। इसकी कठोरता, आपेक्षिक गुरुत्व एवं आवर्तनांक संगयशब के समान ही है। यह अर्धपारभासक तथा पारभासक भी हो सकता है।

(५) सूर्यकान्त (Jasper) यह गोमेद का पञ्चम गुप्त स्फटिकीय प्रकार है। इसका रंग सूर्य के समान ललाई लिये हुए बादामी रंग का होता है। अथवा केवल अरुणाभा लिए हुये या फिर केवल बादामी रंग का ही होता है। अरुणाभायुक्त सूर्यकान्त में लौह पेराक्साइड (Per oxide of Iron) का अंश अधिक होता है। तथा बादामी रंग वाले में लौह आक्साइड (Oxide of Iron) का अंश अधिक होता है। यदि रंग धारीदार हो तो उसे 'राइ बैण्ड जेस्पर' (Riband Gasper) कहा जाता है और यदि बादामी रंग विभिन्न दिशाओं में रेखायें हों तो उसे 'मिश्रदेशीय जेस्पर' (Egyptian Gasper) कहा जाता है। इसकी कठोरता, आपेक्षिक गुरुत्व एवं आवर्तनांक संग यशब के समान ही है। यह अर्ध पारभासक होता है।

आरोग्यसागरो रसः—

एकैकपलगन्धाश्मरससंभवकज्जलीम्।
तस्य मध्ये द्विपलिकं तार्क्ष्यं तालं पलोन्मितम्॥
पलमात्रां मनोह्वां च पलमभ्रकभस्मकम्।
सुखस्पर्शस्य कर्षं च निक्षिप्य परिमर्द्य च॥
मूषामध्ये विनिक्षिप्य पिनद्धांतमुखीं ततः।
पत्रेण शुद्धताम्रस्य निर्मलेन त्रिकर्षिणा॥
मूषां मृद्भिः सवस्त्राभिः परिरुध्य यथादृढम्।
परिशोष्य गिरिण्डैश्च पुटेद् गजपुटेन हि॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खोटीभूतं विचूर्णयेत्।
गन्धतालशिलाचूर्णैः सहितं खल्वचूर्णकम्॥
पुटेत् क्रोडपुटे चैव दशवारं ततः परम्।
क्षिपेद्विंशतिभागेन वैक्रान्तं भस्मतां गतम्॥
विमर्द्य गालितं कृत्वा क्षिपेद्रौप्यकरण्डके।
आरोग्यसागरो नाम रसोऽतिगुणवत्तरः॥
हन्यात्पाण्डुमरोचकं गुदगदं वातं च पित्तं कफं
गुल्माध्मानकशोफरोगमथ च श्वासं शिरोर्तिं वमिम्।

अत्यर्थानलमन्दतां गुरुमुदावर्तं विचित्रज्वरान् ।
रोगानप्यपरान् द्विरक्तिप्रमितः सूतो मरीचाज्यवान् ॥
(रसरत्नसमुच्चय)

पारदगंधक ५-५ तोला लेकर कज्जली तैयार कर लें। इस कज्जली में स्वर्णमाक्षिक भस्म १० तोला, हरतालभस्म ५ तोला, मैनसिल और अभ्रक भस्म ५-५ तोला, स्फटिक मणि भस्म १। तोला मिलालें और सबको एक दिल करलें तथा मूषा में बन्द करके मूषा का मुख बन्द करने के लिये ३॥। तोला के तांबे के मोटे पत्र को काम में लावें। अब इस पत्र को कपड़मिट्टी करके गज-पुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर पीस लें और इसमें गंधक, हरताल और मैनसिलभस्म ५-५ तोला मिलाकर वराह पुट में १० बार फूंके। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य पीसकर इसमें समस्त औषध द्रव्य का $\frac{1}{10}$ भाग वैक्रान्त भस्म मिला लें और खूब श्लक्ष्ण चूर्ण बना-कर कपड़छन कर लें तथा सुरक्षित रख दें।

सेवन—इस रस को काली मिर्च और घृत के साथ सेवन करने से पाण्डु, अरुचि, गुदारोग, वात, पित्त और कफ सम्बन्धी समस्त रोग, गुल्म, आध्मान, शोथ, श्वास, मस्तकशूल, वमन, अग्नि की मन्दता, उदावर्त, समस्त ज्वर एवं अन्यान्य समस्त रोग नष्ट होते हैं।

नागररसायनम्—

एवं नागोद्भवं भस्म ताप्यमस्यार्धभागिकम् ।
पादं पादं क्षिपेद्भस्म शुल्वस्य विमलस्य च ॥
कान्ताभ्रसत्त्वयोश्चापि स्फटिकस्य पृथक् पृथक् ।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य पुटेत् त्रिफलवारिणा ॥
त्रिंशद्वनगिरिण्डैश्च त्रिंशद्वारं विचूर्ण्य च ।
व्योषवेल्लकचूर्णैश्च समांशैः सह मेलयेत् ॥
मध्वाज्यसहितं हन्ति प्रलीढं वल्लमात्रया ।
अशीतिवातजान् रोगान् धनुर्वातं विशेषतः ॥
कफरोगानशेषांश्च मूत्ररोगांश्च सर्वशः ।
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं श्वयथुं शीतकज्वरम् ॥
ग्रहणीमामदोषञ्च वह्निमान्द्यं सुदुर्जयम् ।
सर्वाञ्जुदकदोषांश्च तत्तद्रोगानुपानतः ॥
(रसरत्नसमुच्चय)

सीसा और स्वर्णमाक्षिक भस्म २-२ भाग, ताम्र, रौप्यमाक्षिक, कान्तलोह

अभ्रक और स्फटिक मणिभस्म १-१ भाग—इन सबों को मिलाकर त्रिफला क्वाथ की एक दिन तक भावना देकर टिकिया बना लें और शरावसम्पुट में बन्द करके ३० उपलों में फूंक दें। इस प्रकार ३० वार फूंकें। स्वांग-शीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर पीस लें और इसमें सोंठ, मिरच, पीपल तथा वायविडंग का चूर्ण (सम्मिलित) समस्त औषध द्रव्य के बराबर मिला लें और सुरक्षित रख दें।

सेवन—३ रत्ती की मात्रा में इस रस को मधु और घृत के साथ सेवन करने से ८० प्रकार वात रोग, मुख्यतः धनुर्वात (Tetanus) रोग नष्ट होता है। इसके अलावा समस्त कफरोग, मूत्र रोग, कास, श्वास, क्षय, पाण्डु, शोथ, शीतज्वर, संग्रहणी, आमदोष, अग्निमांद्य तथा जलोदरादि रोग नष्ट होते हैं।

दृष्टिप्रदमञ्जनम्—

सौवीरं सीसकं ताम्रभस्म वंगं च मौक्तिकम्।
काचं च रसकं शङ्खनाभिस्यन्दं कुलत्थिका॥
मेहदीवीजकस्तूरीकर्पूरं च समं समम्।
अञ्जनं नेत्ररोगेषु दृष्टिरोगेषु सर्वशः॥ (रसकामधेनु)

सौवीरांजन, सीसा, ताम्र, वंग, मोती, काच, खर्पर और शंख, नाभिभस्म, कुलथी, मेंहदी के बीज, कस्तूरी और कर्पूर समान मात्रा में लेकर अञ्जन बना लें।

सेवन—नेत्र-सम्बन्धी समस्त रोगों में इस अञ्जन का उपयोग किया जा सकता है।

पाश्चात्य विचारानुसार-स्फटिक (Qwartz) के कुछ और भी प्रकार

जेड (Jade)

पारभासक अथवा अपारदर्शक होते हुए भी जेड तथा उसके प्रकार बहुत ही सुन्दर तथा आभायुक्त होते हैं। आधुनिक खनिज वैज्ञानिकों ने जेड के दो प्रकार माने हैं। प्रथम 'जेडाइट' (Jadite) जिसे 'चायनीज' जेड भी कहा जाता है और द्वितीय 'नेफ्राइट' (Nephrite) जिसे 'न्यूजीलैण्ड जेड' भी कहा जाता है। जेड विशेषकर चीनी लोगों का बहुत ही प्रिय रत्न है। इस प्रस्तर पर वे लोग तरह-तरह की नक्काशी करते हैं। छोटे-छोटे प्याले बनवाकर उन्हें शराब व अन्य पेय पदार्थों के पान करने के व्यवहार में लाते हैं। स्त्रियों के लिये माला के दाने बनवाकर आभूषण रूप में बड़े ही चाव के साथ उपयोग में आता है। चीन में बहुत प्राचीन समय तक जेड की माला

वही पहन सकता था जो कि राजा होता था। अन्य व्यक्ति चाहे जितना भी आर्थिक दृष्टि से चाहे जितना भी साधन सम्पन्न हो उसे जेड की माला पहनने का अधिकार नहीं होता था परन्तु यह बात लगभग ४-५ शताब्दी से नहीं है। जेड का चीनी नाम 'Feitsui' है जिसका कि अर्थ एक प्रकार की हरित् वर्ण की सुन्दर चिड़िया का पंख (King fisher Plumes) होता है। इसका एक और 'इम्पीरियल जेड' नाम भी है। चीन में जेड के विषय में एक ऐसी धारणा अथवा विश्वास है कि जेड की माला अथवा मुद्रिका पहन कर विवाह से पूर्व अपनी प्रेमिका से बातचीत करने से वह अवश्य ही आकर्षित होकर विवाह कर लेती है। दाम्पत्य सुख अभिलाषा से स्त्री-पुरुष जेड का उपयोग करते हैं। स्त्रियाँ 'मधुमक्षिका' की आकृति का जेड बनवाकर सेफ्टीपिन के रूप में साड़ियों अथवा बालों में लगाती हैं। बच्चों को जेड के ताबीज गले में पहनाने से उन्हें किसी भी प्रकार की बीमारी का भय नहीं रहता। बौद्ध धर्मावलम्बी लोग जेड को महात्मा बुद्ध-प्रदत्त एक आशीर्वादात्मक रत्न समझते हैं। जेड की महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ काफी पाई जाती हैं। बीमारी के समय जेड के टुकड़े या दाने को पानी के पात्र में डाल दिया जाता है और उस पानी को रोगी को पिलाया जाता है। चीनी लोगों की यह ध्रुव धारणा रहती है कि स्वयं बुद्ध रोगी की चिकित्सा कर रहे हैं और वह निश्चित लाभ प्राप्त करेगा।

चीनी लोग अपने नेताओं की स्टेच्यु प्राचीन समय जेड का ही बनवाते थे। न्यूयार्क के The metropolitan museum of arts में जेड के कुछ चैत्य एवं अन्यान्य सामग्री संगृहीत हैं। अभी लगभग ५०-५५ वर्ष ही हुए—मिस्टर सेम्युअल एफ पेटर्स ने उपरोक्त म्यूजियम को जेड की निर्मित वस्तुयें (लगभग २८०) समर्पित की हैं। इनमें कुछ तो बहुत ही कीमती आकर्षित वस्तुयें हैं और कुछ साधारण नीलाभायुक्त अथवा लोहितवर्ण लिए हुए श्वेतवर्ण की कम कीमती वस्तुएं हैं। पुरातत्त्व वेत्ताओं का कथन है कि यह सामग्री बहुत ही प्राचीन और इतिवृत्त की परम्परा को सिद्ध करने वाली हैं। उपर्युक्त संस्था से 'Invenstigation and Studies in jade नामक सचित्र पत्रक १९०६ में प्रकाशित हुआ है और वह प्रत्येक माननीय प्रामाणिक प्रदर्शिनियों में भेज दिया गया है।

जेड के मुख्यतः दो भेद हैं। १. नेफ्राइट और २. जेडाइट। वैसे तो ये दोनों ऊपरी तरह से देखने पर रूप रंग में सामान्यतः समान ही प्रतीत होते हैं। परन्तु रासायनिक तत्त्वों की दृष्टि से इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। नेफ्राइट—मैगनेसियम और कैल्सियम तथा कुछ अंश लोहे को लेते हुए सिलिकेट

है। और जेडाइट केवल सोडियम और अल्युमीनियम का सिलिकेट है।

नेफ्राइट (Nephrite)—यह एक एम्फीबौल वर्ग (Amphibole Group) की शिलाओं में पाया जानेवाला खनिज है। नेफ्राइट के रवे छोटे, नत और सघनावस्था (Compact) में होते हैं। नेफ्राइट के रवे और एस्वेस्टस के रवों में प्रायः भ्रम हो सकता है परन्तु एस्वेस्टस के रवे लम्बे और पतले बालों के समान सीधे समुदाय बद्धावस्था (Parallel bundles) में पाये जाते हैं। यह कोई अधिक कठोरता वाला खनिज नहीं है। चाकू से आसानी से खरोंचा जा सकता है। परन्तु हथोड़े से आसानी से तोड़ा भी नहीं जा सकता। इसका रंग प्रायः हरित् वर्ण की प्रधानता लिये हुये बहुत प्रकार की आभामयता लिये हुए हो सकता है। यह श्वेत, पीत अथवा अरुण वर्ण भी हो सकता है। यह पारभासक अथवा अपारदर्शक होता है परन्तु इस पर पालिश एवं नक्काशी होने पर ऐसा आभास होता है कि यह पार-भासक ही है।

चीन में नेफ्राइट के बहुत बड़े बड़े संग्रह (Deposits) पृथ्वी में दबे पड़े हैं। परन्तु वहाँ का राजकीय खनिज विभाग इस दिशा में कोई खास दृष्टि नहीं देता। पूर्व तुर्किस्तान में भी इसके बहुत से स्थान हैं। काश्मीर की सीमा पर अवस्थित यारकण्ड के दक्षिण में क्यूनलन (Kuen-lun) पर्वतांचल में भी पर्याप्त मात्रा पाया जाता है। सायबेरिया में ग्रेफाइट की खानियों के पास नेफ्राइट भी पाया जाता है। सायबेरिया की खनियों से उपलब्ध एक प्रगाढ हरित् वर्ण नेफ्राइट जिसका कि वजन लगभग आधा टन है—'ब्रिटिश म्यूजि-यम' के संग्रहालय संगृहीत है। सायबोरिया का एक और नेफ्राइट जिसका कि वजन लगभग २ टन है जर्मन म्यूजियम में भी है। सिलेसिया की खनियों से प्राप्त एक भूरा-हरित् वर्ण नेफ्राइट जिसका की वजन ४७०४ पौंड है—न्यूयार्क के अमेरिकन म्यूजियम में हैं। मैक्सिको और मध्य अमेरिका में काफी समय से नेफ्राइट एवं जेडाइट पाया जाता है।

नेफ्राइट के रवे एक नत (Monoclinic) होते हैं। इसका रासायनिक सूत्र ($H_2 \, Ca_2 \, mg_5 \, (Sio_2)_8$ है। अर्थात् यह कैल्सियम और मैग्नीसियम का सिलिकेट है। इसके अलावा कुछ लोहांश भी पाया जाता है। कुछ जलांश भी पाया जाता है।

कठोरता (Hardness) ३·० से ३·१ तक होता है।

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ६·५ है।

आवर्तनांक (R. I,) १·६० से १·६५ तक होता है।

इसका रंग मुख्यतः श्वेत एवं हरितवर्ण होता है। यह खासकर पूर्वी तुर्किस्तान, सायबेरिया और न्यूजीलैण्ड में पाया जाता है।

वही पहन सकता था जो कि राजा होता था। अन्य व्यक्ति चाहे जितना भी आर्थिक दृष्टि से चाहे जितना भी साधन सम्पन्न हो उसे जेड की माला पहनने का अधिकार नहीं होता था परन्तु यह बात लगभग ४-५ शताब्दी से नहीं है। जेड का चीनी नाम 'Feitsui' है जिसका कि अर्थ एक प्रकार की हरित् वर्ण की सुन्दर चिड़िया का पंख (King fisher Plumes) होता है। इसका एक और 'इम्पीरियल जेड' नाम भी है। चीन में जेड के विषय में एक ऐसी धारणा अथवा विश्वास है कि जेड की माला अथवा मुद्रिका पहन कर विवाह से पूर्व अपनी प्रेमिका से बातचीत करने से वह अवश्य ही आकर्षित होकर विवाह कर लेती है। दाम्पत्य सुख अभिलाषा से स्त्री-पुरुष जेड का उपयोग करते हैं। स्त्रियाँ 'मधुमक्षिका' की आकृति का जेड बनवाकर सेफ्टीपिन के रूप में साड़ियों अथवा बालों में लगाती हैं। बच्चों को जेड के ताबीज गले में पहनाने से उन्हें किसी भी प्रकार की बीमारी का भय नहीं रहता। बौद्ध धर्मावलम्बी लोग जेड को महात्मा बुद्ध-प्रदत्त एक आशीर्वादात्मक_रत्न समझते हैं। जेड की महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ काफी पाई जाती हैं। बीमारी के समय जेड के टुकड़े या दाने को पानी के पात्र में डाल दिया जाता है और उस पानी को रोगी को पिलाया जाता है। चीनी लोगों की यह ध्रुव धारणा रहती है कि स्वयं बुद्ध रोगी की चिकित्सा कर रहे हैं और वह निश्चित लाभ प्राप्त करेगा।

चीनी लोग अपने नेताओं की स्टेच्यु प्राचीन समय जेड का ही बनवाते थे। न्यूयार्क के The metropolitan museum of arts में जेड के कुछ चैत्य एवं अन्यान्य सामग्री संगृहीत हैं। अभी लगभग ५०-५५ वर्ष ही हुए— मिस्टर सेम्युअल एफ पेटर्स ने उपरोक्त म्यूजियम को जेड की निर्मित वस्तुयें (लगभग २८०) समर्पित की हैं। इनमें कुछ तो बहुत ही कीमती आकर्षित वस्तुयें हैं और कुछ साधारण नीलाभायुक्त अथवा लोहितवर्ण लिए हुए श्वेतवर्ण की कम कीमती वस्तुएं हैं। पुरातत्व वेत्ताओं का कथन है कि यह सामग्री बहुत ही प्राचीन और इतिवृत्त की परम्परा को सिद्ध करने वाली हैं। उपर्युक्त संस्था से 'Invenstigation and Studies in jade नामक सचित्र पत्रक १९०६ में प्रकाशित हुआ है और वह प्रत्येक माननीय प्रामाणिक प्रदर्शिनियों में भेज दिया गया है।

जेड के मुख्यतः दो भेद हैं। १. नेफ्राइट और २. जेडाइट। वैसे तो ये दोनों ऊपरी तरह से देखने पर रूप रंग में सामान्यतः समान ही प्रतीत होते हैं। परन्तु रासायनिक तत्वों की दृष्टि से इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। नेफ्राइट—मैगनेसियम और कैल्सियम तथा कुछ अंश लोहे को लेते हुए सिलिकेट

है। और जेडाइट केवल सोडियम और अल्युमीनियम का सिलिकेट है।

नेफ्राइट (Nephrite)—यह एक एम्फीबौल वर्ग (Amphibole Group) की शिलाओं, में पाया जानेवाला खनिज है। नेफ्राइट के रवे छोटे, नत और सघनावस्था (Compact) में होते हैं। नेफ्राइट के रवे और एस्बेस्टस के रवों में प्रायः भ्रम हो सकता है परन्तु एस्बेस्टस के रवे लम्बे और पतले बालों के समान सीधे समुदाय बद्धावस्था (Parallel bundles) में पाये जाते हैं। यह कोई अधिक कठोरता वाला खनिज नहीं है। चाकू से आसानी से खरोंचा जा सकता है। परन्तु हथोड़े से आसानी से तोड़ा भी नहीं जा सकता। इसका रंग प्रायः हरित् वर्ण की प्रधानता लिये हुये बहुत प्रकार की आभामयता लिये हुए हो सकता है। यह श्वेत, पीत अथवा अरुण वर्ण भी हो सकता है। यह पारभासक अथवा अपारदर्शक होता है परन्तु इस पर पालिश एवं नक्काशी होने पर ऐसा आभास होता है कि यह पारभासक ही है।

चीन में नेफ्राइट के बहुत बड़े बड़े संग्रह (Deposits) पृथ्वी में दबे पड़े हैं। परन्तु वहाँ का राजकीय खनिज विभाग इस दिशा में कोई खास दृष्टि नहीं देता। पूर्व तुर्किस्तान में भी इसके बहुत से स्थान हैं। काश्मीर की सीमा पर अवस्थित यारकण्ड के दक्षिण में क्यूनलन (Kuen-lun) पर्वतांचल में भी पर्याप्त मात्रा पाया जाता है। सायबेरिया में ग्रेफाइट की खानियों के पास नेफ्राइट भी पाया जाता है। सायबेरिया की खनियों से उपलब्ध एक प्रगाढ हरित् वर्ण नेफ्राइट जिसका कि वजन लगभग आधा टन है—'ब्रिटिश म्यूजियम' के संग्रहालय संगृहीत है। सायबेरिया का एक और नेफ्राइट जिसका कि वजन लगभग २ टन है जर्मन म्यूजियम में भी है। सिलेसिया की खनियों से प्राप्त एक भूरा-हरित् वर्ण नेफ्राइट जिसका की वजन ४७०४ पौंड है—न्यूयार्क के अमेरिकन म्यूजियम में हैं। मैक्सिको और मध्य अमेरिका में काफी समय से नेफ्राइट एवं जेडाइट पाया जाता है।

नेफ्राइट के रवे एक नत (Monoclinic) होते हैं। इसका रासायनिक सूत्र ($H_2 Ca_2 mg_5 (Sio_2)_8$ है। अर्थात् यह कैल्सियम और मैग्नीसियम का सिलिकेट है। इसके अलावा कुछ लोहांश भी पाया जाता है। कुछ जलांश भी पाया जाता है।

कठोरता (Hardness) ३·० से ३·१ तक होता है।

आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ६·५ है।

आवर्तनांक (R. I,) १·६० से १·६५ तक होता है।

इसका रंग मुख्यतः श्वेत एवं हरितवर्ण होता है। यह खासकर पूर्वी तुर्किस्तान, सायबेरिया और न्यूजीलैण्ड में पाया जाता है।

रूप रङ्ग में यह अधोलिखित खनिकों से भ्रमित हो सकता है। जैसे— एमोजोनाइट, जेडाइट, ग्रासुलराइट, आइडोक्रेन खड़िया मिट्टी (Talk-टाल्क) जवाहरमोहरा (सरपेन्टाइन) स्फटिक (क्वार्ट्ज) इत्यादि।

जेडाइट (Jadeite)—यह एक पायरोक्जीन वर्ग (Pyroxene group) की शिलाओं में पाया जाने वाला खनिज है। १८वीं शताब्दी के मध्य समय तक इस खनिज के लिये 'जेड' (Jade) शब्द ही प्रयुक्त होता था परन्तु जब जेड और नेफ्राइट की रासायनिक परीक्षाओं द्वारा तात्विक विश्लेषण हुआ तब जेड को एक खनिज वर्ग मानकर उसके अन्तर्गत जेडाइट और नेफ्राइट का समावेश किया गया। जेडाइट नितान्त श्वेत पीताभायुक्त हरित् अथवा पन्नावत् प्रगाढ़ हरित होता है। चीनी लोग जेडाइट की रूप रंग और आभा को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं और वे इसकी ऊँची से ऊँची कीमत देकर शीघ्र ही खरीद लेते हैं। चीन में इसकी बहुत अधिक खपत होती है। जेडाइट की खनियाँ चीन में बहुत कम होने के कारण उत्तर बर्मा की खनियों से इसका निर्यात होता है। इसके अलावा पूर्वीय तुर्किस्तान से पर्याप्त मात्रा में जेडाइट का निर्यात होता रहता है। बर्मीज़ और तुर्की लोग इस पर अच्छी नक्काशी करना जानते हैं। चीन के होशियार व्यापारी बर्मा और टर्की से जेडाइट की मालायें, मूर्तियाँ, कप, गिलास और उत्तम उत्तम अँगूठी के नग खरीद कर प्रतिवर्ष ले जाया करते हैं । 'New Geological survey of china' सुना जाता है कि आजकल वही अपनी पुरानी मन्द गति से काम कर रहा है। तथा स्विट्ज़रलैण्ड, इजिप्ट, एसियामायनर, मैक्सिको, मध्य अमेरिका में भी जेडाइट पाया जाता है। परन्तु अधिक परिमाण में निर्यात करने का माद्दा बर्मा ही रखता है। बर्मा के उरु पर्वत अंचल एवं उरु नदी तथा पार्श्ववर्ती स्थानों में पर्याप्त मात्रा निकाला जाता है। जेडाइट और नेफ्राइट का पालिश और कटिंग माण्डले में होकर रंगून से निर्यात होता है। जेडाइट के रवे एक नत (Monoclinic) होते हैं। इसका रासायनिक सूत्र Na AL (Sio_3) होता है। अर्थात् यह सोडियम और अल्युमीनियम का सिलिकेट है। साथ ही प्रायः कुछ अलबाइट (Albite) का भी अंश होता है। कठोरता (Hardness) ६.५ से ७ तक। आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.३ होता है। आवर्तनांक (R. I.) १.६५ से १.६७ तक।

प्रायः नेफ्राइट व जेडाइट में तथा समान रूपरंग वाले खनिजों में परस्पर भ्रम हो जाया करता है। अधोलिखित सारिणी सुनिश्चित निर्णय कराने में विशेष उपादेय सिद्ध हो सकती है।

	रत्न	कठोरता (H.)	आपेक्षिक गुरुत्व (S.G.)	आवर्तनांक (R.I.)
१	नेफ्राइट (Nephrite) या न्यूजीलेण्ड जेड (New-Zea land jade)	६.५	३.००	१.६२
२	जेडाइट (Jadeite) या चायनीज़ जेड (Chinese Jade)	७	३.३३	१.६६
३	स्यूडोफाइट (Pseudophite) या स्टीरियन जेड (Styrian Jade)	२.५	२.७	१.५७
४	ग्रासुलर (Grossular) या ट्रांसवाल जेड (Transwal Jade)	६.५	३.४८	१.७३
५	प्रेनाइट (Prehnite)	६	२.८७	१.६३
	बोनाइट (Bowenite)	५.५	२.६५	१.५५
६	एवेन्टराइन क्वार्ट्ज (Aventeurine Quartz) या इण्डियन जेड (Indian Jade)	७	२.६६	१.५५
७	कैल्सीडोनी (Chalcedony) या स्विस जेड' (Swiss Jade)	७	२.६०	१.५४
८	एमाजोन स्टोन (Amazon stone) या 'एमाजोन जेड (Amazone-Jade)	६	२.५६	१.५३
९	केलिफोर्नाइट (Californite)	५.५	३.४०	१.७२
१०	स्मिथसोनाइट (Smithsonite) या 'बोनामाइट' (Bonamite)	५	४.३५	१.६२
	एग्लामेटोलाइट (Agalmatolite) या 'फिगर स्टोन' (Figure Stone)	२.५	२.८०	८
११	सस्यूराइट (Saussurite)	६.५	३.२	१७०

फेल्सपार वर्ग (Feldspar Group)

यह खनिज परिवार प्रधानतः पोटाशियम, सोडियम, एवं अल्युमीनियम धातु से समन्वित सिलिकेटों का यौगिक रूप है। रत्नवैज्ञानिकों ने इसके मुख्यतः चार प्रकार माने हैं।

(१) आर्थोक्लेज़ (Orthoclese) या चन्द्रमणि (Moon stone.)।
(२) माइक्रोक्लाइन (Microcline) या एमाजोनाइट (Amazonite)।
(३) प्लेज़ियोक्लेज़ (Plagioclese) या 'लेब्राडोराइट' (Labradorite)
(४) सूर्यमणि (Sun Stone)।

(१) आर्थोक्लेज़ (Orthoclese)—यह खनिज ग्रेनाइट (Granite) शिला का एक विशेष प्रकार का अंश है। प्रायः आग्नेय एवं परिवर्तित शिलाओं में भी पाया जाता है। इसका रंग श्वेत अरुणाभायुक्त अथवा श्वेत-

ताम्राभायुक्त, लाल, गुलाबी अथवा भूरा तथा पीताभायुक्त श्वेत होता है। कभी-कभी हरित् वर्ण का भी आर्थोक्लेज़ पाया जा सकता है। इसकी खरोंच श्वेत रंग की होती है। रंगविहीन श्वेत आर्थोक्लेज़ को 'एडुलेरिया' (Adularia) कहते हैं। श्वेत-अरुणाभायुक्त अथवा श्वेत-ताम्राभायुक्त आर्थोक्लेज़ को 'चन्द्रमणि (Moon stone) कहा जाता है। एक सुन्दर आकर्षक स्वर्णाभायुक्त आर्थोक्लेज़ को 'मर्चिसोनाइट' (Murchisonite) कहते हैं। इस आर्थोक्लेज़ एवं इसके अन्तर्गत रूप रंग के भेदानुसार प्रकारों की कठोरता (Hardness) .६ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २·५६ तथा आवर्तनांक (R. I.) १.५२५ एवं द्विवर्तनांक (D. R.) .००५ होता है। चन्द्रमणि (Moon Stone) की कठोरता ६ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २·५७ तथा आवर्तनांक (R. I.) १·५३ एवं द्विवर्तनांक (D. R.) ·००८ होता है। आर्थोक्लेज़ एवं उसके अन्तर्गत अन्य प्रभेदों का रासायनिक सूत्र—($K. O. Al_2 O_3 6 SiO_3$) अथवा ($K Al Si_3 O_8$) है। इसके रवों की आकृति 'एकनत' (Monoclinic) होती है। तड़क दो दिशाओं में होती है एवं एक दूसरे के समकोण बनाती है। वैसे तो समस्त फेल्स्पार के रवे स्फटिक या गोमेद (Quartz) के समान ही होते हैं। कठोरता और तड़क की विशेषताओं के कारण फेल्स्पार और स्फटिक में सरलतापूर्वक अन्तर किया जा सकता है। साधारण अम्लों में अघुलनशील है। पीतवर्ण प्रधान आर्थोक्लेज मेडागास्कर से आता है।

आर्थोक्लेज के अन्तर्गत चन्द्रमणि (Moonstone) की ही जवाहरात विक्रेताओं में प्रधानता है। चन्द्रमणि मुख्यतः सीलोन से आता है। श्वेतारुण आभा के साथ कुछ नीलवर्णाभावाले चन्द्रमणि वर्मा से भी आते हैं।

(२) माइक्रो क्लाइन (Microcline) या 'एमाज़ोनाइट' (Amazonite)—इसका रंग हरित् वर्ण तथा श्वेत गुलाबी या भूरा मटियाला वर्णयुक्त भी पाया जाता है। इसका रासायनिक सूत्र आर्थोक्लेज के समान ही है। कठोरता (H.) ६ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २·५६ तथा आवर्तनांक (R. I.) १·५३ एवं द्विवर्तनांक (D. R.) .००८ होता है। एमाज़ोनाइट लगभग निम्नश्रेणी के फिरोज़ा (Turquoise) से मिलता जुलता सा है। क्योंकि कठोरता, आपेक्षिक गुरुत्व प्रायः समान ही हैं तथा रवों की आकृति भी दोनों की त्रिनत समकोण (Triclinic) होती है। परन्तु रासायनिक सूत्र आदि के अन्तर से पृथक्करण किया जा सकता है।

(३) प्लीजियोक्लेज़ (Plagioclese) या लेब्राडोराइट (Labradorite)—इसका रंग भूरा अथवा श्वेत रंग के साथ बहुरंगिता रेखा या

या विन्दुवत् होता है। इसके रवे भी त्रिनत समकोण (Triclinic होते हैं। इसके रवों की विशेषता सूचम रेखांकन होने से आर्थोक्लेज़ तथा माइक्रो-क्लाइन से पृथक्करण किया जा सकता है। इसकी कठोरता (Hardness) ६ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २·७० तथा आवर्तनांक (R. I.) १.५६५ एवं द्विवर्तनांक (D. R.) .०१० होता है। यह रासायनिक संयोजन (Chemical Composition) रूप से सोडियम, अल्युमीनियम सिलिकेट तथा कैल्सीयम-अल्युमीनियम सिलिकेट का संयुक्त यौगिक है। इसका रासायनिक सूत्र ($Na\ Al\ Si_3\ O_8$--Ca-$AL\ Si_3\ O_8$) है। इसके अलावा प्लीजियो-क्लेज़ के अन्तर्गत अल्बाइट, आलिगोक्लेज़, एण्डेसाइन, बाइटोनाइट तथा अनार्थाइट आदि खनिज भी आ जाते हैं। परन्तु आनिगोक्लेज़ को रत्न वैज्ञा-निकों ने रत्न-विज्ञान विषय में उपर्युक्त ५ खनिजों से अधिक महत्व दिया है।

फेल्सपार खनिज़ वर्ण के यावत् प्रकार जल और वायु की प्रतिक्रिया से केओलीन नामक मृत्तिका में परिणत होते रहते हैं। केओलीन को ही 'चीनी मिट्टी' कहा जाता है।

(४) सूर्यमणि (Sun-Stone)—यह भी प्लीजियोक्लेज के ही अन्त-र्गत आता है। यह चमकदार अरुणवर्ण होता है। इसका रासायनिक सूत्र, कठोरता प्लीजियोक्लेज के समान ही है। आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) २·६४ और आवर्तनांक (R. I.) १·५४ एवं द्वि-वर्तनांक (D. R.) ·००९ होता है।

(१) एन्डेल्यूसाइट (Andalusite)—यह उपरत्न हरित् वर्ण अथवा लोहित-बैंगनी वर्ण का होता है। विशेषतः यह ब्रेज़िल की खानों में पाया जाता है। इस रत्न पर खासकर ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसमें दृढ़ बहु वर्णत्व (Strong Pleochroism) होता है। जो अपारदर्शक भूरापन लिये एन्डेल्यूसाइट होता है उसमें कुछ कृष्णाभायुक्त रेखायें रहती हैं तब उसे 'क्रास प्रस्तर (Cross Stone) के नाम से कहा जाता है। उत्तम प्रकार से पालिश हो जाने पर यह उपरत्न बहुत सुन्दर मालूम होता है। इसका दूसरा नाम 'चाइस्टोलाइट' (Chiastolite) भी है। इस का वैक्रान्त (Tourma-line) से भ्रम हो सकता है। परन्तु वैक्रान्त का द्विवर्तनांक (D. R.) कम और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) अधिक होता है। इसका रासायनिक संयोजन अल्युम्यूनियम और सिकता यौगिक है। सूत्र $AL_2\ Sio_3$ है। कठोरता (Hardness)—७½ है और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.१५ है। आवर्तनांक १.६४ और द्वि-वर्तनांक ०.०१० होता है। उत्तम एन्डेल्यूसाइट—पारदर्शक होता है। यह पीत हरित् , अरुण नील लोहित वर्ण मिश्रित भी हो सकता है।

(२) काइनाइट (Kyanite)—यह एक नील रंग का उपरत्न है। कभी-कभी हरित् वर्ण और कभी रंगरहित श्वेत भी पाया जाता है। यह पार-दर्शक तथा अर्धपारदर्शक अथवा अपारदर्शक भी हो सकता है। इसके रवे

(Crystals) त्रिकोण असमावस्था (Triclinic) में उभरे होते हैं। यह भी एण्डेल्यूसाइट के समान अल्यूमीनियम और सिकता का यौगिक है। इसका रासायनिक सूत्र AL_2 Sio_3 है। कठोरता (Hardness) ४ से ७ तक होती है। आपेक्षिकगुरुत्व (S. G.) ३.६९ और आवर्तनांक (R. I.) १.७२ तथा द्वि-वर्तनांक (D. R.) .०१६ होता है। पालिश हो जाने के बाद कभी-कभी यह सुन्दर, आकर्षक और आभा-प्रभा युक्त हो जाता है कि नीलम को भी मात कर देता है। इसका नीलम, कारनेलियन तथा स्पिनल से भ्रम हो सकता है।

(३) फाइब्रोलाइट (Fibrolite)—इसके रवे (Crystals) शुद्ध चतुर्भुज (Ortho-Rhombic) प्रणाली (System) के होते हैं। परन्तु कोण (Angles) विभिन्न दिशाओं में होते हैं। इसके सूत्र समुदाय (Fibrous masses) इतने सघन होते हैं कि प्रायः जेड (Jade) नामक उपरत्न से संभ्रम हो जाना मामूली बात है। इसके रवों की तड़कन सरलतापूर्वक हो सकती है। इसका रंग पीत-नील मिश्रित होता है अथवा केवल पीत या नील ही हो सकता है। यह प्रायः वर्मा और सीलोन की खानों में पाया जाता है। इसकी कठोरता (Hardness) ७½ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३·२५ होता है। आवर्तनांक (R. I.) १.६६३ और द्वि-वर्तनांक (D. R.) ·००९ होता है। यह भी अल्युम्यूनियम और सिकता का यौगिक है। इसका रासायनिक सूत्र AL_2 SiO_3 है।

एन्डेल्यूसाइट, काइनाइट और फाइब्रोलाइट का पृथक् निर्देशक-सारिणी

	रत्न	रासायनिक सूत्र	रंग	कठोरता (H.)	आपेक्षिक गुरुत्व (S.G.)	आवर्तनांक (R.I.)	द्वि-वर्त्तनांक (D.R.)
१	एन्डेल्यूसाइट (Andalusite)	AL_2SiO_3	हरित् अथवा लोहित बैंगनी	७½	३.१५	१.६४	०.०१०
२	काइनाइट (Kynaite)	AL_2SiO_3	नील, हरित् अथवा श्वेत	४ से ७ तक	३.६९	१.७२	.०१६
३	फाइब्रोलाइट (Fibrolite)	AL_2SiO_3	पीत, नील अथवा पीत-नील मिश्रित	७½	३.२५	१.६६३	.००९

ओलिवाइन (Olivine) या पेरिडोट (Peridot)—फ्रेंच खनिज शास्त्र-वेत्ता इसे 'पेरिडोट' (Peridot) कहते हैं। अंग्रेज़ी शब्दकोष में 'Peridota' शब्द १३वीं शताब्दी में आया। इसके बाद Peridota शब्द के स्थान पर 'Peridote' शब्द हो गया। फ्रेन्च भाषा में 'पेरिडोट' शब्द का अर्थ 'कीमती रत्न' होता है। अमेरिकन खनिज शास्त्र वेत्ताओं ने इसका नाम अपनी ग्रीक भाषा के आधार पर 'क्राइसोलाइट' (Chrysolite) रखा। ग्रीक भाषा में 'क्राइसस' स्वर्ण को कहते हैं। यह रत्न पीताभायुक्त होने के कारण एवं स्वर्ण के समान अरुणाभायुक्त झाईं फेकने के कारण 'क्राइसोलाइट' शब्द ही प्रयुक्त होता चला आ रहा था। सन् १७९० ई० में डा० ए. जी. वरनर (Dr. A. G. Werner) ने इसका रंग पके अंगूर के समान पीतारुण एवं हरित् वर्ण की आभा युक्त देखकर 'ओलिवाइन' (Olivine) नाम रखा। 'ओलिव कलर' का अर्थ अंगूरी रङ्ग होता है। अंग्रेज और जर्मन खनिज शास्त्रवेत्ता 'ओलिवाइन' शब्द ही प्रयोग में लाते हैं।

इसके रवे शुद्ध दानेदार (Orthorhombic) होते हैं। इसका रासायनिक संगठन मैगनेसियम एवं लौह का सिलेकेट है। लौह अंश अधिक नहीं है। लौह लगभग १० प्र० शत पाया जाता है। रासायनिक सूत्र—(Ing Fe $)_2$ Sio_4 है। कठोरता (Hardness) ६.५ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.३ से ३.४ तक होती है। आवर्तनांक (R. I.) १.६५ से १.७२ तक होता है।

इसका रंग प्रायः पीत-हरित्, पीतारुणहरित्, हरित्, प्रगाढ़ हरित् अथवा लोहित-हरित्सम्मिश्रित होता है। यह पारदर्शक अथवा पारभासक या अपारदर्शक भी हो सकता है। इसका तामड़ा, पन्ना, वैक्रान्त, गोमेदक, नीलम के साथ भ्रम हो सकता है। यह St John's island (Redsea), मोगाक (In upper Burma) तथा भारतवर्ष के गिरनार पर्वत की आग्नेय शिलाओं में पाया जाता है।

एपीटाइट (Apatite)—यह एक पीतवर्ण अथवा नीलवर्ण का खनिज रत्न होता है। कभी कभी नील-हरित वर्ण मिश्रित भी उपलब्ध होता है। कभी रङ्गरहित श्वेत वर्ण भी प्राप्त होता है। यह पारदर्शक अथवा अपारदर्शक होता है। इसका रासायनिक संयोजन कैल्सीयम का फास्फेट और फ्लोराइड (Phosphate and fluoride of calcium) है। इसका रासायनिक सूत्र Ca_4 (CaF) (Po_4 $)_3$ है। नीलवर्ण एपीटाइट वर्मा की माणिक्य (Ruby) की खानों में पाया जाता है। कभी कभी यहाँ से आकाशीय

नीलवर्ण (Sky–blue) या पीतवर्ण के एपीटाइट भी प्राप्त हो जाते हैं। इसकी कठोरता (Hardness) ५ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.१ होती है। आवर्तनांक (R. I.) १.६७८ और द्विवर्तनांक (D. R.) .००३ होता है। इसका वैक्रान्त, पुखराज, पन्ना या स्फटिक से भ्रम हो सकता है।

एक्सीनाइट (Axinite)—यह एक लवंगवत् भूरा (Clove brown) लोहितवर्ण, हरिदाभायुक्त पीतवर्ण, अथवा नील वर्ण का खनिज रत्न होता है। यह प्रायः पारदर्शक ही होता है। इसका रासायनिक संयोजन कैल्सीयम, एल्यूमीनिया तथा मैगनीसियम से सम्मिश्रित बोरो सिलिकेट (Complex boro-Silicate of co, AL, Ing.) है। हाइड्रोजन (Hydrogen) भी कुछ विद्यमान रहता है। इसकी कठोरता (Hardness) ६½ से ७ तक और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३ २८ तथा आवर्तनांक (R I.) १.६८५ एवं द्वि-वर्तनांक (D. R.) ·०११ होता है। सर्वप्रथम यह रत्न फ्रांस की खानों से पाया गया था। फ्रांस के राजकुमार ने लंवगवत् भूरे (Clove-brown) वर्ण के सुचिक्कण चमकदार एक्ज़ीनाइट को रत्न के रूप में इसे सर्वप्रथम ग्रहण किया था अतएव इसका नाम डाफिन (Dauphine) पड़ा है। डाफिन (Dauphin) फ्रांस के राजकुमार को कहा जाता है। इसके रवे बहुत ही सुन्दर कुठारवत् (Axe–like) होते हैं अतएव इसका नाम Axinite पड़ा है।

बेनिटाइट (Benitoite)—यह एक नीलमवत् नीलवर्ण (Sapphire blue) अथवा कुछ पीताभा लिये हुये प्रगाढ़ नीलवर्ण का खनिज रत्न होता है। यह पारदर्शक होता है। इसका रासायनिक संयोजन बेरियम का सिलिकेट और टिटानेट का सम्मिश्रण (Silicate of Titanate of Barium) है। इसका रासायनिक सूत्र $BaO. TiO_2\ 3\ SiO_2$ अथवा $Ba\ Ti\ (SiO_3)_3$ है। इसकी कठोरता (Hardness) ६ से ६½ तक और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.७२ तथा आवर्तनांक (R. I.) १.७८ एवं द्वि-वर्तनांक (D. R.) .०४७ होता है। इसका मुख्य उद्गमस्थान सेन बेनिटो (San–Benito country) प्रदेश है। बेनिटो खास उद्‌गम स्थान होने से ही इसका नाम 'बेनिटॉइट' रखा गया है। केलिफोर्निया से यह रत्न निर्यात किया जाता है। इसका नीलम और स्पीनेल से भ्रम हो सकता है।

ब्लेण्डे (Blende)—यह एक पीत, लोहित, नारंगी अथवा कृष्णाभायुक्त खनिज है। यह पारदर्शक या अपारदर्शक भी हो सकता है। इसकी सुचिक्क-

णता एवं रंग सौन्दर्य को देखकर ही इसका 'रत्न-विज्ञान' में समावेश है। इसका रासायनिक संयोजन जिंक सल्फेट है। रासायनिक सूत्र Zns है।

कठोरता (Hardness) ३½ और आपेक्षिक गुरुत्व (S.G.) ४.०९ है। आवर्तनांक (R. I.) ३.२७ होता है। इसका रत्नों में बहुत समक तक इसीलिये समावेश नहीं किया जा सका था कि यह अन्यान्य रत्नों की अपेक्षा कोमल होता है। इसका दूसरा नाम 'स्फेलेराइट (Sphalerite) भी है।

डायोपसाइड (Diopside)—यह पीताभायुक्तहरित् अथवा प्रगाढ़ हरित् वर्ण का खनिजरत्न होता है। कभी-कभी रंगरहित श्वेतवर्ण का भी उपलब्ध हो जाया करता है। यह पारदर्शक अथवा अपारदर्शक भी होता है। इसका रासायनिक सूत्र—CaO. IngO, 2 Sio_2 है। इसकी कठोरता ५ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.२९ तथा आवर्तनांक (R. I.) १.६९ एवं द्वि-वर्तनांक (D. R.) .०२६ होता है। इसका पन्ना, नीलम, स्पिनल एवं पेरिडोट से भ्रम हो सकता है।

इन्स्टाटाइट (Enstatite)—यह एक चमकदार हरित् वर्ण का खनिज रत्न होता है। यह पारदर्शक अथवा अर्धपारदर्शक होता है। इसका रासायनिक सूत्र Ingo, SiO_2 है। इसमें प्रायः किञ्चित् लौहांश भी पाया जाता है तब इसका रासायनिक सूत्र (Ing, Fe) SiO_3 होता है। यह दक्षिण अफ्रीका के किम्बरले की हीरकखानों से उपलब्ध होता है अतएव इसका नाम 'किम्बरलाइट' (Kimberlite) भी कहा जाता है। इसकी अच्छी प्रकार से कटिंग और पालिश हो जाने पर यह पन्ना एवं आलियवाइन के समान दिखाई देता है। इसकी कठोरता (Hardness) ५½ होती है। आपेक्षिकगुरुत्व (S. G.) ३·२७ और आवर्तनांक (R. I.) १·६७ तथा द्विवर्तनांक (D. R.) .००९ होता है। इन्स्टाटाइट से ही मिलते-जुलते खनिज रत्न दो और भी हैं, जिनका नाम 'ब्रोन्जाइट' (Bronzite) और 'हाइपरस्थीन' (Hypersthene) है। इन दोनों में लौहांश की कमी वेशी के कारण ही 'इन्स्टाटाइट' से अलग किये गये हैं।

यूक्लेज़ (Euclase)—यह पीताभायुक्त हरित् वर्ण, अथवा पन्ना के समान हरित्वर्ण या नीलम के समान नीलवर्ण का एक खनिज रत्न होता है। यह विशेषतः यूराल्स (Urals) पर्वत श्रेणियों से एवं ब्रेज़िल से आता है। अभी कुछ ही वर्ष पूर्व टेंगानिका (Tanganyika) राज्य की अभ्रक की खानों से भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लग गया है। यह मूलतः बेरिलियम का यौगिक है। इसका रासायनिक सूत्र $HBeALSiO_5$ है। इसके रवे एक ही दिशा में आश्चर्यजनक रीति से पृथक् हो जाते हैं। इसकी कठोरता (H.)

६$\frac{1}{2}$ से ७$\frac{1}{2}$ तक और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.३५ तथा आवर्तनांक (R. I.) १·६६५ एवं द्विवर्तनांक (D. R.) ·०१९ होता है। यह पारदर्शक होता है। इसका एक्वामेरिन, पुखराज, पन्ना अथवा नीलम से भ्रम हो सकता है।

आइडोक्रेज़ (Idocrase) Vesuvianite, Californite—यह पीत हरित् वर्ण अथवा भूरे रंग का खनिज रत्न होता है। इसका उद्भव स्थान विशेषकर कैलिफोर्निया है अतएव इसे 'कैलीफोरनाइट' (Californite) भी कहा जाता है। कैलिफोर्निया का 'आइडोक्रेज' प्रगाढ़ हरित् वर्ण (Massive green) का होता है। कैलिफोर्निया के आइडोक्रेज़ की कठोरता (Hardness) ५$\frac{1}{2}$ और आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.४ तथा आवर्तनांक (R. I.) १·७२ होता है। अन्य स्थानों के 'आइडोक्रेज़' की कठोरता ६$\frac{1}{2}$ तथा आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.) ३.३८ एवं आवर्तनांक (R. I.) १·७ और द्विवर्तनांक (D. R.) ·००५ होता है। यह पारदर्शक होता है एवं कैलिफोर्निया का आइडोक्रेज़ अर्धपारभासक होता है। इसका जेडे के प्रकार जेडाइट तथा नेफ्राइट से भ्रम हो सकता है।

अम्बर

(Ambar)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—अग्निजार, बह्निजार, अम्बरसुगन्ध, अम्बरम् । हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी—अम्बर । तामिल—मिनम्बर । सिन्धी—मुसम्बर । बरमी—पयेन्-अम्भट । फारसी—शालबू । लेटिन—अम्ब्राग्रसया (Ambra Grsea) । अंग्रेज़ी—अमरग्रीस (Amergris) ।

प्राप्तिस्थान—अमेरिका के दक्षिण समुद्रों में, हिन्दमहासागर, बंगाल की खाड़ी, लालसागर, ब्रेज़िल और अफ्रीका के समुद्र-तटों पर, निकोबार आदि आदि समुद्र-स्थानों में अम्बर पाया जाता है ।

प्राचीन काल में अरबियन और यूनानी लोग अम्बर को भारतवर्ष से ले जाते थे । जहाँगीर के दरबार में अम्बर भारतवर्ष का ही उपयोग में आता था ।

व्याख्या एवं इतिवृत्त—अम्बर एक प्रसिद्ध मूल्यवान् सुगन्धिपूर्ण पदार्थ है । यह अपारदर्शक श्वेत, श्याम, धूसर अथवा गुलाबी वर्ण का होता है । इसकी कस्तूरी के समान एक विशेष प्रकार की गंध होती है और स्वादरहित पदार्थ है ।

हकीमी—तिब्बी ग्रन्थों के प्रसिद्ध लेखक शेख, मुल्ला नफीस, मुल्ला सदीद गोज़रानी, हकीम उलवीखाँ, मीर मुहम्मद हुसेन एवं कतिपय इतिब्बा ने अम्बर के विषय में अपने विचारों को कुछ-कुछ और कहीं कहीं काफी मतभेद के साथ प्रगट किया है । भिन्न भिन्न विचार अधोलिखित हैं ।

(१) सामुद्रिक चतुष्पद प्राणी का गोबर अम्बर कहलाता है ।

(२) एक प्रकार की सामुद्रिक वनस्पति जिसे समुद्र के प्राणी खा लेते हैं और वह अपचन होने के कारण वमन हो जाती है । इसी वमन को अम्बर कहते हैं ।

(३) सामुद्रिक तल से उद्रेचित जोश या रतूवत—अम्बर कहलाता है ।

(४) एक प्रकार का मधु जो कि मधुमक्खिकाओं द्वारा पर्वतों पर संगृहीत होता है। वर्षाधिक्य में पानी के साथ बहकर समुद्रतक पहुंचता है। रास्ते में जल के सम्पर्क में आकर मधु का जलांश एवं शर्करांश जल में मिश्रित हो जाता है और केवल मोम का अंश अवशिष्ट रह जाता है। समुद्र में तरंगों द्वारा समुद्र-तट पर आकर रुक जाता है। इस प्रकार के सुगंधित मोम को ही अम्बर कहा जाता है।

आयुर्वेदीय—आयुर्वेद में भी अम्बर के विषय में काफी भ्रम है।

(१) अम्बर एक सामुद्रिक फल है।

(२) अम्बर एक प्रकार की सामुद्रिक लता का निर्यास है।

(३) अम्बर का पर्यायवाची शब्द अग्निजार आया है और अग्निजार को एक वानस्पतिक द्रव्य माना है।

(४) रसरत्नसमुच्चयकार ने अम्बर को प्राणिज द्रव्य माना है, जैसे—

समुद्रेणाग्निनक्रस्य जरायुर्बहिरुज्झितः।
संशुष्को भानुतापेन सोऽग्निजार इति स्मृतः॥

अर्थात्—अग्निनक्र नामक सामुद्रिक प्राणी का जरायु जब अग्निनक्र के शरीर से बाहर आ जाता है और धीरे २ समुद्र के किनारे लग जाता है तब यह सूर्य ताप के प्रभाव के कारण सूख जाता है। इसे ही अम्बर वा अग्निजार कहते हैं।

नूतन विचार—आधुनिकतम शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि अम्बर स्पर्म ह्वेल (Sperm whale) नामक मछली के उदर से निकला हुआ एक पदार्थ विशेष है। स्पर्म ह्वेल के आंत्र या मलाशय में मल एकत्रित हो जाता है या कुछ लेखकों के मत मे आंत्र पुच्छ (Appendix) में एकत्रित दूषित मल को ही अम्बर कहा जाता। यह मछली २० फीट से लेकर ८०-९० फीट तक लम्बी होती है। आजकल इसका शिकार अम्बर एवं विशेषतः उसके सिर में भरे हुये तेल की प्राप्ति के लिये होता है। अनुभवी लोगों का कहना है कि स्पर्म ह्वेल के शिकार के बाद जो अम्बर प्राप्त किया जाता है, उसकी अपेक्षा वह अम्बर जो कि मत्स्य स्वयं ही जब मलोत्सर्जन अथवा वमन करता है और अम्बर कभी-कभी बाहर निकल आता है तथा जल-तरंगों के साथ समुद्रतट में आ लगता है—उत्तम श्रेणी का एवं औषध प्रयोग के लायक होता है।

असली और नकली की परीक्षा—अंबर को तोड़ने से यदि ठोस हो तो श्रेष्ठ और यदि भीतर से पोला निकले तो उसे नकली समझें।

(२) एक चम्मच में रखकर तेज अग्नि पर रखें—यदि द्रवित होकर वाष्प रूप में आकर उड़ने लगे तो उसे असली समझें।

(३) अग्नि पर १४५° फारनहाइट में पीले रंग का तरल बन जाता है और २१२° फारनहाइट पर सफेद वाष्प होकर उड़ जाता है और शेष रूप में कुछ भस्म रह जाती है।

(४) सूखे हुए अम्बर का विशिष्ट गुरुत्व .७८० से लेकर .९२६ तक होता है।

(५) शीतल जल में अम्बर घुलनशील नहीं है परन्तु ऊष्ण जल, ईथर एवं स्पिरिट में घुलनशील है। अम्लों (Acids) में भी घुलनशील नहीं है।

(६) अम्बर का टुकड़ा लेकर चबावें—यदि दांतों में चिपट जाय और मुख सुगन्धयुक्त हो जाय तो उत्तम है।

(७) अग्नि के अंगारे पर डालने से धुँआ निकले और सुगन्धयुक्त वातावरण हो जाय तो असली है।

(८) अम्बर को एक शीशी में रखें और उसे आँच पर रखें। अम्बर पिघलकर तैलवत् हो जाय तो असली है।

रासायनिक—

संगठन (Chemical composition)

अम्ब्रीन (Ambrein)	८५ प्रतिशत
शेष पदार्थ	१५ ,,

गुणधर्म—

अग्निजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत्।
वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा॥ (रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्—त्रिदोषनाशक एवं धनुस्तम्भ आदि वायु रोगों को नष्ट करता है। रसवीर्य को बढ़ानेवाला तथा अग्निदीपक है।

स्यादग्निजारः कटुरुष्णवीर्यो गुदामये वातकफामयघ्नः।
पित्तप्रदः सोऽधिकसन्निपात-शूलातिशीतामयनाशकश्च॥

(राजनिघण्टु)

अर्थात्—अम्बर कटु रसयुक्त, ऊष्णवीर्य, लघुपाकी तथा कफ, वायु, सन्निपात एवं शूल रोग नाशक और पित्तोत्प्रेरक है।

विशेषतः अम्बर एक कामोत्तेजक औषध है।

हकीमी मतानुसार गुणधर्म—अम्बर स्वभाव में उष्ण व रूक्ष है, स्वाद में किंचित् कटु, गंध—अत्यन्त सुगन्धिमय। अम्बर की तेजी को कपूर नष्ट कर देता है अतएव जिस स्थान पर अम्बर रखा हो वहाँ कपूर नहीं रखना चाहिये। अम्बर के सेवन से यदि रोगी को विशेष उष्णता बढ़ जाय तो कपूर का सेवन कराना चाहिये। विशेषतः इसका गुण रूक्ष, शक्ति एवं हृदय को बलदायक है। वातरोगों में सद्यः फलप्रद है। वृद्ध पुरुषों के लिये अत्यन्त उपयोगी—मस्तिष्क, हृदय और यकृत् रोगों में अत्यन्त लाभदायक है। शिश्नेन्द्रिय पर प्रलेप करने से हर्षोत्पादन होता है। मखजन उल मुफरदात के लेखक ने अम्बर के गुणधर्म इस प्रकार लिखे हैं।

वैज्ञानिक नवीनतम अनुसन्धान—अम्बर का आदि उद्भव वानस्पतिक है। परन्तु लगभग १० लाख वर्ष पूर्व की परिकल्पना की गई है कि किसी जाति के वृक्ष भूकम्पादि कारणों से पृथ्वी के गर्भ में समा गये। ये वृक्ष पृथ्वी गर्भस्थ ऊष्मा पाकर प्रस्वेदित हो राल (Resin) के रूप में परिणत हुये। तदनन्तर पृथ्वीस्थ जीवाणुओं की रासायनिक संक्रिया द्वारा कोलतार जनित विशेष प्रकार के रंगों की परिणति हुई और पश्चात् शिलामय कठोर आकृति में निर्माण हुआ।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अम्बर को वानस्पतिक और भूगर्भ के कुछ तत्त्वों से संमिश्रित नामीकरण 'मिनरलाइड्स' (Mineralids) शब्द द्वारा की है। सारांश में अम्बर एक भूगर्भस्थ राल विशेष है (It is a fossic resin) रत्न विज्ञान (Gemmology) के विशेषज्ञों ने अम्बर को एक प्रकार का रत्न माना है। पाश्चात्य देशों में रत्न के रूप में अम्बर पर्याप्त रूप से व्यवहार में आता है। देशानुसार इसके रूप रंग पृथक्-पृथक् होते हैं।

(१) बाल्टिक अम्बर (Baltic Amber)	पीतवर्णाभायुक्त
(२) सिसीलियन अम्बर (Sicilian „)	अरुणाभायुक्त पीत
(३) रूमेनियन अम्बर (Rumanian „)	नीललोहित (बैंगनी)
(४) बर्मीज (Burmese „)	पीतनील लोहित

अम्बर का अन्याय कई प्रकार के पदार्थों से एवं कृत्रिम अम्बर से भ्रम हो सकता है। एतदर्थ आपेक्षिक निदर्शन अधोलिखित दिया जाता है।

अम्बर का आपेक्षिक निदर्शन

पदार्थ	कठोरता (H)	आपेक्षिक गुरुत्व	आवर्तनांक	चाकू से
अम्बर	२½ से ३	१.०८	१.५४	चाकू से सुगमतापूर्वक पतला छिलका काटा जा सकता है। (Splinters readily)
वार्निश में काम आने वाली राल (Copalresin)	!	१.०६	१.५३	„
कच्छप-पृष्ठास्थि (Tortoise-shell)	!	१.२९	१.५५	कट जाता है परन्तु सुगमता से नहीं (Sectile)
माजूफल द्वारा कृत्रिम अम्बर (Galalith Imitation Amber)	!	१.३३	१.५४	अत्यन्त कठिनता से कटता है
कृत्रिम कच्छप-पृष्ठास्थि	!	१.३३	१.५४	„
अग्नि संयोगज सुपरिपक्व कृत्रिम अम्बर (Balcalite, Imitation amber)	!	१.२७	१.६५	„
सिलोन-कृत्रिम कच्छप पृष्ठास्थि	!	१.२६	१.४८	कट जाता है परन्तु सुगमता से नहीं।
सेल्युलाइड-कृत्रिम कच्छप-पृष्ठअस्थि	!	१.४०	१.४९	„
अरुणाभायुक्त कृत्रिम कच्छप-पृष्ठास्थि	!	१.२८	१.४९	„

रूह को लाभदायक है और तीनों कुव्वतों को कवी करता है। तबियत को फरहत देता है और असली हरारत व हवास को कवी देता है। बुढ्ढों को बहुत फायदेमन्द है। दिमाग, दिल व जिगर के मर्जों को बहुत ही फायदा पहुँचाता है। खफकान व बबा को दूर करता है। सुद्दा खोलता है, बाह लाता है। अजूमखसूस यानि लिंग पर इसका लेप करने से बाह ज्यादा लाता है और लज्जत देता है।

एलोपैथिक मतानुसार गुणधर्म—'इण्डियन मेटेरिया मेडिका' के लेखक डाक्टर के. एम. नादकरणी के मतानुसार अम्बर—

अपस्मार, धनुस्तम्भ, आक्षेपकरोग, सार्वदेहिक निर्बलता, स्नायुदौर्बल्य (Nervous debility), उन्माद, विषूचिकाजन्य हृदयावसाद एवं अन्य संक्रामक रोगों में अम्बर एक उत्तम औषध है।

होमियोपैथिक मतानुसार गुणधर्म—'होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका' के लेखक डा० लिप्पे (Lippe) M. D. के मतानुसार अम्बर जिसे Ambra Grisea कहते हैं—इस प्रकार है—

अत्यन्त थकावट, बातचीत करने में झेंप, जीवन में निरुत्साह, शिरःशूल सुबह के समय शिर का भारीपन, मुखाकृति का पीलापन, मुख से दुर्गन्ध आना, बार-बार पानी पीने की इच्छा, दूध पीने के बाद हृदय स्थान पर जलन प्लीहा में मन्द-मन्द पीड़ा, गुदकण्डू, बहुमूत्रता, प्रातःकाल शिश्नेन्द्रिय-प्रहर्ष बिना मैथुनेच्छा के, गले में खुजलाहट, थायराड ग्रन्थि में खुजलाहट, वृद्धों व बच्चों का दमा, हथेलियों में खुजलाहट इत्यादि लक्षणों में अम्बर देना चाहिये।

तृणकान्त (कहरुवा)

(Succinum)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—तृणकान्त, हिन्दी—कहरवा, उर्दू-फारसी—कहरुवा, कहरुवा-शमई, अरबी–कर्तुलबहर, समगुल बहरु, अंग्रेजी–सक्सीनियम (Succinum)

व्याख्या—संस्कृत ग्रन्थों में अर्थात् प्राचीन अथवा अर्वाचीन निघण्टुओं में तृणकान्त शब्द नहीं पाया जाता है। केवल वैशेषिक दर्शन में ही अधोलिखित रूप से पाया जाता है।

"तथा चायस्कान्ताभिमुखं यत् सूच्यादेर्गमनम्। तृणकान्ताभिमुखं यत् तृणस्य गमनम्। तत्र सूच्यादि समवायिकारणम्।"

अर्थात्—चुम्बक के अभिमुख सूचिका का गमन होता है तथा इसी तृणकान्त के अभिमुख तृण या घास का गमन होता है। यहाँ पर चुम्बक और तृणकान्त के साथ सूचिका एवं तृण का सम्बन्ध समवायि कारण है।

मुगल साम्राज्यकालीन हकीमों ने एवं आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी कहरुवा या सक्सीनम का प्रभाव 'घास, रुई या पंखों को अपने तरफ आकर्षित करता है' उल्लेख किया है। इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि 'वैशेषिक दर्शनकार' का उल्लिखित तृणकान्त और कहरुवा एवं सक्सीनम एक ही प्रस्तर है।

उत्पत्ति स्थान—कहरुवा का मुख्य उत्पत्ति स्थान वर्मा है। उत्तर वर्मा के हुकांग के पास एक पुरानी खान है। चिदंविन, पाक्कोकु श्वेबो इत्यादि स्थानों में भी कहरुवा पाया जाता है। कच्छ और बाल्टिक समुद्रों के तटों की जमीन खोदकर काफी मात्रा में कहरुवा निकाला जाता है। त्रावनकोर और निकोबार के पार्श्ववर्ती अञ्चल में भी कहरुवा पाया जाता है।

रूप रंग लक्षण प्रभाव—कहरुवा का रंग पीताभायुक्त होता है। वैसे यह देखने से राल के समान दिखाई देता है। यह गोंद के समान स्वच्छ, चमकदार और पीताभायुक्त होता है। इसका मुख्यतः प्रधान लक्षण यह है कि कहरुवा को किसी भी वस्त्र से रगड़कर घास, रूई इत्यादि हल्के पदार्थों के पास रखे तो वह पदार्थ चुम्बक के समान आकर चिपक जाते हैं।

कुछ विद्वानों के मत—

(१) हकीमी ग्रन्थकारों ने जैसे शेख, अली आदि प्रसिद्ध विद्वानों ने कहरुवा को हौर नामक एक ऊँचे वृक्ष का गोंद माना है। यह गोंद सुगन्धित होता है।

(२) हकीम जाम साहब ने इस बात का खण्डन किया है और बताया है कि यह एक खनिज द्रव्य है तथा निर्गन्ध होता है।

(३) हकीम गाफिकी ने कहरुवा दो प्रकार का माना है एक वह जो कि रोम देश से आता है और दूसरा स्पेन से आने वाला होता है। इन महाशय ने इसे 'दोम' नामक एक क्षुप की जड़ों से प्राप्त एक प्रकार का निर्यास (राल) पदार्थ माना है।

(४) गंज वादावर्द के लेखक ने कहरुवा को पीताभायुक्त, रक्ताभायुक्त एवं श्वेताभायुक्त तीन प्रकार का माना है। इसकी पहिचान के लिये लिखा है कि कहरुवा को किसी कपड़े से या हाथ से इतना रगड़े कि वह गरम हो जाय और फिर घास के पास रखें। घास आकर चिपक जावे तो समझें कि यह असली कहरुवा है अन्यथा संदरुस (चन्द्ररस) मिश्रित नकली कहरुवा है।

(५) एक प्राचीन हकीम थैलस जो कि लगभग ७०० वर्ष पूर्व के हैं—उन्होंने कहरुवा के विषय में इसी चुम्बकत्व शक्ति का उल्लेख किया है।

(६) महारानी एलीजाबेथ के समकालीन विलियम गिलबर्ट महोदय ने सर्वप्रथम (चुम्बक के अतिरिक्त) कहरुवा में ही विद्युत् शक्ति का स्वयंमेव अनुसन्धान किया और इसके बाद उन्होंने अनेक खनिज पदार्थों, रत्न, उपरत्नों एवं अन्यान्य धान्यों को परस्पर में घर्षण करने एवं अन्यान्य वस्तुओं के परस्पर में घर्षण से विद्युत् शक्ति उत्पन्न होकर अपने से हलके पदार्थों को आकर्षण करती हैं—यह प्रत्यक्ष क्रियात्मक रुप से सिद्ध कर दिखाया।

(७) इन्साइक्लोपीडिया में कहरुवा को एक कठिन, श्वेताभायुक्त चमकदार एवं स्वादरहित निर्गंध पदार्थ माना है। प्रुशिया के पार्श्ववर्ती अञ्चल में एक खान द्वारा उपलब्ध एक विशेष प्रकार का अर्धकाष्ठमय पदार्थ है—यह डा० फिलिपि का कथन है।

(८) आयुर्वेदीय विश्वकोषकार—ठाकुर दलजीतसिंह ने असली और नकली कहरुवा के परिचयार्थं अधोलिखित उल्लेख किया है।

(क) कुछ लोग संदरुस (चन्द्रस) और कहरुवा एक ही पदार्थ है परन्तु इन दोनों पदार्थों में पर्याप्त अन्तर है।

(ख) संदरुस अल्पघर्षण से ही उष्ण हो जाता है और तृणादिक को

आकर्षित कर लेता है। कहरुवा का कुछ अधिक घर्षण करना पड़ता है तब उसमें चुम्बकत्व शक्ति आती है।

(ग) कहरुवा की अपेक्षा संदरुस हलका होता है।

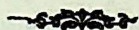
(घ) कहरुवा नीबू की सुगन्धि के समान सुगन्धित होता है परन्तु संदरुस निर्गंध होता है।

(च) कहरुवा पीताभायुक्त होता है। संदरुस अरुणाभा युक्त होता है।

(छ) कहरुवा और संदरुस को पृथक्-पृथक् अग्नि पर रखकर जलाने से अलग-अलग प्रकार की गन्ध आती है। संदरुस की गन्ध हींग की गन्ध के समान आती है और कहरुवा की मस्तगी के समान गन्ध आती है।

रासायनिक विश्लेषण—

कहरुवा कोयले की जाति का एक खनिज है। यह कोनिफरी (Conifarai) नामक गोंद-राल (रेसीन) मय वृक्ष के लाखों वर्ष पूर्व से ही जमीन में गड़े रहने के परिणामस्वरूप उष्णता के प्रभाव से वृक्ष द्वारा निर्यास निकलता रहा और वह निर्यास धीरे-धीरे कठिनावस्था में आता गया।



गोमेद

(Zircon)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—गोमेदक, गोमेद, राहुरत्न, पिंगस्फटिक, स्वर्भानु (राजनिघंटु), पीतरक्त (द्रव्यरत्नाकर), तृणवर (मदनपाल), अगस्तिसत्त्व, तमोमणि (भावप्रकाश)। हिन्दी—गोमेदमणि, राहुरत्न। बंगला—गोमेदमणि, लोहितमणि। गुजराती—गोमूत्र जेवुँ। मराठी—गोमेदमणि। तेलगू—कर्णाटकीगोमेदकम्। अरबी—हजार यमनी। अंगरेजी—जेसिन्थ (Jacinth), हायसिन्थ (Hyacinth), जिरकॉन (Zircon)। लेटिन—जारगून (Zargoon)। सिंहली—गोमेद। वर्मी—गोमौक (Gomok)। चीनी—पी-सी (Pi-Si)।

प्राप्तिस्थान

(१) भारतीय क्षेत्र—(क) 'हिमालये सिन्धौ वा गोमेदमणिसम्भवः। (युक्तिकल्पतरु)—अर्थात्—प्राचीन सिद्धान्तानुसार गोमेद का मुख्य उद्भवस्थान हिमालय पर्वत और सिन्धु नदी का पार्श्ववर्ती अंचल है। आधुनिक भूगर्भ-शास्त्रानुसार गोमेद के मुख्य उद्भवस्थान—काश्मीर, कुल्लु, शिमला एवं सिन्धु नदी के उद्गमस्थान एवं उसके पर्वताञ्चल है।

(ख) विहार प्रान्त के हजारीबाग जिले के अभ्रकीय क्षेत्रों में पर्याप्त गोमेद पाया जाता है।

(ग) त्रावनकोर की 'त्रावनकोर मिनरल कंपनी' द्वारा पर्याप्त गोमेद निकाला जाता है। यह कम्पनी प्रतिवर्ष जर्मनी, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया को औद्योगिक कार्यों के लिये गोमेद का पर्याप्त निर्यात करती है। त्रावनकोर के पार्श्ववर्ती अंचलों में यदा-कदा पन्द्रह पौंड परिमाण के गोमेद-प्रस्तर उपलब्ध हो जाया करते हैं।

(घ) कोयम्बटूर के पास भी गोमेद के लघु कण और कभी-कभी बड़े खण्ड भी प्राप्त हो जाया करते हैं।

(ङ) विजयापट्टम् क्षेत्र में भी पीतारुण वर्ण के गोमेद अनेक बार मिल जाया करते हैं।

(२) विदेशीय क्षेत्र—

(क) सीलोन के मदुरा नामक स्थान से बहुत प्राचीन समय में गोमेद आता रहा है। अभी-अभी लगभग २५ वर्ष पूर्व तक मदुरा के गोमेद को 'मदुरा-हीरक' (Matura Diamond) ही कहा जाता था। सर्वप्रथम सन् १९१४ में 'मदुरा हीरक' के विषय में रत्नवैज्ञानिकों में वादविवाद छिड़ा। अन्ततोगत्वा यही सिद्ध हुआ कि यह श्वेत जाति का दीप्तिमान् गोमेद

(Zircon) ही है। अमेरिका, यूरोप, रूस, जर्मनी आदि देशों में सीलोनी गोमेद की पर्याप्त खपत है।

(ख) बर्मा में 'बर्मा रूबी माइन कम्पनी' भी माणिक्य के साथ-साथ गोमेद निकालती है। यहाँ उद्भूत गोमेद का रंग अरुण-पीत, पीतारुण, श्वेतारुण-पीत अथवा भूरे रंग का होता है। पारदर्शकता भी उत्तम प्रकार की होती है। भारतीय जौहरीवर्ग विशेषतः ज्यौतिष शास्त्रानुसार भारतीय जनता की प्रसन्नता के लिये अरुण-पीत या पीतारुण वर्ण के गोमेद ही खरीदता है। औषध प्रयोगार्थ सीलोनी गोमेद अथवा बर्मी गोमेद कोई भी लिये जा सकते हैं। परन्तु भारतीय वैद्य भी गोमेद का प्रसिद्ध वर्ण अरुण-पीताभ ही निःशंक होकर खरीदते हैं।

(ग) स्याम, इण्डोचायना, टासमानिया, न्यू साउथ वेल्स, न्यूजीलेण्ड आदि स्थान भी गोमेद के प्रसिद्ध उद्भव स्थान हैं। इन स्थानों के गोमेद विशेषतः आभूषणोपयोगी समझे जाते हैं। इण्डोचायना का नीलाभ वर्ण गोमेद भी अब अधिक पसन्द किया जाने लगा है। सम्प्रति गोमेद घटिका-यंत्रों के पुर्जों के सुदृढ़ीकरणार्थ एवं आभूषणार्थ प्रायः समस्त संसार की आवश्यकता को पूरी करने में पर्याप्त अंश से समर्थ होता जा रहा है।

रूप-रंग और लक्षण

गोमेदः समरागत्वाद् गोमेदं रत्नमुच्यते।
गोमेदः प्रियकृद्राहोरीषत् पीतारुणप्रभः॥ रसजलनिधि
गोमूत्राभं मदगुरुस्निग्धशुक्लं शुद्धच्छायं गौरवं यच्च धत्ते।
हेमारक्तं श्रीमतां योग्यमेतद् गोमेदाख्यं चैव शंसन्ति सन्तः॥

—नि० रत्नाकर

स्वच्छकान्तिर्गुरुः स्निग्धो वर्णाढ्यो दीप्तिमानपि।
वलक्षः पिञ्जरो धन्यः 'गोमेद'इति कीर्तितः॥—युक्तिकल्पतरु

अर्थात् गौ के मेद (Cow's fat) के रंग के समान इस रत्न का वर्ण होने के कारण इसे 'गोमेदमणि' कहते हैं। गोमेद का रंग जो कि विशेषरूप से कुछ पीलापन लिये हुये लाल रंग का होता है, वही रंग राहु-ग्रह के लिए प्रिय होता है। अतएव इस रत्न को 'राहु-रत्न' भी कहते हैं।

निघण्टुरत्नाकरकार ने गोमेद का रंग गौ के मूत्र की आभावाला भी बताया है। गोमूत्र भी पीतारुणवर्ण होता है। विद्वानों की राय है कि जिस गोमेद का रंग हेमारक्त यानी सोने के समान पीलापन लिये हुए लालिमायुक्त हो वह श्रीमन्त व्यक्तियों के लिये धारणीय है। गोमेद स्वच्छ, कान्तियुक्त श्वेत रंग का पीतवर्ण भी होता है।

छाया

गोमेदं पीतरक्ताभं प्राधान्येन प्रदृश्यते ।
छाया चतुर्विधा तस्मिन् दृश्यते नात्र संशयः ॥—रसजलनिधि
छाया चतुर्विधा श्वेता रक्ता पीताऽसिता तथा—युक्तिकल्पतरु

जाति

अर्थात् गोमेद में प्रधान रूप से पीतरक्ताभा ही प्रदर्शित होती है, फिर भी उसमें से किसी गोमेद से सफेद और किसी से लाल तथा किसी से पीली एवं किसी से काली छाईं या आभा छिटकती है ।

चतुर्धा जातिभेदास्तु गोमेदेऽपि प्रकाश्यते ।
ब्राह्मणः शुक्लवर्णः स्यात् क्षत्रियो रक्त उच्यते ॥
आपीतो वैश्यजातिस्तु शूद्रस्त्वानील उच्यते ।—युक्तिकल्पतरु

अर्थात् गोमेद में जात्यानुसार किसी गोमेद से सफेद रंग प्रधानरूप से प्रस्फुटित है और किसी प्रकार लाल, पीला या काला रंग भी प्रस्फुटित होता है । श्वेत को ब्राह्मण, लाल को क्षत्रिय, पीत को वैश्य तथा काले को शूद्र जाति का गोमेद कहते हैं ।

उत्कृष्ट गोमेद

गुरुः प्रभाढ्यः सितवर्णरूपः स्निग्धो मृदुर्वाति महापुराणः ।
स्वच्छस्तु गोमेदमणिर्धृतोऽयं करोति लक्ष्मीं धन-धान्यवृद्धिम् ॥
—युक्तिकल्पतरु

गोमूत्राभं यद् गुरुस्निग्धशुक्लं शुद्धच्छायं गौरवं] यत्र धत्ते ।
हेमारक्तं श्रीमतां योग्यमेतद् गोमेदाख्यं चैव शंसन्ति सन्तः ॥
—नि० रत्नाकर

सुस्वच्छगोजलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं समं गुरु ।
निर्दलं मसृणं दीप्तं गोमेदं शुभमष्टधा ॥—रसजलनिधि

अर्थात् वह गोमेद उत्कृष्ट श्रेणी का समझा जाता है जो गुरु (Heavy) स्वच्छ या पारदर्शक (Transparent) गोमूत्र के समान पीतारुणवर्ण, समस्त तलप्रान्त समान (Levelsurfaced), सुचिक्कण (Smooth), दीप्तिमान् (Brightness), निर्दल (Devoid of layers), देखने में मंजुल, सुन्दर, मन को आकर्षक (Attractive तथा पुरानी खानियों से निकाला गया एवं पृथ्वीस्थ निम्नतम गर्तों से निष्कासित हो—वही गोमेद उत्तम फलप्रदायक होता है ।

निकृष्ट गोमेद

लघुर्विरूपोऽतिखरो हन्यमानः स्नेहोपलिप्तो मलिनः खरोऽपि ।
करोति गोमेदमणिर्विनाशं सम्पत्तिभोगाखिलकीर्तराशेः ॥—युक्तिकल्पतरु

कुरंगं श्वेतकृष्णाङ्गं रेखात्रासान्वितं लघु ।
विच्छायं शर्करारंगं गोमेदं विबुधस्त्यजेत् ॥—नि० रत्नाकर
विच्छायं लघु रूक्षांगं चिपिटं पटलान्वितम् ।
निष्प्रभं पीतकाचाभं गोमेदं न शुभावहम् ॥—रसजलनिधि

अर्थात् वह गोमेद निकृष्ट श्रेणी का समझा जाता है—जो लघु (Light), खुरदरापन (Rough surfaced) लिये होते हैं । छायारहित (Devoid of secondary colours), दलयुक्त (With layer), विषमतलप्रान्त (Flat shaped), प्रभारहित (Devoid of Brightness), रेखा एवं त्रास युक्त (With lines & nonattractive) पीले कांच के समान (Like a yellow glass), सफेद और काले दागवाला (With white & black spots) हो—वह गोमेद अशुभ और हानिकारक होता है ।

दोष (Defects)

ये दोषा हीरके ज्ञेयास्ते गोमेदमणावपि ।
मलो विन्दुस्तथा रेखा त्रासः काकपदस्तथा ।
एते दोषाः समाख्याताः पञ्च गोमेदेषु यद्बुधैः ॥—युक्तिकल्पतरु
भस्माभं काकपदश्च रेखाक्रान्तं च वर्तुलम् ।
आधारमलिनं विन्दुमात्रयुक् स्फुटितं तथा ॥
नीलाभं चिपिटं रूक्षं तद् गोमेदं दोषलं त्यजेत् ॥—रसजलनिधि

अर्थात् गोमेद में भी वही दोष पाये जा सकते हैं जो हीरे के दोष गिनाये गये हैं । गोमेद में मुख्यतः दोष मल (Dirtiness), (गारः कर्दमं मल-मित्यर्थः गार, कर्दम और मल शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं), बिन्दु (Spots), रेखा (Lined spots), त्रास (Non-attractive) भयावह (Crackness), भस्माभ (Ash–colour), कौवे के पैर के समान चिह्नित (Crow's feet–spots), वर्तुलाकृति (Cylindrical shaped), मलिनतायुक्त अधस्तल (Darken base), स्फुटित (Cracked) नीलाभा-युक्त (Bluish Colour) आदि पाये जाते हैं । इन दोषों से युक्त गोमेद का किसी भी रीति से उपयोग नहीं करना चाहिये ।

सम्प्रति जयपुर, वाराणसी, बंबई और कलकत्ता आदि के जौहरीवर्ग में रत्नों के दोषों के विषय में अनेक पारिभाषिक शब्द व्यवहार में आते हैं । ये समस्त पारिभाषिक शब्द हिन्दी भाषा के ही हैं । भारत के प्रायः बड़े नगरों में जयपुर के जौहरियों के ही व्यवहार में आने वाले शब्दों का व्यवहार होता है । गोमेद के अधोलिखित दोष और उनका फल निम्न प्रकार है—

(१) रूखा—रूक्ष और खुरदरा गोमेद धारण करने से मनुष्य पथभ्रष्ट हो जाता है ।

(२) छाल—गोमेद यदि स्तर या परतयुक्त हो और उसे धारण किया जाय तो समस्त शरीर में चकत्ते पड़ जाते हैं।

(३) अबरखी—यदि गोमेद में अबरख के समान आभामय दोष हो तो वह चोरों के द्वारा धन हरण करवा देता है।

(४) गढ़ा—यदि किसी प्रकार का गढ़ा हो तो वह पशु-धन का नाश करता है।

(५) चीर—यदि चीरे के समान चिह्न हो तो वह शरीर में रक्त संबंधी व्याधियाँ उत्पन्न करता है।

(६) धब्बा—यदि किसी भी प्रकार का धब्बा (Spots) हो तो वह अपने निवासस्थान को छुड़वा देता है।

(७) दुरंगा—यदि गोमेद में दुरंगापन हो तो वह पिता के लिये दुःख-कारक होता है।

(८) श्याम—यदि गोमेद में काला विन्दु हो तो वह स्त्री के लिये दुःखदायी होता है।

(९) रक्तबिन्दु—यदि लाल बिन्दु हो तो वह पुत्र के लिये दुःखद होता है।

(१०) सफेद बिन्दु—यदि सफेद विन्दु के हो तो वह स्वयं के अंग में कोई न कोई रोग उत्पन्न करता है।

(११) जाल—यदि जाल (Net) के समान कोई चिह्न हो तो वह बहुत-सी व्याधियाँ उत्पन्न करता है।

(१२) सुन्न—यदि गोमेद में सुन्न या शून्य के समान आकृति बनी पायी जाय तो वह शरीर में पंगुरोग उत्पन्न करता है।

पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार गोमेद

(१) रासायनिक संगठन (Chemical composition)—गोमेद जिरकोनियम् (Zirconium) नामक तत्त्व का सिलिकेट (Silicates) है। इसका रासायनिक सूत्र ($ZrSiO_4$) है। कुछ या कोई-कोई गोमेद का रासायनिक संगठन (ZrO_2SiO_2) भी पाया गया है जो कि रासायनिक दृष्टया एक ही बात है। कृष्णाभायुक्त गोमेद में किंचित् अल्प मात्रा में लौहांश भी पाया जाता है।

(२) कठोरता (Hardness) और आपेक्षिक गुरुत्व (SP. Gravity)—कठोरता एवं आपेक्षिक गुरुत्व के आधार पर गोमेद तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

(अ) प्रथम गोमेद की कठोरता ७.५ और आपेक्षिक गुरुत्व ४.९ है।

(ब) द्वितीय गोमेद की कठोरता ६.५ और आपेक्षिक गुरुत्व ४ से लेकर ४.५ तक है।

(स) तृतीय गोमेद के आँकड़े इन दोनों प्रकारों के बीच के होते हैं। यदि इस प्रकार को सूर्यरश्मियों में अथवा अग्निस्ताप में रखा जाता है तो वह पृथक् प्रकार का आपेक्षिक गुरुत्व धारण कर लेता है।

(३) रूप-रंग और लक्षण—गोमेद के मणिभ (Crystals) त्रिपार्श्वाकृति के होते हैं। इन मणिभों को तोड़ा जाय तो भी ये त्रिपार्श्वाकृति में ही टूटकर अपूर्ण मणिभों में टूटते हैं। रंग में गोमेद नील, नीलाभ, अरुण, अरुण-पीत, पीतारुण, रक्त, रक्ताभ, श्वेत एवं भूरे होते हैं। गोमेद पारदर्शक, पारभासक अथवा अपारदर्शक होते हैं। पारदर्शक गोमेद आभूषणों के लिए उत्तम श्रेणी के होते हैं। गोमेद की दीप्तिमत्ता एवं कठोरता की दृष्टि से यह रत्न माणिक्य, नीलम अथवा हीरक के पश्चात् अपनी श्रेष्ठ प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। मदुरा (सीलोन) के गोमेद, जो कि सूर्यताप अथवा अग्निताप के द्वारा श्वेतवर्ण के बना लिये जाते हैं, कभी-कभी हीरक-द्युति के समान दिखाई देते हैं। व्यावसायिक चातुर्य्य से इनका नाम भी 'मदुरा हीरक' पड़ गया है। सीलोनी व्यापारी श्वेत गोमेद को साधारण ग्राहकों के हाथ श्वेत पुखराज या कभी-कभी हीरा कहकर बेच देते हैं। भारतीय ज्योतिषशास्त्रानुसार गोमेद का रंग पीतारुण वर्ण ही माना गया है। अतएव भारतीय जौहरी अनजान ग्राहकों को इस कीमती गोमेद के स्थान पर इसके रूप-रंग से मिलते-जुलते रंगवाले 'सिनामोन स्टोन' का विक्रय कर देते हैं। 'सिनोमोन स्टोन' आधुनिक दृष्टि से उपरत्न माना जाता है एवं यह स्फटिक के अनेक भेदों में से एक भेद है। यह कठोरता आदि की दृष्टि से बहुत ही निम्न श्रेणी का उपरत्न है। गोमेद केवल रत्न ही नहीं अपितु महारत्न माना जाता है।

(४) औद्योगिक महत्व—गोमेद का उपयोग आभूषणों एवं औषधोपचार में तो होता ही है, परन्तु सब से अधिक परिमाण में इसका उपयोग औद्योगिक रूप में होता है। 'ज़िरकोनियम आक्साइड' नामक द्रव पदार्थ के रूप में यह लौह की तरलावस्था में मिलाकर लोहे को परमोत्कृष्ट बनाने के लिये उपयोग किया जाता है। अनेक धातुओं को तरलावस्था में लाने के लिये अत्यधिक तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है। साधारण भट्ठियाँ अधिक तापक्रम सह सकने में असमर्थ होती हैं, अतएव इन भट्ठियों के उपादान लौह एवं सीमेण्ट के साथ जिरकोनियम आक्साइड (अर्थात् गोमेद यौगिक) को मिलाकर भट्ठियाँ बनाते हैं। ये भट्ठियाँ अत्यधिक तापक्रम-सहिष्णु होती है। उच्चश्रेणी की घड़ियों के पुर्जों के संयोजन-स्थान पर गोमेदरत्न की छोटी-छोटी कणिकाएं जड़ाव के रूप में काम आती हैं। घड़ियों का जीवन गोमेद जैसे

रत्नों के सहयोग के कारण ही बहुवर्षायु होता है। पुर्जे आपस में शीघ्र नहीं घिस पाते।

(५) कृत्रिम गोमेद—डा० एच० सेन्टक्लेयर (Dr. H. Saintecla-ire Devile) नामक वैज्ञानिक ने एक पोर्सलीन की ट्यूब में खनिजात्मक मृत्तिकामय जिरकोनियम (Earth Zirconia) के साथ सिलीसियम फ्लोराइड (Silicium floride) का सम्मिलन कर उष्णता प्रदान करके अमणिभाकृति के कृत्रिम गोमेद का निर्माण किया। तदनन्तर अक्टाहेड्रल क्रिस्टल (Octah-edral crystals) के रूप में विशिष्ट तापक्रम प्रदान करके सुन्दर मणिभाकृति-मय गोमेद प्रस्तुत किये। इस प्रकार के प्रस्तुत गोमेद अतीव सुन्दर, आकर्षक, मंजुल, नयनाभिराम, यहाँ तक कि प्राकृतिक गोमेद को भी मात कर देनेवाले थे। परन्तु प्राकृतिक गोमेद के बराबर कठोरता, आपेक्षिक गुरुत्व आदि प्रमुख लक्षणावली अनेक प्रयत्न करने पर भी नहीं आ पाई।

(६) गोमेद (Zircon) का आपेक्षिक निदर्शन—निम्नोल्लिखित सारणी के आधार पर निम्नरत्नों के समान एक ही रूपरंग होने पर भी वैज्ञानिक साधनों द्वारा गोमेद का हम सरलतापूर्वक पृथक् निर्णय कर सकते हैं—

रत्ननाम	कठोरता (H)	आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	आवर्तनाङ्क (R. I.)	द्वि-वर्तनाङ्क (D.R.I.)	द्विवर्णत्व (Dichroism)
साधारण गोमेद (Normal Zircon)	७·५	४·६९	१.९३ से १.९९	·०५९	निर्बल, (नील सुदृढ़)
एल्मैनडाइन (Almandine)	७·५	४.२०	१.८१	नहीं	नहीं
निम्नश्रेणीय गोमेद (Low Zircon)	६·५	३.९६	१.७९	नहीं	अत्यन्त निर्बल।
नीलम	९·०	४.००	१.७६	.००८	Distinct
डेमेनटाइड (Demantide)	६.५	३.८५	१.८९	नहीं	नहीं
स्पिनल लालड़ी (Spinal)	८.०	३.६३	१.७२७	नहीं	नहीं
श्वेत पुखराज (Whith Topaz)	८·०	३·५६	१.६१	·०१	नहीं
स्फेने (Sphene)	५.०	३.५३	१.९० से २.०२	·१२	Distinct
हीरकमणि	१०.०	३.५२	२.४२	नहीं	नहीं
पेरीडोट (Peridote)	६.५	३.३४	१.६५	·०३६	निर्बल
वैक्रान्त (Turmeline)	७.०	३.०८	१.६२ से १.६४	.०१८	सुदृढ़

गोमेद और ज्योतिष-शास्त्र

(१) गोमेदः प्रियकृद्राहोरीपत्पीतारुणप्रभः ।

राहुग्रह की और गोमेद रत्न की ज्योतिष शास्त्रानुसार परस्पर में मैत्री है। राहु की कुदृष्टि होने पर मानव शरीर में अनेक शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। विशेषतः मानसिक व्याधियाँ अथवा ऊर्ध्वजत्रुज (ग्रीवा से ऊपर के रोग) व्याधियाँ अवश्य होती हैं। उन व्याधियों के प्रशमनार्थ गोमेद का धारण, दान अथवा औषधिरूप में सेवन करने का विधान बताया गया है।

(२) सुन्दर आभामय गोमेद धारण करने से प्रबल शत्रु भी सामने आने में हिचकता है। इसका अंगूठी आदि आभूषणों में पहिने रहने से अन्न, धन, सुत, सम्पत्ति अथवा वैभव की समुपलब्धि होती है। जिन व्यक्तियों की जन्म-पत्रिका में नीचराशि का राहु लग्नस्थान में स्थित हो तो गोमेद का आभूषणों में धारण करना विशेष लाभप्रद या शुभदायक होता है। श्वेत आभामय गोमेद ब्राह्मण को, अरुण आभामय गोमेद क्षत्रिय एवं पीताभायुक्त वैश्य को तथा कृष्णाभामय गोमेद शूद्र को धारण करने का विधान है।

(३) कतिपय अनुभवी ज्योतिषियों की राय है कि यदि जन्म-पत्रिका में राहु के साथ सूर्य, चन्द्र अथवा मंगल की युक्ति हो तो दोषयुक्त गोमेद भी अपना कुफल न देकर शुभफल-प्रदायक ही होगा।

(४) ज्योतिष शास्त्रानुसार यह निर्देश किया गया है कि जब नवरत्नों की अंगूठी बनवायी जाय तो उसमें गोमेद का नगीना दक्षिण-पश्चिम (South-west) दिशा में मढ़वाना चाहिये।

(५) पाश्चात्य ज्योतिषी किरो (Chiro) महोदय के कथनानुसार गोमेद को धारण करने से मनुष्य स्वस्थ रहता है, सम्पत्ति आती है और मनुष्य भद्रतामय जीवन-यापन करते हुए सामाजिक प्रतिष्ठा उपलब्ध करते हैं।

(६) गोमेद पहिन कर जो लोग शिकार खेलने जाते हैं उन्हें वन्य हिंस्रक-पशुओं से किसी भी प्रकार का शारीरिक भय नहीं प्राप्त होता।

(७) गोमेद को धारण करने से दाम्पत्य-जीवन सुखमय व्यतीत होता है। स्नेह-बन्धन बना रहता है और दिनोदिन स्नेहबन्धन प्रगाढ़ होता जाता है।

(८) युद्धक्षेत्र में गोमेद अवश्य धारण करना चाहिये। अंग्रेजों का विश्वास है कि युद्धक्षेत्र में यदि आहत होकर किसी स्थान से खून बह रहा हो तो गोमेद मुख में रखकर चुगलने से खून बन्द हो जाता है।

(९) यदि किसी प्रेयसी का प्रियतम युद्ध में गया हो तो वह गोमेद को प्रातःकाल नित्य मुख में रखकर चूसती है एवं बराबर चुम्बन करती है। प्रेयसी को यह विश्वास रहता है कि ऐसा करने से उसका प्रियतम सकुशल घर लौटेगा।

गोमेद के विषय में विद्वानों का भ्रम

अथर्ववेद तथा गरुड़ पुराण में 'गोमेद' शब्द अथवा गोमेद का परिचय नहीं पाया जाता। ऋग्वेद, अथर्ववेद में मणिमुक्ता-वज्रादिक रत्नों के विषय में अनेक स्थलों पर प्रकीर्णावस्था में जिक्र आया है, परन्तु गोमेद का नहीं। रामायण एवं महाभारत में भी गोमेद का जिक्र नहीं पाया जाता। गरुड़ पुराण के अनेक अध्यायों में केवल रत्नों को लेकर ही उनकी उपादेयता उल्लिखित है, परन्तु गोमेद की गणना न तो रत्नों में की गई है और न उपरत्नों में ही। इसके बाद कतिपय पुराणों में कल्पवृक्ष का वर्णन करते समय उसकी शाखाएं, पत्र, पुष्प, तना आदि रत्नों द्वारा बने हैं—ऐसा उल्लेख पाया जाता है। कल्पवृक्ष के नवीन किसलय गोमेद से बने हैं। इस वृक्ष के किसलय पीतारुण, सुचिक्कण, दीप्तिमान् होते हैं—गोमेद का रूप-रंग भी ठीक किसलय के समान ही होता है। अग्नि पुराण, बृहत्संहिता (वराहमिहिर), युक्तिकल्पतरु (राजाभोजकृत) आदि ग्रन्थों में गोमेद की रत्नों में परिगणना की गयी है। आचार्य वाग्भटकृत 'रसरत्नसमुच्चय' में भी गोमेद की गणना रत्नों में ही की गयी है। राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर कृत 'मणिमाला' नामक ग्रन्थ में गोमेद का अच्छा वर्णन मिलता है, हालांकि राजा साहब ने राजाभोजकृत 'युक्तिकल्पतरु' के समस्त श्लोकों का उद्धरण करके उसका अंग्रेजी, संस्कृतादि में अनुवाद किया है। राजाभोज (६ वीं शताब्दी) के बाद का लिखा गया 'राजनिघण्टु' नामक निघण्टु शास्त्र में भी गोमेद रत्न माना गया है, साथ ही गोमेद के अनेक पर्यायवाची शब्द लिखते हुए एक पर्याय 'पिंगस्फटिक' भी लिखा है। राजनिघण्टु के बाद के भी निघण्टुओं में प्रायः 'पिंगस्फटिक' पर्याय आता गया है। सम्भवतः इसी 'पिंगस्फटिक' शब्द को लेकर आधुनिक अंग्रेजी में टीका करनेवाले विद्वानों ने गोमेद को स्फटिक (Quarts) का एक भेद मान कर Agate एवं Onyx आदि शब्दों में अनुवाद कर दिया। Agate एवं Onyx स्फटिक के अनेक प्रकारों में से एक प्रकार हैं। आधुनिक रत्न-वैज्ञानिकों ने एवं प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने भी स्फटिक को उपरत्न माना है तथा गोमेद को आधुनिक एवं प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक दोनों ने रत्न और कहीं-कहीं महारत्न तक मान लिया है। १८ वीं शताब्दी के प्रथम पाद में जर्मन भाषा में लिखे गये ग्रन्थ 'The curious lore of the precious stones' में

गोमेद का पर्याय जारगून (Zargoon) लिखा पाया जाता है। आज से ८० वर्ष पूर्व इस ग्रन्थ का जर्मन भाषा से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ है। ज़ारगून लेटिन शब्द है। इस शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर जिरकॉन (Zircon) हुआ है। 'रसजलनिधि' के रचयिता महोदय ने गोमेद का अनुवाद Zircon करते हुए भी 'पिंगस्फटिक' शब्द की व्याख्या में (A kind of quartz) लिख दिया है जो कि नितान्त भ्रमोत्पादक है। वैज्ञानिकों के रासायनिक विश्लेषण की तात्त्विक दृष्टि से Quartz और Zircon में नितान्त पार्थक्य है। आचार्य कुलकर्णी महोदय ने 'रसरत्नसमुच्चय' की टीका में और डा० वामन गणेश देसाई महोदय ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय रसशास्त्र' (मराठी) में गोमेद को Agate लिखकर विशेष भ्रम फैलाया है। बाद के 'भावप्रकाश निघण्टु' के अनुवादकों ने भी इसी परम्परा को चलाते हुए किन्हीं महाशय नेAgate और किसी महोदय ने Onyx लिख दिया है।

यथार्थतः पिंगस्फटिक' शब्द गोमेद का पर्याय रूप में गोमेद का रंग निर्देशक शब्द है, न कि स्फटिक का एक पिंगलवर्णीय प्रकार। रासायनिक सूत्र के आधार पर इतना अवश्य है कि गोमेद में Zirconium तत्त्व के यौगिक रूप में सिलिका (सिकता) का भी अंश है अवश्य, परन्तु सिकता रहने मात्र से ही 'गोमेद' को स्फटिक प्रकार समझ लेना नितान्त भ्रममूलक है।

पिंगलवर्णीय स्फटिक एवं गोमेद की पहिचान करते समय जौहरियों तथा वैद्यों में समानवर्णता के नाते भ्रान्ति अवश्य पैदा हो सकती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए जौहरियों एवं वैद्यों को राजाभोज ने अपने 'युक्तिकल्पतरु' नामक ग्रन्थ मे यह कहकर सावधान किया है—

परीक्षा वह्नितः कार्या शाणे वा रत्नकोविदैः।
स्फटिकेनैव कुर्वन्ति गोमेद प्रतिरूपिणम् ॥

—अलंकार—धृतियुक्तिः—युक्तिकल्पतरु

बादशाह अकबर के समय में लिखे गये 'आइने अकबरी' ग्रन्थ में भी गोमेद को रत्न मान कर उसके दो प्रमुख उपरत्न माने गये हैं। यही परम्परा जयपुर आदि नगरों के जौहरियों में अभी तक चली आ रही है। गोमेद के दो प्रमुख उपरत्न हैं—संगे तुरसावा और संगे साफी। तुरसावा और साफी में गोमेद के कुछ लक्षण तो अवश्य हैं परन्तु गोमेद के समान ही दीप्ति आदि लक्षण न होकर साधारण लक्षण होते हैं अथवा गोमेद के लक्षणों में से भिन्न भी होते हैं। तुरसावा एवं साफी का आजकल बढ़ियों व भट्ठियों आदि की उपादेयता को विशेषरूप से बढ़ाने के लिये प्रयोग होता है। जौहरी वर्ग में तुरसावा और साफी जिन उपरत्नों को कहा जाता है उनमें Zirconium

नामक तत्व नहीं पाया जाता। यथार्थतः यह दोनों उपरत्न स्फटिक (Quartz) के ही प्रकार हैं। इन दोनों उपरत्नों में सिकता (Silica) की मात्रा की ही प्रधानता है। सिनामोन स्टोन्स (Cinamon stones) में इन दोनों को आधुनिक रत्न विज्ञान के अनुसार सम्मिलित कर लेना चाहिये।

गोमेद का मूल्य

ईसा पूर्व ३०० वर्ष में चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री चाणक्य विरचित कौटिल्य अर्थशास्त्र में सराफा बाजार और जौहरी बाजार पर नियंत्रण रखने का उल्लेख मिलता है। तीसरी शताब्दी के ग्रन्थ बराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता' में भी रत्नों के मूल्य-निर्धारण उल्लेख है। ६ वीं-शताब्दी के राजाभोज के द्वारा लिखित 'युक्तिकल्पतरु' में प्रत्येक रत्न के मूल्य का निर्धारण राज्य-नियमानुसार होने का वर्णन है।

शुद्धस्य गोमेदमणेस्तु मूल्यं, सुवर्णतो द्वैगुणमाहुरेके।
अन्ये तथा विद्रुमतुल्यमूल्यं, तथापरे चामरतुल्यमाहुः॥

—अर्थात् कोई विद्वान् उत्कृष्ट श्रेणी के गोमेदमणि का मूल्य द्विगुण स्वर्ण के बराबर बताते हैं यानी ५ रत्ती गोमेद को १० रत्ती स्वर्ण से विनिमय किया जाना चाहिये। कोई विद्वान् प्रवाल या मूँगा के बराबर और कोई चामरी गाय के पुच्छ केशों (चँवर) के बरावर होना चाहिये—ऐसा कहते हैं।

राजा भोज के पश्चात् राजा सोमेश्वर (१३ वीं शताब्दी) के समय में भी रत्नों का मूल्य निर्धारित था। अकबरकालीन (१६ वीं शताब्दी) 'आइने अकबरी' ग्रन्थ में भी नियंत्रित मूल्य का उल्लेख है। ब्रिटिशकाल एवं आज के स्वतन्त्र भारत में अमेरिका के मूल्य-निर्धारण पर संसार का समस्त जौहरी बाजार नियंत्रित है, फिर भी जिस प्रकार स्वर्ण के मूल्य का निश्चितिकरण और तदनुसार समस्त व्यवसायिक विनिमय होता है—रत्नों के मूल्यों पर व्यवहारतः कोई भी नियन्त्रण नहीं है। आज आप जयपुर या बम्बई बाजार से गोमेद नगीना १००) में खरीद कर १५ दिन बाद ही बाजार में बेचने जायं तो प्रत्येक जौहरी उसका मूल्य अपनी मनमुखतारी से चाहे जो कुछ भी लगा सकता है। इस बात नी सुनवायी राज्य के किसी भी कोने में नहीं हो सकती। आज के भारत में भारतीय जौहरियों के पतन का यह भी एक प्रमुख कारण है। इस समय उत्कृष्ट श्रेणी के गोमेद का मूल्य ५) रत्ती के भाव से लेकर १००) रत्ती तक का है। विशिष्ट गुणलक्षणावलीमय गोमेद १०००) से १५००) रत्ती के भाव से भी बिकता है। रत्नों के विषय में तो इस समय विशेषकर भारत में 'जैसा ग्राहक वैसा मूल्य' वाली कहावत चरितार्थ होती देखी जा रही है।

गोमेद के गुणधर्म

गोमेदं कफ-पित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयङ्करम् ।
दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम् ॥—रसरत्नसमुच्चय
गोमेदकोऽम्लश्चोष्णश्च वातकोपविकारनुत् ।
दीपनः पाचनश्चैव धृतोऽयं पापनाशनः ॥—राजनिघण्टु

अर्थात्—गोमेद की भस्म कफ, पित्त एवं वायु-विकार नाशक है। यह पाण्डुरोग और शरीरस्थ-धातुओं के क्षय को नष्ट करती है। यह दीपन, पाचन रुचिवर्धक, त्वचारोगनाशक एवं मन्द, निष्क्रिय अथवा अव्यवस्थितबुद्धि को जागरित कर बुद्धिवर्धन करती है। गोमेद के धारण करने से पूर्वकृत पाप का नाश होता है एवं आगे जीवन में पाप-कर्मों की ओर प्रवृत्ति नहीं जाती। बुद्धि को बढ़ाने में गोमेद भस्म एक प्रसिद्ध द्रव्य माना जाता है।

हकीमी मतानुसार गोमेद पिष्टी (कुश्ता) दिल को कुव्वत देती है। मुँह से खून आने में व खासकर हैजे के खून में इसका इस्तेमाल बहुत ही मुफीद है। गोमेद अपने पास रखने या अँगूठी में मढ़वाकर पहिनने से गुस्से की हिद्दत व तेजी को तस्कीन देता है। गम को दूर करता है। गोमेद का सुर्मा बयाजे चश्म (आँखकी सफेदी फूला-माँडा) में अंजन करने से बहुत लाभदायक होता है। बच्चों को तावीज में गोमेद बाँधकर पहनाने से बच्चों का नींद में चौंकना बन्द होता है।

शोधन

नीबू के रस में दोलायन्त्र विधि से १२ घण्टे तक परिस्विन्न करने से बहुत ही उत्तम प्रकार से गोमेद की शुद्धि हो जाती है।

मारण

विशोधित गोमेद को अच्छी प्रकार से विचूर्णित करके मनःशिला, हरताल और गन्धक गोमेदचूर्ण के बराबर परिणाम में लेकर सात दिनों तक नीबू के स्वरस में घोटें और चक्रिका बनाकर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार से आठ बार फूँकें। इस विधि से उत्तम प्रकार की गोमेद भस्म तैयार हो जायगी।

मात्रा

चौथाई रत्ती से लेकर १ रत्ती पर्यन्त बल, काल और आयु को देखकर प्रयोग में लाना चाहिये।

आमयिक प्रयोग

प्रायः समस्त रसग्रन्थों में केवल गोमेद के स्वतन्त्र रूप से उपयोग नहीं पाये जाते। कलकत्ते के कुछ बंगाली कविराजों से बातचीत के सिलसिले में यह एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण बात मालूम हुई कि गोमेद की भस्म का प्रयोग उन रोगियों पर सफलताप्रदायक है जिनको यह अनुभव होता हो और

रोगी यह कहता हो कि मुझे ऐसा मालूम होता है कि मानो मेरा सिर ही नहीं है। मेरा सिर नितान्त खोखला हो गया है—पोला पड़ गया है। बात कुछ जँची और मैंने सोचा कि यथार्थतः राहु ग्रह जब प्रकुपितावस्था में होता है तो सर्वप्रथम उसका प्रभाव मस्तिष्क पर अवश्य पड़ना चाहिये। परिणाम-स्वरूप मैंने योषापस्मार, अपस्मार, उन्माद, अनिद्रा आदि रोगों पर आजमायश करना प्रारम्भ किया। कुछ रोगियों की जन्मपत्री भी देखी गयी। जिन रोगियों की जन्मपत्रिका में राहु की स्थिति ठीक नहीं थी—गोमेद धारण एवं भस्म का भी प्रयोग किया गया। अभी तक मैं ६ रोगियों को, जिनमें २ अनिद्रा के, १ मिरगी का और ३ योषापस्मार की रोगिणियाँ थीं—स्थायी लाभ पहुँचा चुका हूँ। अनेक रोगियों में असफलता भी मिली है। असफलता के कारणों में मुख्यतः कुछ रोगी अधैर्यवान, निम्नश्रेणी के नितान्त दरिद्र और कुछ स्त्रियाँ नितान्त प्रमादी एवं विधवा होने के कारण जीवन से निराश तथा चिकित्सानुरागिणी न होने से नियमित मेरे सम्पर्क में नहीं आ पाती थीं।

शास्त्रीय योग

(१) राजमृगांक रस (नवरत्न राजमृगांक)—यह 'योग-रसराज-सुन्दर' एवं 'योगरत्नाकर' नामक ग्रन्थों में उल्लिखित है। इसमें अन्यान्य रत्नों के अलावा गोमेद भी पड़ता है। इस योग का उपयोग सोपद्रव वात-रोगों में, २० प्रकार के प्रमेह, दुर्जय वातरक्त, अपस्मार एवं कामशक्ति विवर्धनार्थ होता है।

(२) दिव्य खेचरी गुटिका (रसरत्नसमुच्चय)—इस योग में भी गोमेद पड़ता है।

(३) सर्वेश्वर पर्पटी रस (रसरत्नसमुच्चय)—इस योग में भी गोमेद पड़ता है। इसका प्रयोग अनेक रोगों में अनुपान भेद से होता है। यह कैन्सर के लिये विशेषतया रामबाण रूप से उल्लिखित है।

(४) रत्नभागोत्तर रस (रसचन्द्रिका, रसरत्नसमुच्चय)—यह योग मुख्यतः वन्ध्यत्वनाशक एवं मेधा और कामशक्ति विवर्धक है। इसमें भी गोमेद अन्य रत्नों के साथ समान मात्रा में पड़ता है।



पुखराज

(Topaz)

मुख्य-मुख्य भाषाओं के नाम

संस्कृत—पुष्पराग, मञ्जुमणि, वाचस्पति वल्लभ, पुष्पराज, पीतरक्तमणि, पीतमणि, गुरुरत्न, गुरुवल्लभ आदि। हिन्दी—पुखराज, पोखराज। बंगला—पोखराज, पुष्यराज। गुजराती—पीलुराज, पुखराज। पंजाबी—फोकज्। कनाड़ी—पुष्पराग। तेलगु—पुष्परागम्। बर्मी—आउटफिया (Outfia) सीलोनी—रत्नपुष्परागय। चीनी—सी·लेंग·स्याक (Si-Lang-syak) अरबी—याकूत-अल्-अज़रक (Yakoot-Al-azarak)। अंग्रेजी—टोपाज (Topaz)। लेटिन—टोपेज़ियो (Topagio)।

उत्पत्तिस्थान

(१) भारतीय क्षेत्र—भारतवर्ष में पीतवर्ण के कुरुविन्द (कोरेण्डम) जाति के एवं स्फटिक (बिल्लोर·Quortz) जाति के अनेकों प्रकारों में रत्नोपरत्न पाये जाते हैं। परन्तु असली पुखराज भारतवर्ष में पाया ही नहीं जाता। जिन-जिन ग्रन्थों में प्राच्य पुष्पराग (Oriantal Topaz) शब्द का उल्लेख है—ओरियेण्टल शब्द से भारतवर्ष का ग्रहण करना उपयुक्त नहीं है अपितु 'उत्तरएशिया' अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

राजा-भोज कृत 'युक्तिकल्पतरु' नामक ग्रन्थ में अधोलिखित स्थान का उल्लेख है।

दैत्यधातुसमुद्भूतः पुष्परागमणिर्द्विधा।
पद्मरागाकरे कश्चित् कश्चित्तार्क्ष्योपलाकरे ॥

इस श्लोक के आधार पर यह सिद्ध नहीं होता कि भारतवर्ष में पुखराज पाया जाता है। कहीं-कहीं किसी-किसी 'पद्मराग' (माणिक्य-Ruby) की एवं तार्क्ष्योपल (मरकत पन्ना Emerald) की खानियों में ही पाये जाने का निर्देशमात्र है। यदि भारतवर्ष में किसी भी स्थान में चाहे अल्पातिअल्प परिमाण में भी पाया जाता तो भोजराज अवश्य ही उस स्थान का स्पष्ट उल्लेख करते—जैसा कि उन्होंने अन्य अनेकों रत्नों के उद्भवस्थानों का उल्लेख किया है। परन्तु साथ ही उन्होंने 'हिमाद्रि' को पुखराज का उद्गम-स्थान लिखा अवश्य है। यथा—

पतितास्तु हिमाद्रौ हि त्वचस्तस्य सुरद्विषः।
प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणाः ॥

यहाँ पर भी 'हिमाद्रि' शब्द से भारतीय सीमान्तर्गत हिमालय का ही केवल बोध नहीं होता अपितु हिमालय की उत्तरीय सीमा का भी बोध होना चाहिये जो कि आधुनिक भूगर्भशास्त्रियों की खोज से मेल मिल जाता है।

हमारे भारतीय जौहरी पीतवर्ण स्फटिक (Yallow Quartz) को पुखराज के स्थान पर बेचते हैं और साथ ही यह कहकर भी बेचते हैं कि यह पुखराज भारतीय खानियों का पुखराज है। ऐसा कहना युक्तियुक्त और वैज्ञानिक अथवा प्रामाणिक बात नहीं प्रतीत होती। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि सभी जौहरी ऐसा व्यवसायिक व्यवहार करते हैं। बनारस और जयपुर के जौहरी ऐसा कहते बहुत ही कम पाये गये हैं।

पुखराज का भारतवर्ष में न पाया जाना एक और प्रामाणिक बात से सिद्ध होता है। फ्रांसीसी यात्री टेवरनियर ने औरंगजेब के दरबार में उपलब्ध पुखराज का वर्णन किया है। उसने यह लिखा है कि यह पुखराज औरंगजेब ने गोआ के राजा से खरीदा था। यदि औरंगजेब के दरबार में भारतीय खानियों से उद्भवित पुखराज होते तो औरंगजेब टेवरनियर को अवश्य दिखाता और टेवरनियर इस बात का अवश्य उल्लेख करता।

'रत्नपरीक्षा' नामक पुस्तक के लेखक ने भारत एवं भारतेतर स्थानों का उल्लेख इस प्रकार किया है।

तुरक ईरान ब्रह्म सैलान, कामरु उडिया पुरु स्थान।
मानद ब्रह्मनदी वैतरणी, विंध हिमाल खौंन बहुधरनी॥

तुर्किस्तान, ईरान, बरमा, सीलोन, कामरूपकमच्छा (आसाम) और उड़ीसा के पूर्वीय पर्वताञ्चल एवं विन्ध्याचल तथा हिमालय से निकलने वाली नदियों में भी पुखराज पाया जाता है।

मेरे विचार से उपर्युक्त भारतीय स्थानों में पाये जानेवाले पीतवर्णीय बिल्लौर का ही वर्णन होना चाहिये। आज भी उड़ीसा में बहनेवाली महानदी तथा विन्ध्य और सतपुड़ा के बीच में बहनेवाली नर्मदा नदी में पीतवर्णीय बिल्लौर (जो कि पुखराज का रंग के आधार पर साम्य उपस्थित करता है) बहुतायत से पाये जाते हैं।

भारतीय जौहरी कुरविंद (Corendum) एवं स्फटिक (बिल्लौर–Quartz) के पीतवर्णीय प्रकार को जानबूझ कर अथवा भ्रमवशात् पुखराज कह कर बेचना ठीक नहीं है। भारतवर्ष के पार्श्ववर्ती बरमा एवं सीलोन के पुखराज उत्कृष्ट श्रेणी के तो नहीं समझे जाते परन्तु फिर भी आखिरकार पुखराज तो होते ही हैं।

(२) विदेशीय क्षेत्र—

(१) वरमा की माणिक्य (Ruby) खानियों से कभी-कभी उत्तम श्रेणी के पुखराज उपलब्ध हो जाया करते हैं। दक्षिण वरमा के 'तव्हाय' नामक स्थान से तथा उत्तरीय वरमा के कठ मण्डलान्तर्गत 'सकंघाई' स्थान से साधारणतः मध्यम श्रेणी के पुखराज पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध होते रहते हैं। इन स्थानों के पुखराज 'मोगाक' नामक स्थान में विक्रय होकर संगृहीत होते हैं। अभी-अभी ३५–४० वर्ष पूर्व तक पुखराज के श्वेतवर्णीय पुखराज को साधारण जनता 'मोगाक हीरक' (Mogak–diamond) समझकर पहनती थी। यह कार्य मोगाक के जौहरियों का एक व्यावसायिक चातुर्य्य का नमूना था।

(२) ब्रेजिल-दुनियाँ में पुखराज की आवश्यकता पूर्ति के लिये ब्रेजिल का स्थान सर्वप्रथम है। ब्रेजिल के पुखराज की अपने रूप रंग एवं आभा और उत्तमता के कारण दुनियाँ भर में एक प्रकार की धाक सी जमी हुई है। ब्रेजिल के जौहरी बहुत ही कार्यपटु एवं विश्वसनीय कहे जा सकते हैं। इससे व्यावसायिक धोखा होने की प्रायः कम सम्भावना रहती है।

(३) सीलोन—सीलोनी पुखराज श्वेतवर्ण, पीतवर्ण एवं अन्यान्य वर्णों के होते हैं। साधारण जौहरियों को सीलोनी जौहरियों से सीधे पत्र-व्यवहार द्वारा पुखराज मँगाने में कभी-कभी बड़े झमेले में पड़ जाना पड़ता है। अतएव उन्हें या तो बम्बई अथवा जयपुर आदि शहरों के जौहरियों से ही खरीदना चाहिये। सीलोनी व्यापारी स्वयं भी भारत आते रहते हैं। उनसे प्रत्यक्ष माल देखकर खरीदना चाहिये। गड़बड़ी का कारण—पुखराज के प्रत्येक वर्ण के अनुसार पृथक् पृथक् नाम सीलोनी भाषा में होना है।

(क) 'रत्नपुष्परागय' (Ratnapushpa ragaya) को अंग्रेजी भाषा में 'किंगटोपाज' (King Topaz) सीलोनी आधुनिक जौहरियों ने नाम दे रखा है। 'रत्नपुष्परागय' सीलोनी भाषा में उस पुखराज को कहा जाता है जो कि पीतवर्ण अथवा किंचित् अरुण–पीतवर्ण–मांसीय वर्णवत् (Flesh–Coloured) होता है। यह यथार्थतः पुखराज नहीं होता अपितु 'कुरुविंद' (Corrundum) जाति का एक पीतवर्णीय प्रकार होता है।

(ख) 'पडियान' (Padiyan) शब्द सीलोनी भाषा में श्वेतवर्ण के पुखराज के लिये व्यवहृत होता है।

(ग) 'पुष्परागय' (Pushpa ragaya) शब्द पीतवर्ण के पुखराज के लिये होता है। यथार्थतः यह पीतवर्ण का नीलम होता है जो कि पुखराज के नाम पर चलाया जाता है। सीलोन में पुखराज श्वेत वर्ण के ही पाये जाते हैं। पीतवर्ण पुखराज सीलोन में बहुत ही कम और कभी-कभी घुणाक्षर रूप से उपलब्ध हो जाया करता है यह एक अलग अपवाद की बात है।

(घ) 'पच्चापडियान' (Pachcha padiyan) शब्द नील पीतवर्ण के पुखराज के लिये व्यवहृत होता है।

(४) यूरालपर्वताञ्चल—ब्रेजिल-पुखराज की उत्तमता के बाद यूराल का नम्बर आता है। इन उपर्युक्त स्थानों के अलावा रसिया, मैक्सिको एवं टासमानिया भी प्रसिद्ध हैं।

रूप, रंग और लक्षण---

पुष्परागं गुरुस्निग्धं स्वच्छं स्थूलं समं मृदुः।
कर्णिकार प्रसूनाभं मसृणं शुभमष्टधा ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

जो पुखराज हाथ में लेने से भारी प्रतीत हो, स्पर्श करने पर सुचिक्कण, स्थूल, समता लिये हुये, रंग पीले कनेर के रंग के समान अथवा अमलतास के फूल के रंग जैसा पीताभ वर्ण हो—इन ८ गुणों से युक्त पुखराज श्रेष्ठ होता है।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट पुखराज

निकषोपलसंघृष्टं वर्णं पुष्णाति यन्निजम्।
पुष्पराजन्तु तज्जात्यं मतं रत्नपरीक्षकैः ॥
विष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतं श्यामं नतोन्नतम्।
कपिशं कपिलं पाण्डु पुष्परागं परित्यजेत् ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

जो पुखराज गोबर में भलीभांति रगड़ने से उसका रंग मटमैला न होकर और भी विशेष समुज्ज्वल हो उठे तो समझना चाहिये कि यह पुखराज उत्कृष्ट श्रेणी का है। यदि पुखराज तेजहीन, खुरदरा, रूक्ष, पीलेपन के साथ-साथ काली झांई युक्त, काले विन्दुयुक्त, भूरेपन के साथ कुछ कालापन लिये हुये विषमाकार हो तो ऐसे पुखराज को निकृष्ट श्रेणी का समझना चाहिये।

उत्तम श्रेणी के पुखराज श्वेताभा लिये हुये कुछ पीतवर्ण के होते हैं। पीतवर्ण पुखराज को यदि कुछ आँच दिखाई जाय तो वह अपना रंग बदल देते हैं। यदि अत्यधिक गरम किया जाय तो वह नितान्त श्वेतवर्ण के हो जाते हैं।

पुखराज चुन्नी (Spinal) के बराबर ही कठोर होते हैं। यदि पुखराज पर हथौड़े से चोट लगाई जाय तो यह एक ही दिशा में टूटता है। पुखराज को किसी खास आकृति का बनाने के समय कारीगर बहुत ही सावधानी से काम लेते हैं। कभी-कभी पुखराज बीच में ही से टूटकर नष्ट-भ्रष्ट और बेकाम हो जाता है।

कई एक पुखराज सर्वोत्तम श्रेणी के होते हुए भी रंगविहीन होते हैं। रंगविहीन अर्थात् श्वेतवर्ण के पुखराज हीरे के साथ भ्रमित हो जाते हैं। हीरा और पुखराज में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि पुखराज हीरे के बराबर कठोर नहीं होता। पुखराज चुन्नी (Spinal) के बराबर कठोर होता है। पुखराज में प्रज्वलन की कमी होती है। गरम होने पर इसमें विद्युत् उत्पन्न हो जाती है। हीरे में ऐसा नहीं होता।

रंगविहीन पुखराज को फ्रेंचलोग 'गोटिस डीईउ' (Gouttes Deau) कहते हैं। ब्रेजिल में इसे 'पिंगाज डी एगोआ' (Pingas De agoa) कहते हैं। इसी श्रेणी के पुखराज को इंगलैण्ड में 'मिनाज नोवाज' (Minas Novas) कहा जाता है।

Emery मशीन द्वारा पुखराज की कटिंग होती है और Tripoli द्वारा पॉलिश किया जाता है। रंगीन पुखराज या तो पीतवर्णाढ्य होता है अथवा पीत नीलाभ होता है। इसका पीताभवर्ण सूर्यकिरणों के सम्पर्क में आकर नष्ट भी हो जाया करता है। एक अतीव सुन्दर सायबेरियन पुखराज ब्रिटिश म्यूजियम में रखा हुआ है—इसे सूर्यरश्मियों से बचाया जाता है। सन् १७५० ई० में ड्यूमेली नामक जौहरी ने यह पता लगाया था कि ब्रेजिल का पीला पुखराज गर्म होने पर गुलाबी रंग धारण कर लेता है। इसी आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जौहरियों की दूकानों पर जितने गुलाबी रंग के पुखराज होते हैं उनके खनिजजात रंग नहीं होते। गर्म किये हुये गुलाबी रंग के पुखराज ब्रेजेलियन माणिक्य (Brazilian Ruby) से भ्रमित हो सकते हैं। इसी प्रकार नीलापन लिये हुये पुखराज ब्रेजेलियन नीलम (Brazilian Saphire) से भी भ्रमित हो सकते हैं।

रासायनिक संगठन (Chemical composition)

पुखराज में किन-किन रासायनिक तत्वों का संयोजन है—इसमें कतिपय वैज्ञानिकों का अभी तक मतभेद चल रहा है परन्तु फिर भी यह तो निश्चय

हो ही गया है कि इसमें Flusilicate of Aluminium (फ्लू सिलिकेट ऑफ अल्युमिनियम) नामक यौगिक है। यह अधिक गर्मी के कारण बहुत कुछ घट जाता है। ब्रस्टर नामक वैज्ञानिक ने पुखराज की अतिसूक्ष्मतम परीक्षा की है और यह पता लगाया है कि पुखराज के अन्दर कई एक द्रव-युक्त खोखले स्थान होते हैं। इसी बात के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि पुखराज तरलावस्था से ठोस आकार में आया है। इसी तरला-वस्था से घनावस्था में आते समय कुछ जलांश अन्दर ही रह जाता है अतएव पुखराज में कुछ बिन्दुवद् आकृतियाँ बन जाती हैं। यह कोई निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पुखराज में हमेशा जलांश रह ही जाया करता है। कभी-कभी जलांश नहीं भी रहता। जब जलांश नहीं रहता तब पुखराज का रासायनिक सूत्र (Chemical formula)—(ALF $)_2$ Sio_4 होता है। जब फ्लोरीन के साथ जलांश भी रहता है तब रासायनिक सूत्र [AL (F,OH$)_2$] Sio_4 ही है। पुखराज में फ्लोरीन (Fluorine) की मात्रा १५·५ प्रतिशत से लेकर २०·६ प्रतिशत तक होती है। जलांश की मात्रा अत्यल्प होती है। जलांश की कमीबेसी के परिणामस्वरूप पुखराज के आपे-क्षिक गुरुत्व (S. G.) में थोड़ा अन्तर अवश्य हो जाया करता है।

(१) आपेक्षिक गुरुत्व (S. G.)	३.५२ से ३.५७ तक
(२) कठोरता (Hardness)	८.०
(३) आवर्तनांक (R. I.)	१.६१ से १.६३ तक

सबसे बड़ा पुखराज जो कि ३६८ कैरेट वजन का है—Max wall Striash Topaz कहलाता है। पीत कुरुविंद को प्राच्य पुखराज (Oriental Topaz) कहा जाता है। यथार्थतः यह पुखराज नहीं है अपितु पीताभा-युक्त माणिक अथवा नीलम है। इसी वर्ण विभिन्नता के कारण प्राचीन भार-तीय ग्रंथों में वैश्यमाणिक्य अथवा वैश्यनीलम कहे जाने का निर्देश है। पुखराज, प्राच्य पुखराज तथा स्काटलैण्ड पुखराज का पृथक्करण अधोलिखित सारिणी के आधार पर किया जा सकता है।

	पुखराज	प्राच्य पुखराज	स्काटलेण्ड पुखराज
(१) कठोरता	८·०	९·०	७·०
(२) आपेक्षिक गुरुत्व	३·५	४·०	२·६

श्वेतवर्ण पुखराज से अन्यान्य रत्नोपरत्नों का आपेक्षिक निदर्शन

संख्या	नाम रत्न	कठोरता (H)	आपेक्षिक गुरुत्व (S.G.)	आवर्तनांक (R.I.)	द्विवर्तनांक (D.R.I.)	द्विवर्णत्व (Dicrosim)
(१)	पुखराज (Topaz)	८·०	३·५३	१·६३	·००८	अभिन्न (Distinct)
(२)	गोमेद (Zircon)	७·५	४·६९	१·९५	·०५९	न्यून द्विवर्णत्व (Weak)
(३)	कुरविन्द (Corundum)	९·०	३·९९	१·७६	·००८	,,
(४)	कर्केतनमणि (Criso–Beryl)	८·५	३·७२	१·७४	·००८	अभिन्न (Distinct)
(५)	पेस्ट (Pastes)	५·०	३·७	१·६३	कुछ नहीं	कुछ नहीं
(६)	एपेटाइट (Apatite)	५·०	३·२	१·६४	·००२	सुदृढ द्विवर्णत्व (Strong)
(७)	वैक्रान्त (तुरमली—Turmeline)	७·०	३·१	१·६३	·०१८	अभिन्न (Distinct)
(८)	डनब्यूराइट (Danburite)	७·०	३·०	१·६३	·००६	न्यून.
(९)	मरकत (पन्ना–Beryl)	७·५	२·६८	१·५७	·००६	न्यून.
(१०)	स्फटिक (बिल्लोर–Quartz)	७·०	२·६५	१·५५	·००९	न्यून.
(११)	आर्थोक्लेज (Orthoclase)	६·०	२·५६	१·५३	·००९	न्यून.

उपर्युक्त सारिणी के अलावा मुख्यतः पीतवर्ण पुखराज और पीतवर्ण स्फटिक (बिल्लोर–Quartz) का पृथक्करण कभी कभी मुश्किल हो जाया करता है। एतदर्थ अधोलिखित आपेक्षिक निर्देशक सारिणी के आधार पर सुनिश्चित और स्पष्ट ज्ञानोपलब्धि हो जाती है।

संख्या	नाम रत्न	तत्त्वसंयोजन (Composition)	प्रणाली (System)	कठोरता (H.)	आपेक्षिक गुरुत्व (S.G.)	आवर्तनांक (R.I.)
(१)	पीत पुखराज	$AL_2(FoH)_2$ $-Slo_4$	चातुर्भुज प्रणाली	८·०	३.५३	१·६१ से १·६३
(२)	स्फटिक (बिल्लोर–Quartz)	Sio_2	षट्भुज प्रणाली	७·०	२·६५	१·५४४ से १.५५३

पुखराज और ज्योतिष शास्त्र

(१) पुखराज की बृहस्पति नामक ग्रह से मैत्री है। अतएव जिस व्यक्ति पर बृहस्पति ग्रह की कुदृष्टि हो रही हो—उस समय इस रत्न को अँगूठी आदि आभूषणों में जड़वाकर धारण करना चाहिये। दान धर्म करना चाहिये। पुखराज की भस्म या पिष्टी का सेवन करना चाहिये। जब किसी व्यक्ति के लिये बृहस्पति कुदृष्टित होता है तब उसे अधोलिखित रोगों में से किसी भी एक या दो रोगों की उत्पत्ति होती है।

उत्तमाङ्गोद्भवा पीड़ा मेदोरोगोऽग्नि वेदना।
अकस्माच्छ्वासरोधश्च गुरो व्याधि विनिश्चयः॥ (प्रश्नकल्पतरु)

मस्तिष्क एवं कर्ण, जिह्वा, नासा, नेत्र आदि प्रत्यंगों में पीड़ा होती है। शरीर अत्यधिक मोटा होने लगता है। मुखरोग, यदा कदा सहसा श्वास-प्रश्वास लेने में अवरोध आदि व्याधियाँ गुरु ग्रह की प्रकोपावस्था में होती हैं। इन रोगों में पुखराज का धारण, दान एवं भस्म का सेवन अतीव हितावह होता है।

स्वर्णच्छविः पुष्परागः पीतवर्णो गुरुप्रियः।

(२) सोने की सी झाँई वाला-पीलेरंग का पुखराज गुरु ग्रह के लिये प्रिय होता है।

इस रत्न को मार्गशीर्ष मास के बृहस्पतिवार के दिन पुष्य नक्षत्र में गुरु के होरा में अँगूठी में मढ़वाकर पहनना चाहिये। पुखराज कम से कम सवा रत्ती का होना चाहिये।

पुत्र की कामना वाली स्त्रियों को पुखराज की अँगूठी अवश्य पहननी चाहिये। बृहस्पति प्रसन्न होकर पुत्र कामना की सिद्धि प्राप्त होती है।

(३) सुप्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिषी करो (Cheiro) के मतानुसार जिन व्यक्तियों का जन्म फरवरी मास की कुम्भराशि (Aquarius) में हुआ होता है अथवा अगस्त मास की सिंहराशि (Lion) में जन्म हुआ होता है उन्हें पुखराज का धारण करना अवश्य लाभप्रद होता है इसके अलावा जिन व्यक्तियों का जन्म किसी भी मास की वह तारीख जिसका योगफल १ होता हो यथा १०, १९, २८ का है—उन्हें पुखराज अवश्य पहनना चाहिये।

(४) कुछ विद्वान् ज्योतिषियों की सलाह है कि जिन व्यक्तियों का जन्म नवम्बर मास का हो उन्हें पुखराज की अँगूठी अवश्य पहननी चाहिये।

(५) जिन व्यक्तियों को वक्षस्थल सम्बन्धी व्याधियाँ—यथा फुफ्फुस के रोग राजयक्ष्मा, श्वासकास, हृदयरोग आदि एवं वातव्याधियाँ यथा—आमवात, सन्धिवात आदि तथा मेदोरोग यथा—मोटापन आदि व्याधियों में

पुखराज की अँगूठी अवश्य पहननी एवं पुखराज भस्म का सेवन अवश्य करना चाहिये।

(६) चीनी लोग पुखराज को ताबीज में मढ़वाकर बड़े उत्साह से पहनते हैं। चीनियों में 'पंचरत्न' के आभूषण पहनने का बहुत अधिक रिवाज है। इस 'पञ्चरत्न' में पाँचवाँ रत्न पुखराज को ही माना जाता है।

(७) पुखराज पर बाज पक्षी की आकृति बनवाकर उसे ताबीज या अंगूठी में मढ़वाकर पहनने से शुभ (Good-will) होता है। पहिनने वाले व्यक्ति की दिनो-दिन प्रत्येक कार्य में अभिवृद्धि ही होती रहती है।

(८) भारतीय पुराणों में 'कल्पवृक्ष' का अनेक स्थलों पर जिक्र किया गया है। 'कल्पवृक्ष' इच्छा पूर्ति का सबसे बड़ा साधन माना गया है। 'कल्पवृक्ष' के नीचे बैठकर जो व्यक्ति अच्छी या बुरी जैसी भी कल्पना करता है—उसकी इच्छा पूर्ति अवश्य होती है। 'कल्पवृक्ष' की शाखा प्रशाखा एवं पत्र पुष्पादिक प्रत्येक अवयव एक-एक रत्न से निर्मित माना गया है। कल्पवृक्ष की शाखा प्रशाखा एवं तने का अन्तर्भाग पुखराज द्वारा निर्मित माना गया है।

(९) 'नवरत्न' की अँगूठी में पुखराज को उत्तरपश्चिम (North-west) के कोण में बृहस्पति के प्रतिनिधि के रूप में मढ़वाया जाता है। यह विचार न केवल भारतीय जौहरियों में ही माना जाता है—ऐसी बात नहीं है अपितु प्रायः समस्त संसार में प्रचलित है।

(१०) भारतीय शास्त्रों में पुखराज को पंचमहारत्नों' में स्थान नहीं दिया गया है। नवरत्नों में इसका स्थान सप्तम् माना गया है।

(११) बर्मी लोग भी चीनियों के समान ही पंचरत्नों में पुखराज को मानते हैं।

(१२) इजिप्शियन लोग ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से ही पुखराज को महत्व देते आ रहे हैं। प्राचीन समय में राजा, महाराजा एवं सेनापति अपने वक्षस्थल के कवच पर नवरत्नों को मढ़वाते थे। पुखराज को भी बृहस्पति के प्रतिनिधि के रूप में मढ़वाने का उल्लेख मिलता है। इजिप्शियन किसी भी पीतवर्ण के रत्न जैसे पीतस्फटिक (बिल्लौर—(Quartz) अथवा पीतसूर्यकान्त (Jasper) को भी पुखराज मानते थे। परन्तु आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व के ग्रन्थों में (भारतीय ग्रन्थों के आधार पर 'प्राच्य पुखराज' (Oriental Topaz) को असली पुखराज माना गया। तत्पश्चात् इन्हीं इजिप्शियन विद्वानों के ज्ञान का प्रसार समस्त विश्व में प्रसरित हुआ। यह

परिज्ञान सर्वप्रथम राजा भोज के 'युक्तिकल्पतरु' एवं वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' के आधार पर हुआ। इजिप्शियन भाषा में पुखराज को 'टार्शिस' (Tarshish) कहा जाता है।

(१३) भारत, चीन, इजिप्ट आदि देशों में मन्दिर, धर्मशाला, प्रासाद अथवा राजमहलों के निर्माण के पूर्व 'शिलान्यास' उत्सव मनाया जाता है। इस शिलान्यास के समय पुखराज को नवम स्थान दिया जाता है। भारत में माणिक्य को ठीक मध्य में बैठाया जाता है। ठीक इसी प्रकार इजिप्ट में सूर्यकान्त (Jasper) को मध्य में स्थान मिलता है। सिद्धान्ततः माणिक्य (Ruby) और सूर्यकान्त (Jasper) की सूर्य से मैत्री है। इजिप्ट और भारत की सूर्योपासना समान-सी प्रतीत होती है। पुखराज की स्थापना चीन, इजिप्ट और भारत में नवम् स्थान पर ही होती आ रही है।

गुणधर्म—

पुष्परागं विषच्छर्दि कफवाताग्निमांद्यनुत्।
दाह कुष्ठास्रशमनं दीपनं पाचनं लघु ॥ (रसरत्न समुच्चय)

पुखराज विषनाशक, वमन अवरोधक, कफ और वातव्याधि नाशक, अग्निमांद्य, दाह, कुष्ठ और रक्तपित्त शामक है। यह लघुपाची एवं दीपन पाचन है। इसके अलावा कुछ ग्रन्थकारों ने पुखराज को गुद रोग यथा अर्श भगन्दर आदि तथा स्मृति, वीर्य और आयुवर्धक भी माना है।

शोधन—पुष्परागञ्च संधानैः कुलत्थ क्वाथ संयुतैः। (रसरत्न समुच्चय)

पुखराज को काँजी और कुलथी के क्वाथ में दोलायंत्र के द्वारा एक प्रहर तक स्वेदन करने से भलीभाँति शोधन हो जाता है।

भस्मीकरण—

उपर्युक्त विधि से पुखराज का विशोधन करने के पश्चात् लोहे के खरल में पुखराज को रखकर भलीभाँति चूर्ण बनालें। पुखराज चूर्ण १ भाग, मनःशिला (मैनसिल 1 भाग, हरताल (

१ भाग और गंधक १ भाग लेकर नीबू के रस में ७ दिनों तक लगातार मर्दन करें। अब इस द्रव्य की छोटी-छोटी चक्रिकायें बनाकर धूप में सुखा लें। इन चक्रिकाओं को शराव सम्पुट में बन्द करके कपड़ मिट्टी करें और गजपुट में फूँक दें। पुखराज की सर्वश्रेष्ठ भस्म प्रस्तुत हो जायगी।

मात्रा—पुखराज भस्म की मात्रा ½ रत्ती से लेकर १ रत्ती पर्यन्त प्रयोग में लाना चाहिए।

आमयिक प्रयोग—

एकादशायसरसः

मृतायः पुरुषः शुल्वं खगो दरदगंधकौ।
गगनं पुष्परागश्च शोणितं चेश्वरोरगौ॥
विडंगं त्रिफला हिंगु यमानी जीरकद्वयम्।
स्वर्जीफलं वचा भृङ्गी मरिचं पिप्पलीद्वयम्॥
चवी दुरालभा वह्नि-शुण्ठीद्रावैर्विमर्दयेत्।
अण्डवातान्त्रवृद्धिं च कृच्छ्रमूत्रगदापहम्॥
ये च ह्यण्डगता रोगास्तान् सर्वानपकर्षति।
वातारिरपि देयोऽत्र वृद्धिनाशं करोत्यसौ॥

(रसचन्द्रिका, रसरत्नसमुच्चय)

पारद, गंधक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शु० हिंगुल, अभ्रकभस्म, पीतलभस्म, सीसकभस्म, पुखराजभस्म और केशर—इन एकादश अर्थात् ११ द्रव्यों को अलग-अलग समान भाग में लेकर सर्वप्रथम पारदगंधक की कज्जली बना लें। इसके पश्चात् शेष ९ द्रव्यों को परस्पर में मिलाकर—समस्त द्रव्यों को खूब घोट लें। पश्चात् अधोलिखित द्रव्यों के क्वाथ की १–१ भावना दें।

वायविडंग, त्रिफला, हींग, अजवाइन, सफेदजीरा, कालाजीरा, सज्जीखार, जायफल, बच, काकड़ासींगी, कालीमिर्च, पिप्पली, गजपिप्पली, चव, धमासा, चीत और सोंठ।

समस्त द्रव्यों की १–१ भावना दे चुकने के बाद २–२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुरक्षित रख लें।

इस 'एकादशायसरस' के सेवन करने से अण्डकोष गत वायु, आंत्रवृद्धि, ऊरुस्तम्भ और अण्डकोष सम्बन्धी व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

अनुपान में एरण्ड तैल भी वृद्धिनाशन में उपयोगी है।

